हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः एक अध्ययन
(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

HINDI SAHITYA KA STRI LEKHAN: EK ADHYAYAN
(ISVI SAN 12OO SE 1857 TAK)
WOMEN WRITING OF HINDI LITERATURE: A STUDY
(1200 A.D TO 1857 A.D)

पी–एच.डी. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा

शोधार्थी
प्रेमपाल

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2017

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Language
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI – 110067, INDIA

Date : 14th july 2017

DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this Ph. D. thesis entitled *HINDI SAHITYA KA STRI LEKHAN: EK ADHYAYAN (ISVI SAN 1200 SE 1857 TAK) [WOMEN WRITING OF HINDI LITERATURE: A STUDY (1200 A.D TO 1857 A.D)]* done by me is an original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/Institution.

Prempal
(Research Scholar)

Dr. Raman Prasad Sinha
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Gobind Prasad
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

पूज्य माता-पिता और आँटी
बलराज कोहली को समर्पित!

अनुक्रमणिका

हिंदी साहित्य का स्त्री लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

भूमिका (दो पद) **i-v**

प्रथम अध्यायः ईस्वी सन् 1200–1857 के मध्य स्त्री लेखन का परिदृश्य 1–41

(क) सामाजिक परिदृश्य

(ख) सांस्कृतिक परिदृश्य

(ग) धार्मिक परिदृश्य

(घ) राजनीतिक परिदृश्य

(ड़) आर्थिक परिदृश्य

(च) मध्यकालीन पुरूष दृष्टि

(छ) मध्यकालीन स्त्री दृष्टि

द्वितीय अध्यायः हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः जाँच–पड़ताल 42–85

(क) पांडुलिपियों की पड़ताल

(क) विषय का महत्त्व

(ख) पांडुलिपियों की खोज

(ग) ग्रंथ परिचय एवं महत्व

(ख) पाठ निर्धारण

(क) पाठालोचन की प्रक्रिया का परिचय

(ख) मूल पाठ एवं पाठ निर्धारण

तृतीय अध्यायः हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः जीवन व साहित्य 86–126

(क) जीवन में साहित्य

(ख) साहित्य में जीवन

चतुर्थ अध्यायः हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः अंतर्वस्तु का मूल्यांकन 127–183

(क) गुरू की महत्ता

(ख) निर्गुण की वंदना

(ग) सगुण भक्ति का स्वरूप

(घ) प्रेम का स्वरूप

(घ) प्रकृति चित्रण

(ड़) पतिव्रता स्त्री

(च) मध्ययुगीन समाज और स्त्री

(छ) युद्ध वर्णन

पंचम अध्यायः हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः शिल्पगत मूल्यांकन 184–240

(क) रस परिपाक

(ख) बिम्ब विधान

(ग) अलंकार विधान

(घ) छंद विधान

(ड़) काव्य गुण

(च) प्रतीक विधान

(छ) शब्द शक्ति

(ज) मिथक

(झ) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

(ञ) राग विधान

(ट) काव्य शैली

उपसंहार 241–247

परिशिष्ट 248–267

परिशिष्ट – 1
परिशिष्ट – 2
परिशिष्ट – 3
परिशिष्ट – 4
परिशिष्ट – 5
परिशिष्ट – 6
परिशिष्ट – 7

आधार ग्रंथ 268–269
(क) हस्तलिखित आधार ग्रंथ
(ख) प्रकाशित आधार ग्रंथ
सहायक ग्रंथ 270–274
पुस्तकालय 274
वेबसाइट्स 274

भूमिका

(दो पद)

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता, तो खुदा होता; डुबोया मुझ को होने ने, न होता मैं तो क्या होता। मिर्ज़ा गालिब की गज़ल के इस मिसरे ने न होने से अधिक होने की जिम्मेदारियों का अहसास बनाए रखा। तब, क्या हो रहा है जिसके देखने समझने की आवश्यकता है और क्या नहीं हो रहा है जिसके होने की जरूरत है। दरअसल, आजकल हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श हो रहा है। सैंकड़ों वर्षों बाद ही सही, लेकिन स्त्रियों ने समाज में अपनी पहचान बनाई है। घर, परिवार, बच्चे, पति, सास, ससुर आदि के बीच फँसी स्त्री ने आखिरकार स्वयं के 'स्व' को अनुभूत किया। उसने अपने अधिकारों को पहचाना और स्वयं पर यह विश्वास किया कि उसे भी पुरूष समाज की भांति आत्मनिर्भर होने का अधिकार है। आर्थिक स्वतंत्रता, निर्णय की स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार, विवाह की स्वतंत्रता, देह मुक्ति और संपत्ति का अधिकार है। स्त्री समाज के इस अधिकार भाव को आज हिंदी साहित्य में बुलंद आवाज में सुना जा रहा है और प्रत्येक कार्यक्षेत्र में उसके अधिकार हनन की समीक्षा की जा रही है। परंतु दुर्भाग्य यह है कि हिंदी साहित्य के मंच पर सुने जाने के बावजूद उसके वैयक्तिक जीवन में कोई बहुत बड़ा बुनियादी अंतर दिख नहीं पड़ता। घर की चारदीवारी आसानी से उसका पीछा नहीं छोड़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जितना बाहर निकलती जाती है घर की चारदीवारी उतनी ही फैलती जाती है। चूँकि, पितृसत्तात्मक समाज में अधिकांश अधिकार उन्हें पुरूष समाज से ही प्राप्त होते हैं इसलिए कई बार अधिकार देने वाले हाथ ही उनके पैरों की बेड़ियाँ बन जाते हैं। रोजमर्रा के अखबारों के कई पृष्ठ स्त्री शोषण की कहानियों से भरे रहते हैं। तब प्रश्न उठता है कि राजनीति, समाज, संस्कृति, अर्थनीति, खेल, सिनेमा आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली स्त्री कि ज़मीन पर यह दशा क्यों है ? उसके लिए घोषित अधिकार और उसे सही मायनों में प्राप्त अधिकारों में इतना अंतविर्रोध क्यों है ? तब उत्तर मिलता है कि समकालीन स्त्री–विमर्श में कोई न कोई कमी अवश्य है जिसकी जाँच–पड़ताल इतिहास और साहित्येतिहास में जाकर करनी चाहिए।

मुझे जब मेरे गुरूदेव डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा ने जैन साहित्य और आदिकालीन–मध्यकालीन स्त्री साहित्य पर शोध करने का परामर्श दिया तब मेरे मन में उपरोक्त विचार उमड़–घुमड़ रहे थे। ऐसे में आदिकालीन और मध्यकालीन महिला लेखन पर शोध करना तय हुआ और विषय निर्धारित हुआ 'हिंदी साहित्य का स्त्री लेखनः एक अध्ययन (ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)'। निसंदेह 657 वर्षों की इस साहित्यिक और ऐतिहासिक सामग्री की खोजबीन करना और उसका विश्लेषण करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था; ख़ासतौर से तब, जब कोई बचपन से ही पुरूष प्रधान समाज में पुरूष साहित्य पढ़कर बड़ा हुआ हो। फिर हमें चुनौतियाँ पसंद भी हैं या यूँ कहें कि चुनौतियों से खाली जीवन भी कोई जीवन है! फिर मेरे मित्र

हिम्मत सिंह नेगी सदा इतिहास को चुनौती देते हुए कहते हैं कि, 'कुछ लोग थे जो वक़्त के साँचों में ढल गए/कुछ लोग थे जो वक़्त के साँचे बदल गए'। अतः इस मार्ग पर चलना हमारे लिए गर्व की बात है और मुझे ये पंथ मन की गहराईयों से स्वीकार्य है; क्योंकि हमें इस बात में अति रोचकता दिख पड़ती है कि जिस स्त्री के बगैर सृष्टि की कल्पना ही असंभव है और जो पुरूष का मूल है उसे पीछे रखने के क्या कारण हैं! कहीं स्त्री के समक्ष पुरूष की गहरी असमर्थता और अपने प्रति गहरा अविश्वास और भय ही तो वे कारण नहीं हैं जिनके वशीभूत होकर पुरूष व पुरूष साहित्यकार अपने मूलाधार से यह अकाट्य अन्याय कर बैठे! फिर स्वयं गुरूदेव रमण प्रसाद सिन्हा यह कहते रहे हैं कि 'विदेशों से लोग आ–आकर हिंदी में अच्छा शोध कर रहे हैं लेकिन हम यहाँ पर रहकर भी वैसा शोध नहीं कर पा रहे हैं'। उनका कथ्य है कि 'लीक से हटकर काम करने वाले लोग ही कुछ नया करते हैं वरना लीक पर तो सब चल ही रहे हैं'। ये कुछ ऐसी बाते हैं जिनके तीक्ष्ण प्रकाश से प्रेरित होकर प्रस्तुत विषय पर शोध करना निश्चित हुआ।

प्रस्तुत शोध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है **'ईस्वी सन् 1200–1857 के मध्य स्त्री लेखन का परिदृश्य'**। इसके अंतर्गत इतिहास की खदानों में झाँककर यह देखने का प्रयास किया गया है कि तद्युगीन समाज में महिलाओं की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति कैसी थी ? क्या उन्हें वह स्वतंत्रता और समानता प्रदान की गई थी जिसकी वे जन्मतः अधिकारिणी थीं अथवा अपने स्वार्थों के चलते उसे सदा उसके अधिकारों से वंचित रखा गया। इसके साथ ही प्रस्तुत अध्याय में पुरूष साहित्य में नारी दृष्टि और और मध्यकालीन स्त्री साहित्य में स्त्री दृष्टि का भी आकलन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत जहाँ हमें राजनीतिक खोजबीन करते हुए चंगेज खाँ की पुत्रवधु 'ईबुस्कुन', चग़ताई खाँ के पौत्र करा हलाकू की विधवा 'और्ग़नाह् ख़ातून', बाबर की नानी 'ईसान दौलत ख़ानम', अकबर की माँ 'हमीदा बानो', बदरख़्शाँ की शासिका 'हर्रम बेगम' 'रज़िया सुल्तान', 'नूरजहाँ', 'जहाँआरा बेगम', 'चाँदबीबी', 'जीजाबाई' 'रानी दुर्गावती' जैसी राजमहिषियों का संज्ञान प्राप्त हुआ वहीं साहित्यिक जाँच पड़ताल करते हुए लल्लेश्वरी, बहबलबाई, बयाबाई और कान्होपात्रा जैसी हिंदीत्तर कवयित्रियों का बोध हुआ। यह इस शोध की एक सुखद घटना है।

इस शोध का द्वितीय अध्याय **'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : जाँच पड़ताल'** है जिसे पांडुलिपियों की पड़ताल और पाठ–निर्धारण नामक दो उप–अध्यायों में बाँटा गया है। इसके अंतर्गत भिन्न–भिन्न पुस्तकालयों से प्राप्त पांडुलिपियों, पुस्तकों और सूचनाओं के विषय में बताया गया है; साथ ही पाठ–निर्धारण के अंतर्गत प्रचलित पाठ और मूल पाठ में अन्तर करते हुए 'मूल पाठ' की स्थापना की गई है।

शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय **'हिंदी साहित्य का स्त्री लेखन : जीवन व साहित्य'** है जिसे पुनः 'जीवन में साहित्य' और 'साहित्य में जीवन' नामक दो उप–अध्यायों में विभाजित कर दिया गया है। प्रथम

उप–अध्याय में हिंदी की आलोच्य लेखिकाओं का जीवन परिचय दिया गया है और द्वितीय उप–अध्याय में उनके जीवन की कठिनाईयों को उनके साहित्य के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

आलोच्य शोध प्रबंध का चतुर्थ अध्याय **'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : अंतर्वस्तु का मूल्यांकन'** है। इसमें हिंदी की समीक्ष्य लेखिकाओं के द्वारा की गई 'गुरूभक्ति', 'निर्गुणभक्ति', 'राधाभक्ति', 'कृष्णभक्ति', 'रामभक्ति', 'शिवभक्ति', 'पतिभक्ति' के साथ–साथ श्रृंगार चेतना और युद्धवर्णन पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में इस मिथक को भी तोड़ने का प्रयास किया गया है कि स्त्रियाँ पुरूषों के समान गंभीर और सुन्दर लेखन नहीं कर सकतीं; इससे उलट हमें कहीं–कहीं उच्चकोटि के लेखन के दर्शन भी होते हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में पति के प्रति पत्नी के प्रेम को पत्नी की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है।

शोध का पंचम अध्याय **'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : शिल्पगत मूल्यांकन'** है। इसके अंतर्गत काव्य भाषा से प्रारम्भ करते हुए आलोच्य कवयित्रियों के साहित्य में उपस्थित 'रस', 'बिम्ब', 'भाषा', 'अलंकार', 'छंद', 'रूप', 'गुण', 'प्रतीक', 'मिथक', 'मुहावरे', 'लोकोक्तियाँ' और 'रागों' का शिल्पगत मूल्यांकन किया गया है। इससे कवयित्रियों की न केवल भाषागत गुणवत्ता का ज्ञान होता है प्रत्युत् किसी विषय के प्रति उनकी वैचारिक गहराई का भी बोध होता है।

शोध के अंत में ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक की कवयित्रियों की एक तालिका दी गई है जिसे सात परिशिष्टों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक परिशिष्ट में सौ वर्षों की कवयित्रियों का लेखा–जोखा उनके प्राप्ति स्थान एवं पुस्कालय के पंजीकरण नम्बर सहित दिया गया है ताकि कोई शोधार्थी कभी ऐसे विषय पर शोध करे तो उसे पांडुलिपि, उसकी छायाप्रति तथा पुस्तकें खोजने में उन कठिनाईयों का सामना न करना पड़े जिनका सामना मुझे करना पड़ा।

यह शोध प्रबंध आदिकालीन और मध्यकालीन लेखिकाओं के लेखन के उन पहलुओं को उजागर करता है जिनपर बात करने से पुरूष साहित्य आजतक कतराता रहा है। इसमें भी स्त्री दृष्टि को प्रधान रखने का प्रयास किया गया है; लेकिन जहाँ–जहाँ स्त्री साहित्य की समालोचना होनी चाहिए वहाँ–वहाँ उसकी भी समीक्षा की गई है। मैं इस बात को प्रबलता से कहना चाहता हूँ कि राजस्थान और बनारस में आदिकालीन और मध्यकालीन कवयित्रियों पर अपार सामग्री उपलब्ध है, यदि मेरे शोध से प्रेरित होकर कोई एक शोधार्थी भी उस ओर जाता है तो यह हिंदी साहित्य जगत के लिए हर्ष की बात होगी।

सहजोबाई ने अपने सहजप्रकाश में एक स्थान पर लिखा है कि, 'गुरू हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।/गुरू पारस, गुरू दीपक, मलयागिरि गुरू भृंग। मुझे ये लिखते हुए गर्व हो रहा है कि ये चारों गुण गुरूदेव रमण प्रसाद सिन्हा में समाहित हैं। उनके मार्गदर्शन में आने से पूर्व मैं केवल शोध के विषय में सुनता था लेकिन शोध की गंभीरता, गहराई और जिम्मेदारी क्या होती है इसका अहसास उनके मार्गदर्शन

में आने के पश्चात् हुआ। उन्होंने हमें बताया कि किस प्रकार एक शोधार्थी अपने द्वारा लिखे गए एक–एक शब्द के लिए पूरे अकादमिक जगत का जिम्मेदार होता है। उनके निर्देशन में हम पहली बार पांडुलिपियों से मुखातिब हुए और अपनी आँखों से हिंदी जगत की गरिमा के दर्शन किये। उन्होंने एम.फिल और पीएच.डी में जिस भी विषय पर शोध कराया उसने हमारे भीतर एक अदम्य साहस और गहरा आत्मविश्वास भर दिया। अपने कार्य के प्रति वैयक्तिक ईमान्दारी क्या होती है यह गुरूदेव से सीखा जाने वाला सबसे बड़ा गुण है। उनके द्वारा दिये गए परामर्श एवं दिशा निर्देशों ने हमें सही मायनों में एक शोधार्थी बनाया; इसलिए मैं सर्वप्रथम अपने गुरूदेव 'रमण प्रसाद सिन्हा जी' का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके गुणवत्तापूर्ण मार्गदर्शन और विश्वास के आधार पर मैं इस जटिल कार्य को पूर्ण करने में सफल रहा। आशा है कि उनका बहुमूल्य मार्गदर्शन मुझे हमेशा मिलता रहेगा।

गुरूवर के पश्चात् मैं अपने माता–पिता का आभार व्यक्त करता हूँ जिनके आशीर्वाद से मैं यहाँ तक पहुँचा। उनके स्नहे एवं धैर्य के बगैर यहाँ तक पहुँचना असंभव था। पारिवारिक सदस्यों में सोनू, सीमा, सरिता, हिमम्त का विशेष रूप से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने वैयक्तिक जीवन के सर्वाधिक कमजोर क्षणों में मेरा साथ नहीं छोड़ा। आशा है कि मैं भविष्य में इन सबके लिए कुछ न कुछ अवश्य कर सकुँगा। मैं श्रद्धांजलि सहित उन घनिष्ठों का भी आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने मेरी पी.एच.डी के पूर्ण होने की राह देखते–देखते अपने प्राण त्याग दिये। इस संबंध में मैं अपने बड़े मामाजी, दादीजी और मौसाजी सहित अन्य घनिष्ठों को हृदयकमल अर्पित करता हूँ।

कैंपस के मित्रों में मैं जगवती का विशेष रूप से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने दिल्ली और राजस्थान के विभिन्न पुस्तकालयों से सामग्री संचयन करने में मेरी सहायता की। कैंपस इतर मित्रों में मैं रेशम, रवि, मुकेश, नीरज, घनश्याम, नरेश, देवांजन, जितेन्द्र, मियाँ अशफाक, सोनाली कडवासरा और स्वाति परमार को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने सदैव पी.एच.डी. पूरा करने का जज़्बा मुझमें बनाए रखा। स्वाति पिछले दस सालों से लगातार इस बात को कह रही है कि तेरी पी.एच.डी हो जायेगी तो सबसे ज्यादा खुशी मुझे होगी। मेरी पी.एच.डी हेतु खुशी के इस जज़्बे को बनाए रखने के लिए मैं उसे तहे दिल से सलाम पेश करता हूँ। आप और हिम्मत जैसे मित्रों के रहते कोई कार्य अधूरा छूट जाए यह असंभव सी बात है।

मैं चंद्रमहल पोथीख़ाना में कार्यरत 'अलका' मैंम को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पांडुलिपियों को समय पर निकालकर देने की कृपा की। उनकी समयोचित सहायता से ही मैं पांडुलिपियों का सुचारू रूप से अध्ययन कर सका। इसके अतिरिक्त मैं जिन–जिन पुस्तकालयों में गया उनके कर्मचारी स्टाफ को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ जिनके अच्छे व्यवहार के कारण मैं अपनी बात सहज रूप से उनतक पहुँचा पाया और ये शोध अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचने में सफल रहा। एक विशेष धन्यवाद मैं उस परम शक्ति 'प्रकृति

माँ' को देना चाहता हूँ जिसकी शक्तियों के संचयन से यह संपूर्ण जगत संचालित है और जिनकी शक्तियों की सहायता से ही मैं इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूर्ण करने में सफल रहा; और अंत में मैं एक धन्यवाद उन सभी भूले बिसरे लोगों को देना चाहता हूँ जो इस शोध प्रबंध की ज़द से बाहर हैं। वे सदा चेतन–अचेतन शक्ति बनकर मुझे प्रेरित करते रहेंगे।

दिनांक

14. 07. 2017

प्रेमपाल

259, साबरमती छात्रावास

न्यू कैंपस, जे. एन. यू.

नई दिल्ली – 110067

premjnudu@gmail.com

अध्याय # 1

ईस्वी सन् 1200–1857 के मध्य

स्त्री लेखन का परिदृश्य

(क) सामाजिक परिदृश्य

(ख) सांस्कृतिक परिदृश्य

(ग) धार्मिक परिदृश्य

(घ) राजनीतिक परिदृश्य

(ड़) आर्थिक परिदृश्य

(च) मध्यकालीन पुरूष दृष्टि

(ज) मध्यकालीन स्त्री दृष्टि

स्त्री–लेखन का परिदृश्य

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

स्त्री एवं पुरूष इस संसार के दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं। संसार के विकास में दोनों का योगदान समान रूप से प्रशंसनीय है। दोनों की स्वतंत्रता एकांकी रूप से जितनी महत्त्वपूर्ण है परस्तर उतनी ही अपरिहार्य है। यह स्वतंत्रता ही उनके संबंध की मूल धुरी है। इसी के आधार पर यदि स्त्री, पुरूष को मानसिक संबल प्रदान करती है तो पुरूष भी स्त्री को शारीरिक सुरक्षा देता है। पुरा प्राचीनकाल में स्त्री और पुरूष के मध्य यह संबंधदारी अत्यंत मजबूत थी। यहाँ तक कि कहीं–कहीं स्त्री को पुरूष की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त था; उदाहरणार्थ, हम इसे स्त्री–कृषि संबंध के तौर पर देख सकते हैं। आदिकालीन समाज के जीवन निर्वाह का मुख्य आधार कृषि था इसलिए वे खेती में उन्नति हेतु विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों का आयोजन करते थे जिसका 'मुख्य ध्येय फसल को बढ़ावा था। तदनुसार पौधों की वृद्धि एवं प्रजनन के स्त्री पक्ष के जो भी गणचिन्हवादी कर्मकांड थे, उनपर अधिक जोर दिया गया और उनका और अधिक विकास किया गया। इसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय थे उर्वरता के अनुष्ठान। इन अनुष्ठानों में फसलों को प्रोत्साहन देने के लिए स्त्री–पुरूष के संभोग का भी इस्तेमाल किया जाता था। आदिम मनुष्य यह विश्वास करते थे कि फसलों को पैदा करने वाली भूमि तथा बच्चों को पैदा करनेवाली स्त्री में अवश्य कोई अदृश्य संबंध है और ये दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं।'[1] इस तरह स्त्री का महत्त्व कृषकीय ही नहीं वरन् प्राकृतिक भी था। गौरतलब है कि कृषि हेतु किए गए इन अनुष्ठानों में देवी पूजा का प्रमुख स्थान था। यूँ तो आदिवासी कृषि और जीवन निर्वाह में सहायक 'नदियों, मछलियों, सर्पों, अग्नि, वर्षा, बाघ, हाथी, भैंसा, ऊँट, बैल जैसे अनेक जानवरों की पूजा करते थे; परन्तु देवियों की पूजा अधिक प्रचलित थीं।[2] देवियों का यह आधिपत्य सामाजिक विकास की उस दशा का परिचायक है जब आदिमकालीन खेतीबारी में मातृसत्ता की प्रधानता थी; परंतु कालान्तर में उपमहाद्वीपीय राजनीति ने स्त्री समाज को गहरे से प्रभावित किया और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक महत्व को क्षीण कर दिया।

ईस्वी सन् 1200 से 1857 के मध्य उपमहाद्वीपीय राजनीति पूर्ण रूप से बदल गई। भारत में इस्लाम के प्रवेश के साथ ही मुस्लिम आततायियों की दखलअंदाजी बढ़ती चली गई और वे उत्तरभारत में अपने पैर ज़माते चले गए। नतीजतन सन् 1206 ई. में तुर्की गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में मुहम्मद गौरी का उत्तराधिकारी बना। 13वीं. शती के अंत तक दिल्ली सल्तनत का विकास मालवा, गुजरात, दक्कन, दक्षिणी भारत तक हो गया। सन् 1281 में बलवन की मृत्यु के बाद फिर से अराजकता फैल गई। इसका लाभ उठाकर जलालुद्दीन के नेतृत्व में सन् 1290 ई. में उसके सरदारों ने बलबन के अयोग्य उत्तराधिकारियों को अपदस्थ कर दिया। जलालुद्दीन ख़िलजी 'प्रजा का समर्थन' पाकर दिल्ली का सुलतान बन गया। कालांतर

[1] के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा (गणचिह्ण, जादू और धर्म), पृष्ठ संख्या, 32
[2] वही, पृष्ठ संख्या, 31

में दिल्ली सल्तनत की बागडोर अलाउद्दीन खिलजी के हाथों में आ गई। उसने राज्य में 'प्रजा की भूमिका' को लुप्तप्राय कर दिया और अपने राज्य का विस्तार मालवा, गुजरात, दक्कन सहित राजस्थान और मदुरै तक कर दिया। अलाउद्दीन के बाद गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली सल्तनत का सुल्तान बना और उसने अपने पुत्रों मुहम्मद बिन तुगलक (1324–1351 ई.) और फिरोज़ तुगलक (1351–1388 ई.) की सहायता से सन् 1320 से 1412 तक दिल्ली पर शासन किया; जिसका अंत तैमूर के दिल्ली पर आक्रमण करने के साथ हो गया।

तुगलक वंश के पतन के बाद कुछ समय तक सैयद वंश का शासन दिल्ली पर रहा; तत्पश्चात् 1451 ई. में अफगान सरदार बहलोल लोदी के शासन की स्थापना हुई। अफगानों की मदद से बहलोल लोदी ने शर्कियों को हर मोर्चे पर परास्त किया और उत्तर भारत पर अपना वर्चस्व कायम किया। बहलोल लोदी से महत्त्वपूर्ण सुल्तान सिकंदर लोदी था। उसने धौलपुर और ग्वालियर को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया। अपने विजय अभियान के दौरान उसने आगरा शहर की नींव डाली। इस शहर का निर्माण पूर्वी राजस्थान के क्षेत्रों तथा व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से किया गया था। 1517 ई. में सिकंदर लोदी की मृत्यु के पश्चात् इब्राहिम लोदी गद्दी पर बैठा। उसके विशाल साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से अफगान और राजपूत दोनों उसके दुश्मन बन गए। परिणास्वरूप उसको अपदस्थ करने के लिए दौलत खां और राणा सांगा के निमंत्रण पर बाबर भारत आया।

1525 ई. में जब बाबर पेशावर में था तब उसे ख़बर मिली की दौलत खां ने अपना पलड़ा बदल लिया है। इस पर वह क्रोधित हो उठा और उसने उसी वर्ष दौलत खां को हराकर पंजाब पर कब्जा किया। 1526 ई. में बाबर की इब्राहिम लोदी से पानीपत में ऐतिहासिक जंग हुई जिसमें इब्राहिम लोदी मारा गया और दिल्ली में बाबर का झण्डा बुलंद हो गया। 1527 ई. में खानवा में बाबर ने राणा सांगा को पराजित किया और अपना झण्डा ग्वालियर, धौलपुर तथा अलवर में बुलंद किया। 1530 ई. में हुमायूँ बाबर का उत्तराधिकारी बना। प्रारंभ में कई लड़ाईयों में उसे सफलता हासिल हुई लेकिन कालांतर में वह अपने ही अधीनस्थ अफगान सरदार शेर खाँ से हार गया। शेर खाँ ने राज्य पाते ही अपना नाम शेर खाँ से बदलकर 'शेरशाह' कर लिया। उसने 1555 ई. तक शासन किया; लेकिन कुछ ही दिनों में उसकी असामयिक मृत्यु हो गई; फलस्वरूप उसी वर्ष हुमायूँ ने फिर से दिल्ली पर आक्रमण कर अपना कब्जा कर लिया; लेकिन अगले ही वर्ष सन् 1556 ई. में हुमायूँ की मृत्यु हो गई और दिल्ली का राजसिंहासन 13 वर्ष के शहज़ादे अबुल फतह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर को संभालना पड़ा। उसने एक विशाल और स्थिर साम्राज्य की नींव रखी। उसका साम्राज्य उत्तर–पश्चिमी अफगान देश से असम तक और उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक फैला हुआ था। 'मुगलो में अकबर का राज्यकाल सभी दृष्टियों से सर्वोपरि रहा और उसे अभीष्ट को पाने में बहुत कुछ सफलता भी मिली। उसने भरसक पक्षपातरहित बने रहने का प्रयत्न किया। उसके

शासन काल में नागरिकों को सेना की मनसबदारी पाने तक की छूट सुलभ थी। फौजदारी मुकद्दमों का फैसला काजी लोग किया करते थे, किन्तु न्याय का सर्वोच्च अधिकार स्वयं उसकी सत्ता में निहित था।[3] अकबर के बाद सत्रहवीं सदी का पूर्वार्द्ध कुल मिलाकर प्रगति और विकास का काल था। इस दौरान मुगल साम्राज्य जहाँगीर (1605–1627 ई.) तथा शाहजहाँ (1628–1658 ई.) के कुशल प्रशासन में रहा। इन्होंने अकबर नियोजित नीतियों का न केवल पालन किया प्रत्युत् प्रसार भी किया। औरंगजेब को मुगल सल्तनत के अंतिम चश्मोंचिराग के रूप में जाना जाता है। उसने सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक राज्य किया। माना जाता है कि उसके शासन काल में आम जनजीवन बहुत अस्त–व्यस्त रहा। उसने मथुरा, वृन्दावन आने वाले भक्तों पर भारी कर लगाया। आम रियाया पर जज़िया कर को फिर से शुरू किया। हिंदुओं को इस्लाम ग्रहण करने के लिए विवश किया और उसके शासनकाल में हिंदुओं के मंदिरों को तोड़कर मस्ज़िदें बनवाई गईं तथा उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए हिंदुओं के कई धार्मिक ग्रंथों को नष्ट कर दिया गया। इस तरह हम देखते हैं कि कुछ हद तक अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का शासनकाल छोड़कर संपूर्ण मध्यकाल युद्धों, आगजनी, आपसी कलह, भय, अशांति, घृणा, द्वेष से त्रस्त रहा। नतीजतन उपमहाद्वीप का मातृसत्तात्मक समाज पितृसत्ता में परिवर्तित हो गया और उसने स्त्री समाज के जन्म से लेकर मृत्यु तक के अधिकार अपने हाथों में ले लिए। परिणामस्वरूप समाज में 'बाल विवाह', 'दहेज प्रथा', 'बलात्कार', 'बहु–विवाह', 'पतिव्रत धर्म', 'विवाह विच्छेद', 'सती प्रथा', 'विधवा विवाह निषेध', 'पर्दा प्रथा', 'देवदासी प्रथा', 'गुलाम स्त्रियों का विक्रय', 'शिक्षा निषेध' जैसी कुप्रथाओं को तीव्रता से प्रश्रय मिला जिसने समाज में स्त्रियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक योगदान को भारी नुक़सान पहुँचाया।

सामाजिक परिदृश्य

सामाजिक रूप से इस युग में स्त्रियाँ कई समस्याओं से घिरी हुईं थीं, जिनमें **'बाल हत्या'** विकट समस्या के रूप में उनके सामने खड़ी हुई थी। इस कुवृत्ति के अनुसार तद्युगीन समाज पुत्र–प्राप्ति की उन्मत्तता में पुत्रियों को जन्म देने के विषय में सोचता ही नहीं था। उन्हें बहुत हीन दृष्टि से देखा जाता था। उनके लिए वंश परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए पुत्र का होना अपरिहार्य था। गलती से यदि कोई कन्या जन्म ले लेती थी तो उसे 'मृत्यु दंड' स्वरूप मार दिया जाता था। कर्नल टाड का कथन है कि, 'वह पतन का दिन होता था, जब एक कन्या का जन्म होता था। पुत्र जन्म पर दावतें होती थीं, मंगल गीत गाए जाते थे, परंतु कन्या के जन्म लेने पर दुःख के से बादल छा जाते थे। मुख्यतया यदि एक स्त्री बार बार कन्या को जन्म देती थी तो उसे पग–पग पर अपमानित होना पड़ता था और कभी–कभी उसे तलाक भी दे

[3] डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या, 94

दिया जाता था।[4] समस्त वर्गों में हिंदू हो या मुसलमान, पुत्र को प्राथमिकता देना यह बतलाता है कि समाज में औरतों का स्थान नीचा था। मीराबाई और रज़िया जैसी उच्चकुल की नारियों को अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। परंतु मीराबाई जोगिन बनकर और रज़िया पुरूष शासकों का रूप धरकर ही ऐसा कर सकी थीं।[5] कुछ वर्ग जैसे राजपूतों में तो जन्मते ही लड़की को मार डालते थे। 'गुजरात में ये प्रथा 'दूधपीती' के नाम से प्रचलित थी।[6]

स्त्री समाज की दूसरी विकट समस्या के रूप में हम **'बाल–विवाह'** को देख सकते हैं। इस प्रथा को इस युग में सर्वाधिक मान्यता प्राप्त थी। इसकी पुष्टि करते हुए इतिहासकार अलबरूनी लिखता है कि, 'हिंदू बहुत छोटी अवस्था में विवाह करते हैं अतः उनके माता–पिता अपने पुत्रों का विवाह निश्चित करते हैं। बाहर वर्ष से अधिक उम्र की स्त्री से विवाह करने का विधान नहीं है।[7] शास्त्रानुसार माता–पिता 6 से 10 वर्ष की उम्र तक बेटी का कन्यादान कर दिया करते थे। इस संबंध में शास्त्राज्ञा थी कि–

अष्ट वर्षा भवेद् गौरी, नव वर्षा तू रोहिणी।
दश वर्षा भवेद् कन्या, उर्ध्व रजः स्वला।।

प्रस्तुत कारण के अतिरिक्त मुस्लिमों का आक्रमण और युद्ध पश्चात् होनेवाले अपहरण भी बाल–विवाह के लिए उत्तरदायी थे। आक्रमणकारियों के लिए विवाहित और अविवाहित में कोई अन्तर नहीं था, फिर इस विषाक्त प्रथा का अंकुर पौरूष की चरम और स्वार्थवृत्ति में ही फूटता हुआ दिखाई देता है। लेकिन कालांतर में शहंशाह अकबर ने इसका विरोध किया और कहा कि ''नाबालिग से शादी खुदाई कहर को दावत देती है क्योंकि शादी से जिस औलाद की ख़्वाहिश होती है वह दूर की बात होती है और लड़की को फौरी तौर पर भारी नुकसान होता है।.....इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी लड़की का विवाह बारह वर्ष एवं लड़के का विवाह सोलह वर्ष से कम आयु में न करे।[8] अकबर द्वारा यह सीधे–सीधे हिंदुओं की उस कुवृत्ति को चुनौती थी जो बालिकाओं से उनका बचपन छीनती थी।

ध्यातव्य है कि अकबर द्वारा दिए गए आदेशों के मान लेने के पश्चात् यदि किसी बालिका का विवाह तय भी हो जाया करता था तो **'दहेज प्रथा'** जैसी वीभत्स प्रथा तत्कालीन समाज में स्त्रियों का जीवन दूभर बना देती थी। दरअसल, भारत में वैदिक युग से ही विवाह के साथ कन्या को धन आदि से समृद्ध करके विदा करने का प्रचलन रहा है जिसमें विशेषकर वस्त्राभूषण प्रदान किये जाते थे। मध्ययुगीन समाज में यह प्रथा धीरे–धीरे दहेज का रूप धारण करने लगी और कालांतर में यह संस्कार सामाजिक–धार्मिक न रहकर सामाजिक–आर्थिक हो गया। फलस्वरूप दहेज़ लेना या देना सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक हो गया।

---

[4] दिनेश चंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 32
[5] रोमिला थापर, भारत का इतिहास (आत्मसातीकरण कसौटी पर), पृष्ठ संख्या, 272
[6] कृष्णा गोस्वामी, संत काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 171
[7] अलबरूनीज इंडिया, भाग–2, पृष्ठ संख्या, 261
[8] इरफ़ान हबीब, मध्यकालीन भारत (सामाजिक असमानताएँः अकबर के विचारों का एक अध्ययन), पृष्ठ संख्या, 33

मध्यकाल में तो यह प्रथा राजपरिवारों, कुलीनों व संपन्न घरानों में ही प्रचलित थी लेकिन वर्तमान समाज में निम्नमध्यमवर्गीय परिवार में भी इसका प्रचलन देखा जाता है। हिंदुओं की देखा–देखी मुस्लिम परिवारों में भी यह प्रथा प्रचलित हो गयी जिसे वहाँ 'जहेज' कहा जाता था। तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक शनैः शनैः दोनों समुदायों द्वारा मान्यता प्राप्त होने के कारण यह प्रथा पूरे उत्तर भारत में प्रचलित हो गई। 'मृगावती', 'सूरसागर', 'चंदायन' और 'पद्मावत्' जैसे सूफी ग्रंथों में भी देहज़ प्रथा के कई प्रमाण देखे जा सकते हैं।

हिंदू संस्कृति में विवाह एक पवित्र संस्कार के रूप में व्यवहृत है। यही एक ऐसा मार्ग था जिस पर चलकर स्त्री एवं पुरूष अपने व्यक्तित्व का विकास, वंश का उत्थान और परिवार का संयोजन कर सकते थे। यह स्त्री–पुरूष की पूर्णता तथा उनकी सामाजिक और आध्यात्मिक अभिव्यंजना का आधार है; परंतु मध्यकाल में दहेज की अधिक लोलुपता और पुत्र प्राप्ति की प्रचंड इच्छा ने बहु–विवाह जैसी कुप्रथाओं को जन्म दिया। धीरे–धीरे यह प्रथा किसी राजा या राणा की प्रतिष्ठा का आधार हो गई। जिस राजा के जितनी रानियाँ हुआ करती थीं उन्हें उतने ही सम्मान से देखा जाता था; परंतु बहु–विवाह से उत्पन्न पुत्रों की अधिकांश संख्या ने भयंकर गृह कलह का रूप ले लिया। पारिवारिक संपत्ति और अधिकारों के विभाजन हेतु एक ही पिता की कई संतानों में परस्पर युद्ध होने लगे। इससे न केवल युद्धों की संख्या में अकल्पनीय वृद्धि हुई प्रत्युत् अकारण के जान–माल की अतिरिक्त हानि हुई जो कई वर्षों तक निरंतर चलती रही। बहु–विवाह के चलते समाज पर छाने वाले सामाजिक विक्षोभ और भावी भय को भांपते हुए अकबर ने अपने शासनकाल में **बहुविवाह** के प्रचलन का पुरजोर विरोध किया ताकि राज्यों के संपत्ति सम्मत झगड़ों का निपटारा आसानी से किया जा सके। उसने कहा कि, 'एक दूसरे से लगाव के उस उसूल के तहत जो कायनात के निज़ाम की बुनियाद है, हद दर्जा बेहतर यही होगा कि कोई शख्स ज़िंदगी में एक से अधिक विवाह न करे.....एक से ज़्यादा बीवी की ख़्वाहिश करना खुद को नुक़सान पहुँचाना है; किसी को यह काम तभी करना चाहिए जब पहली बीवी बाँझ हो या उसकी औलाद ज़िंदा न रहे।[9] कालांतर में इसे भी प्रतिबंधित करने के कई प्रयास किए गए।

गौरतलब है कि जब से भारत में मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ होते हैं तभी से स्त्रियों की दुर्दशा का एक बड़ा अध्याय शुरू हो जाता है। तलवार के बल पर उनके साथ न केवल **बलात्कार** जैसा अमानुषिक कृत्य किया जाता था वरन् बलपूर्वक उनका **धर्मांतरण** कराया जाता था। मध्यकालपूर्व समाज में बलात्कृत स्त्री को हिंदू धर्म में पुनर्प्रवेश की अनुमति थी। प्रायश्चित् एवं शुद्धिकरण के पश्चात् नारी अपने कुल व समाज में लौट सकती थी। 'देवल स्मृति' में तो यहाँ तक कहा गया है कि यदि कोई स्त्री इस प्रकार के अत्याचार से गर्भवती भी हो जाए तो भी उसे हिंदू धर्म में पुनर्प्रवेश मिलना चाहिए; लेकिन यह उदारतामयी दृष्टिकोण

[9] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (सामाजिक असमानताएँः अकबर के विचारों का एक अध्ययन), पृष्ठ संख्या, 32

1000 ई. के आसपास समाप्त हो गया और स्त्री चारदीवारी में बंधकर रह गई। नतीजतन विवाह; जो कि दो अमर्त्य आत्माओं का मिलन था स्त्री के लिए घुटन और व्यक्तित्व हनन का आधार हो गया।

तद्युगीन समाज में स्त्रियों के वैयक्तिक जीवन का भी कोई मोल नहीं था क्योंकि वे संयुक्त जीवन प्रणाली से आबद्ध थीं जहाँ **पतिसेवा** ही उनका परम कर्तव्य था। स्मृतिकारों के वचन समाज में बहुत गहरे बैठकर लोकोक्तियों और कहावतों में परिणत हो चुके थे जिनकी ध्वनि–प्रतिध्वनि गाहे–बगाहे स्त्रियों को सुनाई दे जाती थी। यही वह समय है जब पति की मृत्यु के उपरांत स्त्री को सती होने के लिए बाध्य किया जाता था; अन्यथा उन्हें अपना मुंडन करवाकर घर के किसी कोने में सारा जीवन व्यतीत कर देना होता था। **सती प्रथा** का वीभत्स और भयावह वर्णन करते हुए 14वीं. शती के यात्री इब्नबतूता ने लिखा है कि, 'मैं अबरही[10] नगर में गया जहाँ के निवासी अधिक संख्या में हिंदू थे, पर हाकिम मुसलमान था। इस नगर के आसपास के कुछ हिंदू ऐसे भी थे जो बादशाह की आज्ञा की सदा अवहेलना किया करते थे। इन्होंने एक बार छापा मारा, अमीर हिंद मुसलमानों को लेकर इनका सामना करने गया तो घोर युद्ध हुआ और हिंदू प्रजा में सात व्यक्ति खेत रहे। इनमें से तीन के स्त्रियाँ भी थीं और उन्होंने सती होने का विचार प्रकट किया।.....फिर इन तीन स्त्रियों ने तीन दिन तक खूब गाया–बजाया और नाना प्रकार के भोजन किए, मानो संसार से विदा ले रही थीं। उनके पास चारों ओर की स्त्रियों का जमघट लगा रहता था। चौथे दिन इनके पास घोड़े लाए गए और ये तीनों बनाव–सिंगार कर, सुगंधि लगा उन पर सवार हो गईं। इनके दाहिने हाथ में एक–नारियल था जिसको ये बराबर उछाल रहीं थी और बाएँ हाथ में एक दर्पण था जिसमें ये अपना मुख देखती थीं। चारों ओर ब्राह्मणों और संबंधियों की भीड़ लग रही थी। आगे–आगे नगाड़े तथा नौबत बजती जाती थी। प्रत्येक हिंदू आकर अपने मृत माता–पिता, बहिन–भाई तथा अन्य संबंधी या मित्रों के लिए इनसे प्रणाम कहने को कह देता था और ये ''हाँ, हाँ'' कहती और हँसती चली जाती थीं। मैं भी मित्रों के साथ यह देखने को चल दिया कि ये किस प्रकार से जलती हैं। तीस कोस तक जाने के पश्चात हम एक ऐसे स्थान में पहुँचे जहाँ जल की बहुतायत थी और वृक्षों की सघनता के कारण अंधकार छाया हुआ था। यहाँ चार गुंबद (मंदिर) बने हुए थे और प्रत्येक में एक–एक देवता की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। इन चारों के मध्य में एक ऐसा सरोवर था जिस पर वृक्षों की सघन छाया होने के कारण धूप नाम को भी न थी।[11]

इब्नबतूता आगे लिखते हैं कि 'घने अंधकार के कारण यह स्थान नरकवत प्रतीत हो रहा था। मंदिरों के निकट पहुँचने पर स्त्रियों ने उतरकर स्नान किया और कुंड में एक डुबकी लगाई। वस्त्र आभूषण आदि उतारकर रख दिए और मोटी साड़ियाँ पहन लीं। कुंड के पास नीचे स्थल में अग्नि दहकाई गई। सरसों का तेल डालने पर उसमें प्रचंड शिखाएँ निकलने लगीं। पंद्रह पुरूषों के हाथों में लकड़ियों के गट्ठे बंधे हुए थे और दस पुरूष अपने हाथों में बड़े–बड़े लकड़ी के कुंदे लिए खड़े थे। नगाड़े, नौबत, शहनाई बजाने वाले

[10] अबरही–संभवतया यह सिंधु प्रांत के रोड़ी नामक जिले में आधुनिक 'उवाउस' नामक तहसील का प्राचीन नाम है।
[11] मदनगोपाल, इब्नबतूता की भारत यात्रा, पृष्ठ संख्या, 24–25

स्त्रियों की प्रतीक्षा में खड़े थे। स्त्रियों की दृष्टि से बचाने के लिए लोंगों ने अग्नि को एक रजाई की ओट में कर लिया था; परंतु इनमें से एक स्त्री ने रजाई को बलपूर्वक खींचकर कहा कि क्या में जानती नहीं कि यह अग्नि है, मुझे क्या डराते हो? इतना कहकर वह अग्नि को प्रणाम कर तुरंत उसमें कूद पड़ी। बस नगाड़े, ढोल, शहनाई और नौबत बजने लगी। पुरूषों ने अपने हाथों की पतली लकड़ियाँ डालना प्रारंभ कर दीं, और फिर बड़े–बड़े कुंदे भी डाल दिए जिससे स्त्री की गति बंद हो जाए। उपस्थित जनता भी चिल्लाने लगी। मैं यह हृदय द्रावक दृश्य देखकर मुर्च्छित हो घोड़े से गिरने को ही था कि मेरे मित्रों ने संभाल लिया और मेरा मुख पानी से धुलवाया। (संज्ञा लाभकर) मैं वहाँ से लौट आया।[12] ध्यातव्य है कि पितृसत्तात्मक समाज में सती प्रथा वंश प्रतिष्ठा का सूचक मानी जाती थी, लेकिन यह प्रत्येक विधवा के लिए कोई अनिवार्य कृत्य नहीं था।

आलोच्य प्रथा के संबंध में हम अकबर को एक सहिष्णु तथा आदर्श बादशाह करार दे सकते हैं क्योंकि उसकी सोच अपने समय से लगभग 100 वर्ष आगे चलती थी। वह अपने जीवन काल में ही भाप गया था कि सती प्रथा जैसी कुप्रथाएँ उसके शासन के सुचारू संचालन के लिए किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं हैं, इसलिए 1583 ई. में 'जब अकबर को बताया गया कि मारवाड़ के मोटा राजा की बेटी को उसके पति जयमल की मृत्यु पर उसकी इच्छा के विरूद्ध सती होने के लिए मजबूर किया जा रहा है; जयमल अकबर का एक अधिकारी था। जब बादशाह खुद इस रस्म को रोकने के लिए पहुँचा तो कुछ विरोध जरूर हुआ पर उस विधवा को बचा लिया गया और अकबर ने भटके हुए लोगों को कैद करा लिया।.....अकबर ने हर कस्बे और जिले में ईमान्दार प्रेक्षक नियुक्त कर रखे थे, और मकसद यह सुनिश्चित करना था कि जो स्त्रियाँ अपनी इच्छा से सती होना चाहती हैं, उनको ऐसा करने की इजाज़त मिले, मगर वे अफ़सर किसी को जबरन सती बनाए जाने को रोकें।[13] चूँकि जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर अपने समय का एक सजग बादशाह था इसलिए वे चारों ओर हो रहे झूठे–सच्चे राजनीतिक कृत्यों को भी बड़ी सजगता से देख रहा था। सती प्रथा के भीतर छिपी कूटनीतियों का पर्दाफ़ाश करते हुए वह कहता है कि 'कुछ पत्नियाँ ईमान्दारी से सती होती हैं जबकि कुछ तो इज्जत पाने के लिए ऐसा करती हैं। उसने इस प्रथा की कोई आलोचना नहीं की सिर्फ उन पतियों की निंदा की जो अपनी मौत की अफवाह फैलाकर अपनी पत्नियों की जान ले लेते हैं।[14]

उल्लेखनीय है कि जो स्त्रियाँ सती होने से मना कर देती थीं या किसी कारणवश सती नहीं हुआ करतीं थी उन्हें अत्यंत नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उन्हें अपना सर मुंडवाकर महल के किसी ऐसे कमरे में रहने के लिए विवश कर दिया जाता था जहाँ सूर्य की रौशनी न पहुँचती हो तथा जिसके

[12] मदनगोपाल, इब्नबतूता की भारत यात्रा, पृष्ठ संख्या, 24–25
[13] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (सामाजिक असमानताएँ: अकबर के विचारों का एक अध्ययन), पृष्ठ संख्या, 33
[14] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (सामाजिक असमानताएँ: अकबर के विचारों का एक अध्ययन), पृष्ठ संख्या, 33

बहुत बड़े दायरे तक सामान्य आवाजाही न हो। विधवा स्त्री को अपने लिए भोजन स्वयं तैयार करना पड़ता था तथा उसे महल के विशिष्ट उत्सवों में सम्मिलित होने का कोई अधिकार नहीं था। अलबरूनी ने तत्कालीन समाज में विधवाओं की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है तो वह किसी अन्य पुरूष से विवाह नहीं कर सकती उसके सामने केवल दो ही रास्ते बच जाते हैं, या तो वह आजीवन विधवा रहे अथवा जल मरे और दूसरी बात अर्थात् उसके जल मरने को उत्तम समझा जाता है क्योकि विधवा के रूप में जीवित रहने पर उसके साथ संपूर्ण जीवन दुर्व्यवहार किया जाता था। जहाँ तक राजाओं की पत्नियों का संबंध है उन्हें, वे चाहें या न चाहें उन्हें जलकर मर ही जाना पड़ता है और इस प्रकार यह प्रबंध किया जाता है कि वे कुछ ऐसा न कर बैठे जो उनके स्वर्गीय महान पति की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हो। इस संबध में उन विधवाओं को छोड़ा जाता है जिनकी उम्र बहुत अधिक हो गई होती है और उन्हें जिनको कि बच्चे होते हैं, क्योंकि पुत्र अपनी माँ का उत्तरदायी संरक्षक समझा जाता है।[15] वर्णित प्रतिबंधों के अतिरिक्त तत्कालीन समाज में विधवा को दूसरा विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था। कालांतर में अकबर ने अपने शासनकाल में शताब्दियों से समाप्त विधवा विवाह को पुनः अनुमति प्रदान की। इससे बाल–विधवाओं को अधिकाधिक लाभ हुआ। वे न केवल सती प्रथा जैसी प्रचंड पद्धति से बच गईं वरन् उन्हें एक नया जीवन शुरू करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ।

स्त्री शोषण का एक परिणाम **पर्दा प्रथा** था और पर्दा प्रथा का प्रचलन दोहरे स्त्री शोषण का परिणाम। उपमहाद्वीप में इस प्रथा का प्रचलन इस्लाम की स्थापना के साथ अधिक बढ़ा। इससे पूर्व राष्ट्रकूट साम्राज्य में स्त्रियाँ अपने चेहरे को ढकती नहीं थीं। दरबार में प्रस्तुत नाटक, नृत्य एवं संगीत को देखने के लिए वे स्वतंत्र थीं। बस एक झीना सा पर्दा उनके बैठने के स्थान के आगे पड़ा रहता था। इसे दरबार की महिलाओं की प्रतिष्ठा में गिराया जाता था न कि उन्हें अपमानित करने के लिए। किसी–किसी राज्य में तो यह झीना सा पर्दा भी नहीं होता था। दसवीं सदी के अरब यात्री अबूज़ैद ने लिखा है कि 'अनेक भारतीय राजा दरबार लगाते थे तो सभी उपस्थित पुरूषों को उनकी स्त्रियों को बेपर्दा देखने की अनुमति रहती थी, विदेशी तक इससे वंचित नहीं रहते थे।[16]

छरअसल, उपमहाद्वीप में पर्दा डालने का चलन परिस्थितियों के अनुकूल था। जैसे 'हुमायूँ की बहन अंतः पुर में रहती थी। सम्मानस्वरूप गुरूजनों के समक्ष अवगुण्ठन से मस्तक ढक लेती थी; किन्तु एक प्रथा के रूप में पर्दे का प्रारम्भ मुसलमानो के शासनकाल में हुआ।[17] यह उनकी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा था। मुस्लिम वर्ग की अपेक्षा कृषक एवं शिल्पी वर्ग की नारियों को अपने समाज के अंदर अपेक्षाकृत अधिक स्वाधीनता प्राप्त थी। अपरिचित के समक्ष वह अपने मुख को धोती के किनारे से ढक लेती थीं।

---

[15] अलबेरूनी का इंडिया, भाग–3, पृष्ठ संख्या, 155
[16] सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत, पृष्ठ संख्या, 46
[17] ए. एस अल्टेकर, पोजीशन ऑफ विमिन इन हिंदू सिविलाइजेशन, पृष्ठ संख्या, 244

'दक्षिण में राजपरिवारों को छोड़कर पर्दा प्रथा अप्रचलित थी। उच्चवर्ग में पर्दे को सम्मान से देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। पूर्णरूपेण वस्त्रों से आवृत्त, पर्दे पड़ी हुई डोलियों में यात्रा करने वाली मुस्लिम स्त्रियाँ हिंदू अभिजात वर्ग के लिए आदर्श बन जाती थीं।[18] फिरोजशाह ने पर्दा प्रथा को सार्वजनिक रूप से लागू किया था। अकबर ने अपने शासनकाल में आज्ञा दी थी कि यदि 'कोई तरूणी गलियों और बाज़ार में बिना पर्दे या घूँघट के दिखाई दे, अथवा जिसने अपनी इच्छा से पर्दे को तोड़ा हो तो उसे वैश्यालय ले जाया जाए और पेशे को अपनाने दिया जाए।[19]

स्त्रियों से पर्दा टूट जाना, उन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ना था। काबुल के गवर्नर अमीर खाँ ने अपनी बेगम को मात्र इसलिए छोड़ दिया था कि उससे दुर्घटनावश पर्दा टूट गया था। एक बीमार स्त्री का मुख भी कोई वैद्य या हकीम नहीं देख सकता था। अनुमान या किसी विशेष पद्धति द्वारा उनका इलाज किया जाता था। राजस्थान में पर्दा प्रथा नाममात्र की थी। राजपूत स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के मैदान में भी जाती थीं। मुसलमान बेगमों और शहजादियों में नूरजहाँ और रजिया सुल्तान ने पर्दे का प्रयोग नहीं किया था। हिंदू नारियों ने तो विवशतावश विजेताओं की कामलोलुप दृष्टि से बचने के लिए पर्दे का वरण किया था। किसी एक कारण को इसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। यह बहुत से कारणों का मिलाजुला रूप था।

'देवदासी प्रथा' ने भी नारी समाज को तेजी से पीछे धकलने में एक बड़ी भूमिका अदा की। इस परंपरा के अंतर्गत दक्षिण के 'बड़े–बड़े मंदिरों में देवदासियों की भीड़ रहती थी।.....सोमनाथ मंदिर में उसके विध्वंश से पहले 350 नर्तकी देवदासियाँ काम करती थीं। एक अन्य विवरण के अनुसार गुजरात में 4 हज़ार मंदिर थे जिसमें 20 हज़ार से अधिक इस तरह की नर्तकी देवदासियाँ थीं। देवता को पुष्प अर्पित करते हुए, उसे भोजन कराते हुए, वे दिन में दो बार वहाँ गाती थीं।[20] इन्हें शिक्षा प्राप्ति का अधिकार नहीं था तथा नृत्यकला की प्रस्तुति इनका परम ध्येय था। इसलिए समाज के मुख्य साँचे से ये कोसों दूर थीं।

सामाजिक रूप से स्त्रियों के प्रति बेरूखी का एक अन्य कारण तद्युगीन समाज पर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की मजबूत पकड़ और निरंतर होने वाले मुस्लिम आक्रमण थे। इन समस्याओं के चलते न स्त्रियों को गृहणी रूप में सुख था और न वे बाहर ही स्वछंद विचरण कर सकती थीं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था नहीं चाहती थी कि स्त्रियाँ ज्ञान अर्जित करें और उनसे आगे निकल जाएँ। तत्कालीन ब्राह्मण समाज का यह नजरिया उस युग के उस प्रत्येक समाज के प्रति था जो उनकी हाँ! में हाँ, नहीं मिलाता था, जिनमें स्त्रियाँ प्रमुख थीं। भारतीय ज्ञान–विज्ञान के भारी प्रशंसक अलबरूनी ने इस ब्राह्मणवादी कुदृष्टि का वर्णन करते हुए लिखा है कि, 'वे (ब्राह्मण) दंभी, मूर्ख' खोखले, आत्मप्रवंचक और निरूत्साही लोग हैं। जो कुछ वे जानते हैं

[18] उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी भावना, पृष्ठ संख्या, 38
[19] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, (सामाजिक असमानताएँः अकबर के विचारों का एक अध्ययन), पृष्ठ संख्या, 33
[20] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, भाग–2, पृष्ठ संख्या, 49

उसे दूसरों को देने में वे प्रकृति से ही शूद्र हैं, और इसका हर संभव ध्यान रखते हैं कि उस ज्ञान को अपनी ही जनता में किसी और जाति के व्यक्तियों तक और उससे भी बढ़कर विदेशियों तक जाने से रोकें।[21]

'हिंदुओं में केवल राजपूत और ब्राह्मण स्त्रियों में ही शिक्षा का प्रचार था। नर्तकी वर्ग एवं वैश्याओं में ही शिक्षा एवं ललित कलाओं के प्रचार के कारण शिक्षित होना असम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।[22] राजपूत स्त्रियों में शिक्षा अनेक स्तरों पर प्रचलित थी। वे केवल साक्षर ही नहीं अपितु शासन, प्रबंधन एवं सैन्य संचालन में भी उतनी ही निपुण होती थीं। इसका कारण उनकी शिक्षा के लिए किए गए समुचित प्रबंध एवं उनके विवाह की आयु सामान्य बालिकाओं की आयु से अधिक होना था; उदाहरणार्थ, रज़िया सुल्तान विदुषी महिला थी, उसने अश्वारोहण, युद्धकला आदि की विशेष शिक्षा ली थी। वह विद्वानों को आश्रय भी देती थी; लेकिन सामान्य स्त्रियों के लिए ऐसी कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। थोड़े से हेर–फेर के साथ उनके लिए वर्ण–व्यवस्था पूर्वकाल की भांति ही रास्ता रोककर खड़ी थी।

स्त्रियों के सामाजिक विघटन का दूसरा कारण हिंदू राज्यों के राजनैतिक पराभव के कारण उत्पन्न हुआ। तत्कालीन हिंदू राजाओं में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वे अपने राज्य की महिलाओं, राजकुमारियों तथा महारानियों के सम्मान की रक्षा कर सकें। उन्हें स्वयं अपने सम्मान की रक्षा करना भारी पड़ रहा था। हिंदुओं की इस दुर्दशा का अनुमान बरनी के इन शब्दों से हो जाता है, 'वे हिंदू खिराजगुजार कहे जाते हैं, और जब तहसीलदार उनसे चाँदी माँगता है तो वह बिना उज्र किये बड़ी नम्रता तथा आदर के साथ सोना भेंट करते हैं। जब कर वसूलने वाले अधिकारी हिंदुओं के मुँह में थूकना चाहें तो उन्हें बिना किसी हिचकिचाहट के अपना मुँह खोल देना चाहिए।[23] हिंदू प्रजा एवं राजाओं का अधिकांश जीवन मुस्लिम बादशाहों द्वारा लगाए गए कर चुकाने में ही निकल जाता था।

'हिंदुओं की दशा इतनी शोचनीय हो गई थी कि उनकी स्त्रियों को मुसलमानों के घर सेवा कार्य के लिए जाना होता था।[24] तुर्क सुल्तानों को हिंदू सुंदरियों को अपनी बेगम बनाने का विशेष शौक था। अपनी इस इच्छा की पूर्ति वे उच्च सामंतों के माध्यम से करते थे। ये सामंत अच्छे घराने की सुन्दर लड़कियों को साम–दाम–दण्ड–भेद की नीति द्वारा फँसाकर सुल्तानों की सेवा में प्रस्तुत करते थे। सर्वप्रथम हिंदू लड़कियों को इस्लाम धर्म में परिवर्तित किया जाता था, तत्पश्चात् उनसे विवाह कर लिया जाता था।[25] इसके साथ युद्धकाल में स्त्रियों को लूट का प्रमुख सामान समझा जाता था तथा 'दासियों के रूप में बिकने को भी वे

---

[21] सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत (शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान और धर्म), पृष्ठ संख्या, 49
[22] दिनेश चंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 174
[23] दिनेश चंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 46
[24] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 43
[25] दिनेश चंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 15

बाध्य थीं।[26] विदेशियों के युद्ध के कारण ही नहीं, वरन् राज्यों के आंतरिक युद्धों के कारण भी उनकी दशा शोचनीय थी।.....कन्या अपहरण उस युग में छोटी सी बात थी। अतः अराजकतापूर्ण उच्च श्रृंखल राजनीति तथा शासन से स्त्रियों की रक्षा के लिए और उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए आवश्यक था कि उसे घर की दीवारों में बंदी बनाकर रखा जाता। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियाँ नारी के जीवन क्षेत्र को संकुचित बनाने में प्रधान कारण बनीं।[27]

तत्कालीन उपमहाद्वीप में नारी शोषण का एक प्रमुख कारण नारियों को मनुष्यता के पद से गिरा देना था। दो राज्यों के बीच होने वाले युद्धों में उन्हें **लूट का विशेष सामान** समझा जाता था। किसी राजा की विजय की विराटता का अनुमान उसके द्वारा युद्ध में लूटी गईं या बंदी बनाई गईं महिलाओं से लगाया जाता था। विजयश्री के इन घृणित प्रतिमानों ने स्त्रियों की दशा को और अधिक दयनीय बना दिया था; जिसका तात्कालिक निदान हम अकबर के सन् 1562–63 के हुक्मनामें में पाते हैं। उसने हुक्म जारी किया कि, 'विरोधी सेना की स्त्रियों, बच्चों और रिश्तेदारों को गुलाम न बनाएँ, और न उनको बेचें।.....बागियों को मारना, कैद में रखना और कोड़े लगाना देश पर नियंत्रण रखने के लिए आवश्यक तो है, पर वहीं उन बागियों को सजा देने के लिए मासूम औरतों और बच्चों को नुक़सान पहुँचाना नाइंसाफी है।[28] अकबर के तमाम प्रयासों के बावजूद समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत बेहतर नहीं हो सकी! इसका एक प्राकृतिक कारण राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश, गुजरात, बंगाल इत्यादि में निरंतर पड़ने वाला सूखा था। सूखे के समय मध्यकालीन रियाया रोटी के एक–एक टुकड़े के लिए मोहताज हो जाया करती थी। कई सामंतो को तो स्वयं अकबर द्वारा हुक्म दिया जाता था कि वे अपने राज्यों में स्वयं के रसोवड़े चलाएँ। लेकिन मनसबदारों की बदनीयती के कारण कई मोहतरम तो भूखे ही मर जाते थे; तथा वालिदैन अपने बच्चों को बेचने के लिए मजबूर हो जाया करती थीं या स्वयं उनकी गुलाम बनने के लिए तैयार थीं। अकाल के इन मरणासन्न दिनों में अनेक किसान स्वयं को या अपनी पत्नी या बच्चों को अनाज के बदले बेच देते थे। घरेलू कामों के लिए या संगत के लिए स्त्रियाँ भी खरीदी जाती थीं। अकाल ग्रस्त शहरों और राज्यों में कभी–कभी स्थिति इतनी मर्मांतक हो जाया करती थी कि माएँ अपने बच्चों को बेचने के लिए तैयार रहती थीं, लेकिन उन्हें कोई खरीदार नहीं मिलता था। इस स्थिति का भी तात्कालिक उपाय अकबर ने 1594 ई. में यह हुक्मनामा जारी कर निकाला कि, 'अगर भारी भुखमरी और बदहाली के दिनों में वालिदैन अपने बच्चों को बेचते भी हैं तो जैसे ही उनकी हालत में सुधार हो वे रकम वापस करके अपने बच्चों को गुलामी के जुए से आज़ाद करा सकते हैं।[29]

---

[26] हरीशंकर शर्मा, मध्यकालीन भारत, पृष्ठ संख्या, 272
[27] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 44
[28] इरफ़ान हबीब, मध्यकालीन भारत, (भाग–6), पृष्ठ संख्या, 29
[29] इरफ़ान हबीब, मध्यकालीन भारत, (भाग–6), पृष्ठ संख्या, 30

समाज में नियमों एवं प्रतिबंधों से रहित एक समाज ऐसा भी था जिसे गणिका या वैश्या कहा जाता था। मध्यकालीन युग की विलास वृत्ति इनकी अभिवृद्धि में सहायक सिद्ध हुई। मुसलमान शासकों की 'हरम प्रथा' से भी इसे प्रोत्साहन मिला। इनका मुख्य कार्य संगीत व नृत्य द्वारा अमीर–उमरा का मनोरंजन करना था। 'सम्राट अकबर इस वृत्ति को अपने राज्य में उचित नहीं मानते थे इसलिए उन्होंने वैश्याओं और नर्तकियों को यह आज्ञा दी कि वे या तो किसी पुरूष से विवाह कर लें अथवा साम्राज्य छोड़कर चली जाएँ।[30] लेकिन वैश्याओं के साथ विवाह तत्कालीन संदर्भों में एक दूर की कौड़ी थी।

इन गणिकाओं का एक अन्य पक्ष भी उल्लेखनीय है। मध्यकाल में रूपमति बेगम या प्रवीणराय पातुरि जैसी वैश्याएँ उच्च कोटि की प्रेमिकाएँ सिद्ध हुई हैं। प्रवीणराय साहित्यकला और नृत्यकला में पारंगत थी तथा ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह से घनिष्ठ प्रेम करती थीं। उन्होंने एक बार इंद्रजीत सिंह को न केवल शहंशाह अकबर के भारी कर और कोप से बचाया अपितु बड़ी कुशलता से अपने को भी मुक्त करा लिया। घनानंदी[31] रूपमति बेगम भी साहित्य और गायन कला में सिद्धहस्त थीं। मालवा के शासक बाज़बहादुर के, अकबर के साथ युद्ध में मारे जाने के पश्चात उसने भी यह कहकर अपने प्राण त्याग दिए कि, 'रूपमति दुखिया भई, बिना बहादुर बाज। सो अब जियरा तजत है, यहाँ नहीं कुछ काज।[32] दुर्भाग्य यह है कि ऐसा रूहानी प्रेम तत्कालीन समाज में रत्ती के समान था; परिणामस्वरूप वैश्यायी पेशे के कारण ही उक्त स्त्रियों की पहचान की जाती थी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि बाल हत्या, बाल–विवाह, दहेज प्रथा, बलात्कार, बहु–विवाह, पतिव्रत धर्म, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, गुलाम स्त्रियों का विक्रय, ब्राह्मणवादी दंभ, अशिक्षा, वैश्यावृत्ति, आर्थिक अपंगता, निरंतर होते हुए युद्ध, अपहरण एवं विलासिता के वातावरण ने मध्यकालीन स्त्री समाज का जीवन अत्यंत दूभर, कष्टप्रद और मर्मांतक बना दिया था। उनकी दशा उस मछली के समान हो गई थी जिसे सामंती लोग स्वेच्छा से पानी में छोड़ सकते थे व बाहर निकाल सकते थे और कभी–कभी मनोरंजन हेतु फड़फड़ाने के लिए बाहर छोड़ सकते थे।

सांस्कृतिक परिदृश्य

संस्कृति एक व्यापक एवं विस्तृत शब्द है जिसकी परिभाषा देश–काल और परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। यदि पुरा प्राचीनकाल की गोह गुफाओं में घुसकर खोजा जाए तो हम पायेंगे कि 'स्त्री' किसी भी प्रकार की संस्कृति का 'मूल' रही है। उसी के आधार पर तमाम संस्कृतियों का विकास संभव हुआ

[30] उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी भावना, पृष्ठ संख्या, 39
[31] रीतिमुक्त काव्य के प्रेमी कवि घनानंद सरीखा प्रेम करने वाली।
[32] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248

है क्योंकि प्रकृति प्रदत्त प्रजनन संस्कार स्त्रियों में हैं किसी अन्य में नहीं; अतः सभ्यता के विकास क्रम से लेकर आज तक स्त्रियाँ मानुषिक समाज की सांस्कृतिक धुरी रही हैं।

यह आम धारणा है कि आदिकाल और मध्यकाल में प्रचलित चारण परंपरा का मुख्य हिस्सा केवल पुरूष थे! खोजबीन से ज्ञात होता है कि 'बहुत से चारण दरबारों में रहते थे, घुमन्तु जीवन बिताते थे। ये 'पाणर' कहलाते थे। ये वाद्ययंत्र लिए हुए गाते थे, नाचते थे और इनके साथ स्त्रियाँ भी इस काम में भागीदार होती थीं।[33] इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हुए रामविलास शर्मा कहते हैं कि, 'चारणों में स्त्रियों का एक वर्ग विरलियर् कहलाता था। 'विरल्' का अर्थ है विजय। पार्थसारथी ने लिखा है कि ये अपने पतियों के साथ और उनसे अलग स्वतंत्र रूप में भी गायन और प्रदर्शन करती थीं। यह परंपरा उत्तर भारत के जनपदों में अभी तक वर्तमान है। एक स्त्री अकेले भी अपनी जनपदीय भाषा में महाभारत काव्य गायेगी, वक्तृता देगी और अभिनय करेगी। संस्कृत नाटकों में सूत्रधार और नटी, नाटक के आरंभ में, उसके लेखक, विषयवस्तु की चर्चा करते हैं। सूत्रधार से नटी का वार्तालाप उसी चारण–संस्कृति में स्त्रियों की भागीदारी का प्रतीक है।[34] झीमा और पद्मा जैसी चारणियाँ उसी विरलियर् संस्कृति की देन हैं।

मध्यकालीन राजपरिवारों की स्त्रियाँ भी सांस्कृतिक रूप से नृत्य, गायन, वादन, शिल्पकला आदि में निपुण थीं जिनमें उनके शौहरों का बहुत बड़ा हाथ था। वे स्वयं भारतीय और ईरानी संगीत के शौकीन थे और चाहते थे कि उनकी बेगमें भी संगीत कला में सिद्धहस्त हों। 'सुल्तान बलबन के उत्तराधिकारी कैकुबाद (1287–90ई.) की किलोखरी (दिल्ली के निकट) स्थित राजमहल में कन्याओं द्वारा नृत्य व फारसी तथा हिंदी गानों के गायन का उल्लेख मिलता है। जलालुद्दीन खिलजी भी संगीत का शौकीन था। उसके दरबार में फाकी की पुत्री और नुसरत खातून जैसी गायिकाएँ थीं। 'ये अस्पष्ट है कि ये महिला कलाकार किस परंपरा का अनुसरण करती थीं लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ये भारतीय परंपरा की अनुयायी थीं क्योंकि बरनी के अनुसार उत्तरकालीन 13वीं. शताब्दी में युवा कन्याओं को फारसी और भारतीय संगीत में प्रशिक्षण भारतीय गणिकाओं द्वारा दिया जाता था।[35] मुहम्मद बिन तुगलक की भी संगीत में खूब रूचि थी और उसके शासनकाल में 'चंग', 'अर्गुन', 'नकीरी', 'कमंच', 'रूबाब', 'मिस्कत', 'नाय', 'तम्बूर', 'ढोल', 'मीर', जैसे नए वाद्ययंत्र इजाद हुए जो आगे चलकर भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग हो गए। मुगलिया सल्तनत में एक समय ऐसा भी आया जब औरंगजेब ने अपने शासनकाल में गायन पर प्रतिबंध लगा दिया और सरकारी संगीतकारों की छुट्टी कर दी लेकिन वाद्य, संगीत और नौबत जारी रहे। हरम की महिलाएँ भी गायन को संरक्षण देती रहीं और शहजादे और अमीर भी।

---

[33] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, (भाग–1), पृष्ठ संख्या, 56
[34] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (भाग–1), पृष्ठ संख्या, 56
[35] इरफान हबीब, मेडिवल इंडिया, दि, स्टडी ऑफ सिविलाईजेशन, पृष्ठ संख्या, 107

मध्ययुगीन भारत में भक्ति आंदोलनों ने भारतीय संगीत को प्रभावित कर एक ऐसी अनन्य भक्ति संगीत परंपरा की शुरूआत की जिसमें महिला साहित्यकारों ने भी अपनी सशक्त भूमिका का निर्वाह किया। इसी समय 'वारकरी पंथ' की सोर्याबाई, मुक्ताबाई, जनाबाई और बहिनाबाई ने कई अभंग पदों की रचना की। इनके द्वारा रचित अभंग आज भी 'वारकरी पंथ' में प्रचलित हैं। इसी प्रकार गुजरात की दिवालीबाई, कृष्णाबाई व गौरीबाई ने कृष्णभक्ति में सराबोर हो कई गेय पदों की रचना की। ये पद आज भी गुजरात की 'भक्त गीतिमाला' में सम्मिलित हैं और कीर्तनादि के समय पर गाए जाते हैं। इस मुआमले में उमांबा, पार्वतीबाई, सहजोबाई, दयाबाई, अक्कमहादेवी, महदम्बा, वेणास्वामी, बावरी साहिबा, कान्होपात्रा जैसी संत कवयित्रियों ने भी अपनी भक्ति धारा से भारतीय संगीत को न केवल समृद्ध किया अपितु अपने लिए भी भक्ति का एक सुरक्षित मार्ग खोज लिया।

जहाँ तक रहन–सहन, खान–पान और पहनने–ओढ़ने का प्रश्न है वहाँ स्याम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्निया, चीन, दक्षिण पूर्व एशिया और अरब के साथ इस उपमहाद्वीप का व्यापार चलता था। 'चीनी लोग भारी मात्रा में मसालों का उपयोग करते थे जिनका आयात दक्षिण–पूर्व एशिया और भारत से किया जाता था।[36] कपड़ों के संबंध में इस भूखंड के अधिकांश भागों में 'धोती और साड़ी पुरूषों और स्त्रियों के सामान्य परिधान बने रहे। उत्तर भारत में पुरूष सदरी पहनते थे और स्त्रियाँ चोली पहनती थीं।..... स्त्री–पुरूष, दोनो सोने के कंगन और कुंडल पहनते थे जिनमें कभी–कभी तो कीमती रत्न जड़े होते थे।..... गुजरात में स्त्री–पुरूष, दोनो ही दोहरे कुंडल पहनते थे। वे चुस्त कपड़े पहनते थे जिसका एक सिरा उनके माथे को ढँक लेता था।.....क्विलोन में भी स्त्रियों और पुरूषों का परिधान कटि–वस्त्र ही था।[37] कुछ शहर तो किसी एक प्रकार के वस्त्रोद्योगों हेतु जाने जाते थे; जैसे, मसूलीपटनम और कलमीछींट एक दूसरे के पर्याय हो गए थे।

इस तरह हम देखते हैं कि महिलाएँ भारतीय संस्कृति की धुरी में हमेशा बनी रहीं लेकिन सामंती समाज ने उन्हें अपने संस्कारों में ही जकड़ कर रख लिया।

धार्मिक परिदृश्य

धर्म क्या है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे संपूर्ण मध्यकाल अपने जीवन पर्यंत तक टकराता रहा और अब आधुनिक काल भी इसका सामना कर रहा है। दरअसल, इस प्रश्न का उत्तर मनुष्य के मन की उन गुफ़ाओं में छिपा हुआ है जिनमें वह झाँककर कभी देखना नहीं चाहता। अपना आत्मविश्लेषण करना नहीं चाहता। जिसके लिए कबीरदास कहते हैं कि, बुरा जो देखन मैं चला/ बुरा न मिलिया कोय/ जो मन खोजा आपणा/ मुझसे बुरा न कोय।। अर्थात् आध्यात्म का कर्म रूप ही धर्म है; परंतु यह कर्म शाश्वत

[36] सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत, पृष्ठ संख्या, 37
[37] वही, पृष्ठ संख्या, 46

होना चाहिए। क्योंकि यह कर्म ही समाज और सामाजिकों को व्यवस्था प्रदान करता है। इस संदर्भ में भारतीय मध्यकाल को दुर्भाग्यपूर्ण कहना चाहिए; क्योंकि इस कालखंड की बागडोर उन ब्राह्मणवादियों के हाथों में थी जो वर्णव्यवस्था के प्रतिमानों पर अपनी प्रजा के न्याय–अन्याय का मूल्यांकन करते थे। समाज के जो लोग उनके द्वारा प्रदत्त व्यवस्था का पालन नहीं करते थे उनके लिए दंड विधान था। इस दंड विधान का केंद्र बिंदु प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से स्त्रियाँ ही रहीं।

प्रकृति ने नर और मादा को एक दूसरे के पूरक रूप में उत्पन्न किया है ताकि वे संसार में खूबसूरत और सुनहरे प्राकृतिक चक्र की सृष्टि करें; लेकिन कई स्मृतियों ने तो स्त्री जीवन को ही 'पाप' माना और कहा कि सन्यासी की माता या पत्नी यदि सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होती है तो वे पुनः स्त्री का जन्म नहीं लेती। केवल इतना ही नहीं पुराणों ने तो भक्ति का भोग्या रूप ही विकसित कर लिया था। कापालिक यह दावा करते थे कि जिन्होंने साधना में उन्नति की है वे कल्पना में नारी की जननेन्द्रिय पर अपनी आत्मा को बिठाकर उसका ध्यान करते हैं और इस तरह उन्हें परमानंद की प्राप्ति होती है। समाज में स्त्री के अधिकारों की वकालत करते हुए सन् '1160 ई. में वीर शैव संप्रदाय के प्रतिनिधि कुमार स्वामीजी ने कहा था कि मनुष्य इस ब्रह्माण्डीय योजना में अपने स्थान को समझे ताकि पतनोन्मुख धर्म में नई भावना फूँकी जा सके और महिलाओं को समानता का स्तर और स्वतंत्र दृष्टिकोण मिले।[38] लेकिन शायद ही इस वाकांदोलन का कोई प्रभाव तत्कालीन धर्म साधना पर पड़ा हो!

यद्यपि मुसलमान शासक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का अनुसरण नहीं करते थे लेकिन स्त्रियों के प्रति वे कहीं ढील बरतने को तैयार नहीं थे। 16वीं. शती में अंतर्धार्मिक विवाह का एक नियम बनाते हुए अकबर ने घोषणा की थी कि, 'यदि कोई हिंदू स्त्री किसी मुसलमान से प्रेम करने लगे और मुसलमान बन जाए तो उसे बलपूर्वक उससे अलग करके उसके परिवार को सौंप देना चाहिए।[39] हालाँकि कई मामलों में नेक दिल अकबर ने हौले से प्रकृति के इस नियम को स्वीकार भी किया कि प्रेमी मुसलमान हो और स्त्री हिंदू बनी रहे या प्रेमी हिंदू हो और स्त्री मुसलमान बनी रहे तो इसमें कोई बात अनुचित प्रतीत नहीं होती।[40]

बौद्ध धर्म ने हिंदू धर्म से भिन्न स्त्रियों को एक अलग वर्ण माना है; लेकिन उनकी दृष्टि भी कमोबेश वही रही जो अन्य धर्मों की थी। स्त्रियों के विषय में बतलाते हुए महात्मा बुद्ध कहते हैं कि ''हे ब्राह्मण! स्त्रियों का अभिप्राय पुरूष की प्राप्ति होती है। उनका प्रधान विचार अलंकारयुक्त रहना होता है। उनकी प्रतिष्ठा पुत्र होने से होती है। उनकी नज़र असपत्नीक बने रहने पर होती है। उनकी परम संतुष्टि ऐश्वर्य–प्राप्ति से होती है।[41]

---

[38] के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पृष्ठ संख्या, 133
[39] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (भाग–2), पृष्ठ संख्या, 211
[40] वही, पृष्ठ संख्या, 211
[41] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (भाग–2), पृष्ठ संख्या, 576

शिक्षा के अधिकारों से वंचित तत्कालीन स्त्री वर्ग वेदांत के दार्शनिक मतों और बौद्धिक तर्कों को समझने में असमर्थ था। 'भक्तिमार्ग सर्व सुलभ एवं लोकप्रिय हो रहा था, अनेकानेक विस्मयकारी धार्मिक कथायें समाज में प्रचलित होने लगीं। उच्च बौद्धिक प्रशिक्षण के अभाव में स्त्रियाँ सहज विश्वासी या अंधविश्वासी होने लगी, जो उनके विवेक के विकास के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।[42] समाज इस काल में अनेक झंझावातों से गुजर रहा था। अनेक विकट समस्याएँ सामने थीं। राजनैतिक पराभव एवं सामाजिक पतन के इस युग में अनेक धार्मिक आंदोलन हुए। भक्ति आंदोलन की कई शाखाएँ, उपशाखाएँ विकसित हुईं, जिनके सिद्धांतो को समझने में विद्या शून्य सामाजिक स्त्री स्वयं को अयोग्य पाती थी; परंतु भक्ति ज्ञान, विज्ञान एवं आचरण सिद्धांत से आगे की चीज है, जिसे विरले ही प्राप्त कर पाते हैं। यही भक्ति इस युग में स्त्रियों की आराधना का दृढ़ अवलंब बनी। इसी का सहारा लेकर अनेक भक्त एवं संत कवयित्रियों ने जीवन और जगत के रहस्य से साक्षात्कार किया। यह हर्ष का विषय है कि पूरे भारत में अनेकानेक भक्त कवयित्रियों की एक स्वस्थ परंपरा है। इनके द्वारा विपुल मात्रा में साहित्य सृजन हुआ है। सदियों से दबे हुए व्यक्तित्व में कवित्व का अंकुर फूट पड़ा। कविता की इस मधुमती वेगधारा में जन–जीवन रसप्लावित हो बह उठा। घर द्वार एवं संसार का त्याग करके पूर्ण समर्पण एवं विराग की भावना से साधना पथ पर चलती हुई भक्त संत कवयित्रियाँ जीवन के परमतत्व को प्राप्त करती हैं, जिसका प्रमाण स्वयं उनकी कविताओं में निहित है। इनकी साधना किसी न किसी गुरू के शिष्यत्व में चली जैसे, चरणदास की शिष्याएँ दयाबाई, सहजोबाई, कबीर की शिष्या लोई, संत रामदास की शिष्या अक्काबाई, बयाबाई, बहिणाबाई, नामदेव की शिष्या जनाबाई, संत दादू की शिष्या बावरी साहिबा इत्यादि। बावरी साहिबा तो इतनी उच्चकोटि की भक्त थीं कि उनके नाम से बावरी पंथ ही चल पड़ा।

आश्चर्य का विषय है कि जिन संतो ने शिष्या रूप में उक्त कवयित्रियों को भक्ति का संबल प्रदान किया वही गुरू नारी को भक्तिमार्ग में बहुत बड़ी बाधा के रूप में देखते हैं। यह बाधा घर, परिवार और विषय भोगों की है जिसका प्रमुख कारण स्त्री है। संत स्वीकार करते थे कि स्त्री का आकर्षण ही आध्यात्मिकता और भौतिकता के मध्य संघर्ष का कारण है। (इसका विस्तृत विवेचन इसी अध्याय के उप–अध्याय 'मध्यकालीन पुरूष लेखन का नारी विषयक परिदृश्य' में किया जायेगा)। एक और आश्चर्य का विषय यह है कि संतो ने अपने ग्रंथो में जिस नारी की घोर निंदा की है वे स्वयं उस अनित्य, अविनाशी ब्रह्म को पाने के लिए नारी विषयक अभिधान स्वीकार करते हैं। संतो के इस द्वन्द्व और अपशब्दों से घिरी होने के बावजूद कई महिला संतो ने उत्कृष्ट साहित्य की रचना की जो उनकी जिजीविषा तथा भगवान के प्रति परम भक्ति का परिचायक है। 'काव्य की इस धारा में स्त्रियों की वाणी तथा ज्ञानात्मक विवेचनाएँ मानों

[42] ए. एस. अल्टेकर, आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमिन इन सोशल लाइफ, पृष्ठ संख्या, 40

अपने गुरूओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करती हुई प्रतीत होती हैं कि नारी में केवल आकर्षण ही नहीं है।[43] अपितु आध्यात्मिकता की ऊँचाईयों को छू लेने की क्षमता भी है।

मध्यकालीन धर्म साधना का आकलन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में धर्म का मूल्यांकन केवल पितृसत्ता के पैमानों पर हुआ है; जबकि मातृसत्ता के आधारों पर भी इसका मूल्यांकन होना चाहिए। आलोच्यकाल में उपस्थित सभी धर्मों में स्त्री एक भिन्न व्यक्तित्व था जिसे धर्मानुकूल, समाजानुकूल तथा विद्यानुकूल कभी नहीं समझा गया। उल्लेख्य है कि वृक्ष की उत्पत्ति बीज से होती है अतः बीज ही वृक्ष का कारण है। इस संसार के सृष्टिकर्ता के रूप में स्त्री ही वह बीज है जो पुरूष नामक वृक्ष को रूप प्रदान करती है। फिर क्या इसे नियति माना जाए कि जिस प्रकार बीज समाप्त हो जाता है या उसका पदार्थ परिवर्तन हो जाता है उसी प्रकार स्त्री अधिकारों का हस्तांतरण हो जाता है ? ऐसे में क्या ये माना जाए कि स्त्री ने पुरूष समाज की रचना कर अपने ही अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न कर लिया है! तमाम देशों में और विशेषकर भारत में पुरूष वर्चस्ववाद स्त्री के अधिकारों का दमन करता हुआ फल–फूल रहा है। मनुष्यता, जिसे वेदों में श्रेष्ठ योनि कहा गया है क्या उसका यही कर्तव्य है कि वह अपनी अस्तित्वदायिनी के लिए संकट उत्पन्न कर दे ? क्या समकालीन घटनाएँ अतीत की घटनाओं का ही अनिवार्य अंग नहीं हैं ? यदि हैं तो क्या, स्त्री अस्मिता का संकट पुरूष वर्चस्व को समाप्त नहीं कर देगा ? या कि पुरूष अस्तित्व का संकट उत्पन्न नहीं हो जायेगा ?

राजनीतिक परिदृश्य

किसी भी देश एवं काल का राजनीतिक परिदृश्य उस देशकाल की सुदृढ़ता, जनमानस, लोकाचार, तीज–त्यौहार इत्यादि की दशा और दिशा की सही जानकारी प्रदान करता है। ऐसे में यदि राजनीति में स्त्री की भूमिका का मूल्यांकन करना हो तो बात और भी पेचीदा हो जाती है क्योंकि इतिहासों ने बड़ी ही चतुराई से स्त्री के राजनीतिक योगदान को नज़रअंदाज कर दिया है। जिस तरह इतिहास ने मध्य एशिया की शासिका और चंगेज खाँ की पुत्रवधु ईबुस्क़न, चग़्ताई खाँ के पौत्र करा हलाकू की विधवा और्ग़नाह् ख़ातून, बाबर की नानी ईसान दौलत ख़ानम, अकबर की माँ हमीदा बानो, बदरख़्शाँ की शासिका हर्रम बेगम का संज्ञान नहीं लिया उसी तरह रज़िया सुल्तान, नूरजहाँ, जहाँआरा बेगम, चाँदबीबी, जीजाबाई, ताराबाई, अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती को भी अपने परिदृश्य से बाहर कर दिया; नतीजतन हमें शहंशाह अकबर तो दिख पड़ते हैं लेकिन उसकी मार्गदर्शिका हमीदा बानो बेगम दृष्टित नहीं होतीं; शाहजी तो दिख पड़ते हैं लेकिन जीजाबाई दिखाई नहीं देतीं। इतिहास और इतिहासकारो की यह बाज़ीगरी न केवल सामाजिक संचालन में बाधा उत्पन्न करती है बल्कि शासिकाओं, प्रशासिकाओं के महत्त्व और ममत्व का भी अपमान

[43] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 46

करती है; इसलिए मुगल और हिंदू शासिकाओं अथवा मार्गदर्शिकाओं का सही–सही मूल्यांकन अति आवश्यक है जिसके लिए तत्कालीन इतिहास की कुछ जाँच–पड़ताल कर लेनी जरूरी है।

एक हज़ार ईस्वी सन् के आसपास का समय राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस समय तक भारतीय उपमहाद्वीप के कई हिस्सों पर तुर्क कबीलों का अधिकार हो चुका था और कन्नौज के अतिरिक्त कोई सैनिक शक्ति नहीं बची थी जो युद्धरत हिंदू राजाओं को नियंत्रित करती। बहरहाल, कन्नौज के बिखरने के बाद हिंदू राजाओं की न समझी ने मुगलों को निमंत्रण दिया; नतीजतन तुर्कों को हराने के बाद धीरे–धीरे समस्त उत्तरभारत पर मुगलों का कब्जा हो गया और वे भारतीय राजनीति के सिरमौर बन बैठे! इस सबके बावजूद स्त्री समाज मुगल राजनीति को गहराई से प्रभावित कर रहा था। लेकिन दरबारी कार्यों में उनका हस्तक्षेप किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही मान्य था; जिनमें राजपरिवार की महिलाओं की ही भागीदारी स्वीकृत थी। साधारण स्त्रियों के लिए दरबार में कोई स्थान नहीं था। उनकी गिनती किसान, मजदूर, देवदासी, गुलाम, रखैल.....रूप में ही होती थी। इस्लाम में स्त्री को पत्नी, पुत्री, बहन के रूप में सम्मान प्राप्त था और 'इस्मत पनाह' और 'इफ़्तमाब' जैसे रक्षात्मक सूचक शब्द उसके विशेषण थे। सैय्यद और लोदी शासकों को छोड़कर अधिकतर शासक तुर्क और मंगोल वंश के थे। तुर्क महिलाएँ अन्य महिलाओं की अपेक्षा अधिक आज़ादी का उपभोग करती थीं। युद्ध और शांति की समस्या पुरूषों की तरह उनके लिए भी थी। अपने पुरूष संबंधियों पर इनका बहुत प्रभाव था और वे महत्त्वपूर्ण मसलों पर अपनी राय देती थीं। फ़रगना के राज्य को हस्तगत करने में बाबर के बुद्धिमान सलाहकारों में उसकी माँ 'कुतलक निगार' और बहन 'खानजादे बेगम' भी थीं। हुमायूँ अपने घर की स्त्रियों से सलाह–मशविरा करता था और उसने उनसे मिलने के लिए तीन दिन निश्चित कर रखे थे।

मुगलों से पूर्व सुल्तानों के शासनकाल में स्त्रियों का कोई योगदान नहीं था। रजिया सुल्तान इसका अपवाद थी। गुलामवंश के शासक इल्तुतमिश की पुत्री रजिया दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाली एकमात्र स्त्री है। 'इसमें सम्राटों के समस्त गुण मौजूद थे। यह आदरपूर्वक कुरानशरीफ का पाठ करती थी। कई विधाओं का भी इसे पर्याप्त ज्ञान था। पिता के समय में ही ये मुल्की मामलों में हस्तक्षेप करने लगी थी। पिता ने भी उसको ऐसा करने से रोकने के बजाए और बढ़ावा देने के लिए ग्वालियर विजय के उपरांत उसको अपनी युवराज्ञी बना दिया। अमीरो के विरोध करने पर सम्राट ने केवल यही उत्तर दिया कि मेरे पुत्र तो केवल मदिरा पान और अन्य व्यसनों में ही व्यस्त रहते हैं। यह रज़िया ही कुछ योग्य है। आप इसे स्त्री न समझे। यह वास्तव में स्त्री रूपधारी पुरूष है। यह पर्दे के बाहर आकर तन में कबा और सिर पर कुलाह लगाए हुए भरे दरबार में आकर बैठा करती थी।[44]

[44] मदनगोपाल, इब्नबतूता की भारत यात्रा, पृष्ठ संख्या, 44

जहाँगीर के शासनकाल में **नूरजहाँ** का भी राजनीति में प्रभावी हस्तक्षेप था। इसका कारण जहाँगीर का राजनैतिक अकौशल एवं उसका विलास–वैभव में डूबे रहना था। यह फारस के दरिद्र एवं बहिष्कृत सामंत मिर्ज़ा घयात बेग की पुत्री थी जिसने अपने बुद्धि कौशल एवं चातुर्य के बल पर न केवल जहाँगीर के हृदय अपितु परोक्ष रूप में साम्राज्य पर भी ग्यारह वर्ष तक राज्य किया। उसका असली नाम 'मिहर–उन–निसा बेगम' था जिसे जहाँगीर ने नूरमहल एवं नूरजहाँ से अभिहित किया। नूरजहाँ का बुद्धिकौशल देखकर 'जहाँगीर से विवाह होने के बाद उसे प्रमुख दीवान बना दिया गया। उसके नाम के सिक्के जारी किए गए थे और उसे बादशाह बेगम की उपाधि दी गई थी। महत्त्वपूर्ण अमीर घटनाओं की जानकारी देने और बादशाह के सामने अपनी बात कहलवाने के लिए नूरजहाँ के पास आया करते थे। शाही घराने पर उसका प्रभुत्व था और उसने फारसी परंपराओं पर आधारित नए फैशन चलाए थे। उसकी स्थिति के कारण दरबार में फारसी कला और संस्कृति को काफी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। नूरजहाँ जहाँगीर की स्थायी संगिनी थी तथा शिकार पर भी उसके साथ जाया करती थी क्योंकि वह एक अच्छी घुड़सवार और निशानेबाज थी।[45] उसकी वीरता का प्रमाण उसका जहाँगीर को महावत खाँ की कैद से छुड़ाना है।

शाहजहाँ की पुत्री **जहाँआरा बेगम (1613–83ई.)** ने राजनीति में शाहजहाँ की बहुत सहायता की। जहाँआरा में सौंदर्य और बुद्धि का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। **'बेगम साहिब'** के नाम से प्रसिद्ध जहाँआरा ने जीवन का बहुत सा समय निराश पिता और महत्त्वाकांक्षी भाइयों की सेवा में बिताया। वह बहुत दयालु थी। उसके कोष का बहुत सा भाग जरूरतमंद लोगों की आर्थिक सहायता पर खर्च होता था। औरंगजेब ने उसे **'बादशाह बेगम'** का सम्मानजनक ख़िताब और सत्रह लाख रूपये सालाना वाली जागीर दी। जहाँआरा की बहन रौशनआरा का भी राजनीति में प्रभाव था। अकबर के शासनकाल में सलीमा बेगम, माहम अनग, हमीदा बानो का राजनीति में प्रभाव था। 'शाहजहाँ के दरबार के एक अमीर अली मरदान खान की पुत्री 'साहिब जी' भी कुशल प्रशासिका थी। वे काबुल के गवर्नर आज़म खाँ की पत्नी थीं। अपने पति की मृत्यु होने के उपरांत नया गवर्नर नियुक्त होने तक उन्होंने अफ़गानों के समान दुर्दांत और संघर्षप्रिय जाति पर नियंत्रण करते हुए शासन किया।[46]

भारत की मुस्लिम महिलाओं में **चाँदबीबी (1547–99ई.)** अद्वितीय स्थान रखतीं हैं। वह अहमदनगर के हुसैनशाह की पुत्री और बीजापुर के अली आदिलशाह की पत्नी थीं। उनके पति उनकी बुद्धिमता से प्रसन्न थे और सभी शासकीय मामलों में उनकी राय लेते थे। वे घोड़े पर सवार होकर सैन्य शक्ति का संचालन करती थीं। 1580 ई. में एक हिजड़े द्वारा अली आदिलशाह की मृत्यु कर दिए जाने पर शासन की पूरी बागडोर उनके हाथों में आ गई। अहमदनगर और बीजापुर में उसे अनेक बार विश्वासघात एवं षड़यंत्रों का सामना करना पड़ा। अहमदनगर में वहाँ के अमीर मियान मन्झू ने शहजादा मुराद से सहायता माँग कर

[45] सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत (नूरजहाँ), पृष्ठ संख्या, 281
[46] उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 321

किले पर घेरा डाल दिया। चाँदबीबी की दूरदर्शिता एवं सैन्य संचालन से उन्हें अपना घेरा उठाना पड़ा। मुराद उनकी वीरता एवं साहस से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें **'चाँद सुल्तान'** की पदवी दी और अहमदनगर छोड़ दिया।[47] अपने जीवन के इन उतार–चढ़ावों में वह सदैव जागरूक और प्रयत्नशील रहीं। लेकिन एक दिन अपने ही एक दास के विश्वासघात के कारण मुगल सेना नायकों से लोहा लेने वाली इस वीर नारी का जीवन असफलता की करूण गाथा मात्र रह गया।[48]

सम्पूर्ण मध्यकाल हिंदू जाति के लिए पराभव का काल रहा तथापि कुछ स्त्री रत्न ऐसी रहीं जिन्होंने अवनति के इस काल में भी अपने प्रांजल आदर्श, प्रशासनिक क्षमता एवं सैन्य संचालन की योग्यता से तत्कालीन जनमानस को हतप्रभ कर दिया। यह गर्व की बात है कि हिंदू स्त्रियाँ ऐसे समय में स्वयं को सफल शासिक सिद्ध करती हैं जबकि स्त्रियों पर अयोग्यता को आरोपित कर दिया गया था। सुदूर उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम के इतिहासों में ऐसी स्त्रियों के उदाहरण उपलब्ध हैं जिन्होंने न केवल शासन किया, बल्कि युद्ध की उत्कट विभीषिका भी झेली है।

जीजाबाई (1594–1674 ई.) अहमद नगर के सरदार जाधवराय की पुत्री और पूना के जागीरदार मालोजी के पुत्र शाहजी की पत्नी थी। उनके पिता दिल्ली के मुगल शासकों के पक्षधर थे और पति निज़ाम के दृढ़ समर्थक। एक समय ऐसा आया जब जीजाबाई को पिता और पति के बीच कर्त्तव्य का चुनाव करना था और उन्होंने जन्मभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य स्वीकारते हुए पति का पक्ष ग्रहण किया। अनेक भावनाओं के समक्ष कर्त्तव्य निर्वाह का उनका दृढ़ निश्चय साहस, धैर्य और आत्मसम्मान उनके चरित्र के वे महान गुण हैं, जिनका उन्होंने मराठा शक्ति के उन्नायक शिवाजी में पूर्णतः आरोपण किया। शासन के सिद्धांत भी शिवाजी ने उन्हीं से सीखे थे। शाहजी की अनुपस्थिति में पूना की जागीर का प्रबंध उन्हीं के हाथ में था।

उपरिलिखित है कि हिन्दू जाति मुस्लिमों के द्वारा बलपूर्वक धर्मांतरित कराई जा रही थी और हिंदुओं का पुनर्प्रवेश भी बंद कर दिया गया था। ऐसी स्थिति में पुनर्प्रवेश के इस 'अपकारक विचार को गलत सिद्ध करने के लिए उन्होंने इस्लाम धर्म में अन्तरित बाला जी निम्बालकर को पुनः हिंदू धर्म में प्रवेश देकर उससे अपनी पौत्री सरजूबाई का विवाह किया। यह उनके हिन्दू धर्म के उन्नयन के लिए किए गए प्रयासों का प्रमाण है।[49]

ताराबाई (1675–1761 ई.) हम्बीरराव मोहिते की पुत्री और शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी थीं। वे राजाराम से अधिक योग्य मानी जाती थीं। बुद्धिमत्ता और प्रशासकीय गुणों से सम्पन्न ताराबाई महत्वाकांक्षी स्त्रीं थीं। उनके साहस और वीरता के कारण ही राजाराम की मृत्यु के सात वर्ष उपरान्त तक

[47] आर. सी. मजूमदार, ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या, 392
[48] उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 31
[49] कमलाबाई देशपाण्डेय, ग्रेट विमिन इन महाराष्ट्र, पृष्ठ संख्या, 385

औरंगजेब दक्षिण के राज्य पर अधिकार न कर सका। उनके सैन्य संचालन एवं प्रबंधन के उत्तम गुणों के कारण मुगल सेना किले में प्रवेश न कर सकी।

'इंदौर की **अहिल्याबाई (1735–95 ई.)** भी एक कुशल प्रशासिका थीं। वे अल्पायु में ही विधवा हो गई थीं। ससुर मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात् अपने पुत्र मालेराव की संरक्षिका नियुक्त की गईं। मालेराव की मृत्यु के पश्चात् राज्य का संपूर्ण प्रबंध उनके हाथ में आ गया।[50] जिसका उन्होंने अद्‌भुत कार्यकुशलता के साथ निर्वाह किया। अपने असीमित क्षेत्र में वह अत्यंत पवित्र एवं आदर्श शासिक थी।

'रानी दुर्गावती महोबा के चंदेल वंश की राजकुमारी थीं और 500 वर्ष पहले ये चंदेल वंश बहुत ही शक्तिशाली रह चुका था। दुर्गावती के पिता निर्धन हो गए थे और इस अवस्था में उन्हें अपनी पुत्री धनी गौंड राजा को सौंपनी पड़ी जो सामाजिक दृष्टि से उनसे नीचे थे। बाज बहादुर आदि अनेक सामंतों से दुर्गावती का संघर्ष हुआ और वह सदा विजयी रही। 'अकबर ने साम्राज्य विस्तार के लिए बिना कोई कारण बताए गोंडवाना पर आक्रमण किया। रानी दुर्गावती वीरता से लड़ीं लेकिन उनके बहुत से सैनिक अकबर की फौज देखकर भाग खड़े हुए। जबलपुर में उन्होंने गढ़ और मांडला के बीच आखिरी मोर्चा संभाला। एक शक्तिशाली हाथी पर सवार होकर उन्होंने अपनी बची हुई सेना का नेतृत्व किया और अकबर की सेना पर आक्रमण किया। तीरों से वह घायल हों गईं। जब उन्होंने देखा कि शत्रु उन्हें पकड़ लेंगे, तब उन्होंने अपने हृदय में कटार भोंक ली और इस तरह पराजय के बदले मृत्यु को वरण किया।[51] उल्लेखनीय है कि 'रानी दुर्गावती केवल जननी जन्मभूमि हित आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरांगना ही नहीं थी, प्रत्युत् शासन और राजनीति में भी निपुण थी। पति की मृत्यु के पश्चात उसने साहस और निपुणता के साथ शासन किया। आसफ खाँ के आक्रमण का वीरता से प्रतिरोध कर उसने मुगल आक्रमणकारियों को हराया। उसके राज्य में 70,000 ग्राम और कस्बे थे। उसका शासन प्रबंध सम्राट अकबर से भी अच्छा था।[52]

'मेवाड़ के राणा सांगा की विधवा **रानी कर्णावती** का व्यक्तित्व भी देशप्रेम के गौरव से अभिभूत था। उन्होंने उदास सामंत वर्ग में पुनः देशभक्ति की भावना जाग्रत की और गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के चित्तौड़ के आक्रमण का कड़ा मुकाबला किया।[53] राणा सांगा की दूसरी पत्नी जवाहिर बाई ने भी सेना की प्रधान के रूप में युद्ध करते हुए किले को बचाने के लिए प्राणोत्सर्ग किया। इस प्रसंग में फत्ता की माँ भी स्मरणीय है। उन्होंने अपने सोलह वर्ष के पुत्र के साथ युद्धस्थल में जाकर अपूर्व साहस का परिचय दिया।[54]

दक्षिण में केलड़ी राज्य पर भद्रपा नायक एवं सोमेश्वर नायक का राज्य था। 1661 ई. तक दोनों ने साथ–साथ शासन किया। **रानी चेन्नमा** जो सोमेश्वर की पत्नी थीं, अपार प्रशासनिक क्षमता की धनी थीं

---

[50] कमलाबाई देशपाण्डेय, ग्रेट विमिन इन महाराष्ट्र,, पृष्ठ संख्या, 359
[51] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (साम्राज्य की स्थापना और हिंदी प्रदेश), पृष्ठ संख्या, 201
[52] उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 32
[53] आर. सी. मजूमदार, ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या, 43
[54] दिनेश चंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 39

जिसे ध्यान में रखते हुए उनके पति ने स्वयं के एवं अपने भाई के शासनकाल में राज्य की बागडोर उनके हाथों में सौंप दी। 1677 ई. में पति की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने 25 वर्षों तक बुद्धिमानी से शासन किया। 'केलड़ी नृप विजय' और 'शिवतत्व रत्नाकर' से उनके बारे में वृहद् सूचना मिलती है। 'उन्होंने शिवाजी के पुत्र राजाराम को शरण देकर अतीव साहस का परिचय दिया था। राजाराम औरंगजेब के सैनिकों द्वारा पीछा किये जाने पर रायगढ़ से भागकर आये थे और जब मुगलों ने उन्हें पकड़ने के लिए उनके राज्य में घुसने की कोशिश की तो उन्हें हार का सामना करना पड़ा। औरंगजेब उनकी वीरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें बहुमूल्य उपहार भेजकर उनका सम्मान किया।[55]

कुशल शासिकाओं में हमें **'रानी उमायम्मा** का भी उल्लेख मिलता है जिन्होंने 1678–84 ई. तक आटिंगल और त्रावणकोर पर सम्मिलित रूप से शासन किया।[56] ये मंगम्मा चंदगिरी के नायक तुपाकुलालिंगम और तिरूवेल्लोर की वैश्या की बेटी थी। मंगम्मा ने मदुरा के चोक्काथनायक से विवाह किया था और पति एवं पुत्र की मृत्यु के पश्चात् अपने पौत्र विजयरंग चोक्काथ नायक की संरक्षिका के रूप में शासन किया।[57] उपरोक्त वीरांगनाओं के अतिरिक्त 'पूर्व में तिरहुत के राजा शिवसिंह के छोटे भाई पद्मसिंह की मुख्य पत्नी विश्वास देवी अत्यंत प्रवीण और सुसंस्कृत महिला थी। उन्होंने पति के जीवनकाल में ही एक राज्य प्रतिनिधि के रूप में सफलतापूर्वक योगदान दिया।[58] उक्त प्रकार से ही '16 वीं. शती के मध्य में राजा सुकलेन मग की पत्नी चाउचिंग असम के इतिहास में पहली महिला राजनीतिज्ञ थी। उनकी सलाह पर दरबार के तीसरे सदस्य के रूप में 'वरपात्र' का पद सृजित किया गया। गहरी खाई के साथ दुर्ग का निर्माण भी उन्हीं की सलाह पर हुआ था।[59]

उपरोक्त स्त्रीजन्य राजनीतिक परिदृश्य के विश्लेषण और आकलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समय, स्थान और परिस्थितियों की जीवन में बड़ी भूमिका होती है। उक्त शासिकाएँ, प्रशासिकाएँ जिस परिवेश में रहीं उसी के अनुरूप वे कुशल संचालिकाएँ साबित हुईं। वे अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन तब कर सकीं जब उन्हें अवसर प्राप्त हुआ; अतः यदि स्त्रियों को उनकी प्रतिभा प्रदर्शित करने का पूर्ण अवसर दिया जाए (जिससे पूरे मध्यकाल में उन्हें वंचित रखा गया) तो वे भी आत्मबल से परिपुष्ट कुशल वीरांगनाएँ, प्रशासिकाएँ, संचालिकाएँ सिद्ध हो सकती हैं।

---

[55] आर. सी. मजूमदार, ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, (ग्रेट हिंदू विमिन इन साउथ इंडिया), पृष्ठ संख्या, 339
[56] वही, पृष्ठ संख्या, 339
[57] वही, पृष्ठ संख्या, 339
[58] आर. सी. मजूमदार, ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, (ग्रेट हिंदू विमिन इन ईस्ट इंडिया), पृष्ठ संख्या, 339
[59] वही, पृष्ठ संख्या, 339

आर्थिक परिदृश्य

मुगलों के आक्रमणों से पूर्व और पश्चात् उपमहाद्वीपीय भूखंड में व्यापार की एक समृद्ध परंपरा थी। हिंदुस्तान के व्यापारी अन्य देशों के व्यापारियों की अपेक्षा अधिक कार्यकुशल और सिद्धहस्त थे। चीन, दक्षिण पूर्वी–एशिया, पश्चिमी–एशिया या बगदाद, अरब, कंबोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियाँ, थाइलैंड, यमन, ईरान इत्यादि देशों के साथ इनके गहरे व्यापारिक संबंध थे। 'चीनी लोग भारी मात्रा में मसालों का उपयोग करते थे जिनका आयात दक्षिण–पूर्व एशिया और भारत से किया जाता था। चीन के साथ काँच, काफूर, जरी के वस्त्रों, गेंडो, सींगों, हाथींदाँत इत्यादि का व्यापार भी होता था। अरबों ने भी व्यापार का प्रसार भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ किया। यहाँ अरब से खूब सोना और चाँदी आता था; इसलिए तब भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। गुजराती व्यापारी अपने सस्ते वस्त्र के भारी आयात द्वारा बाज़ार पर छाए हुए थे। 'कोरोमंडल तट के कीमती कपड़ों का जिक्र न भी करें तो बंगाल की महीन मलमल तथा गुजरात की जरीवाली कढ़ाई को भारत के राजकुमारों एवं कुलीनों के द्वारा क्रय किया जाता था।[60] दिल्ली, फतेहपुर सीकरी, लाहौर, अहमदाबाद, पटना हिन्दुस्तान के बड़े शहरों में गिने जाते थे तथा व्यापार के बड़े केंद्र थे। 'कश्मीर अपने शाल दुशालों के लिए प्रसिद्ध था। कश्मीर में, और बड़े पैमाने पर लाहौर में, इनके निर्माण के लिए अकबर ने लोंगों को उत्साहित किया था। आगरा और फतेहपुर सीकरी में गलीचों और दूसरे बढ़िया माल की बुनाई होती थी। खानदेश के बुरहानपुर और गुजरात के पाटन में बढ़िया सूती कपड़ा तैयार किया जाता था। ढाका जिले के सुनारगाँव के लिए कहा जाता था कि यहाँ भारत का सबसे महीन और सबसे बढ़िया सूती कपड़ा तैयार किया जाता है।[61] उपरोक्त समृद्ध परंपरा होने के बावजूद किसी ने ये जानने का प्रयास नहीं किया कि उक्त व्यापार में महिलाओं की हिस्सेदारी कितनी थी और कहाँ–कहाँ थी ? खैर! जिस देश में 'कोठी–कुठले को हाथ न लगाओ, घर–बार तुम्हारा' जैसी कहावतें नवविवाहिता स्त्री के लिए प्रचलित हों वहाँ स्त्री की आर्थिक समानता और सम्मान का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। दरअसल आदिकाल के बाद नारी कभी भी वह आर्थिक समानता हासिल नहीं कर पायी जो उसे स्वाभिमानी या स्वावलंबी बना देता। हालाँकि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ जो पति के साथ खेतों में परिश्रम करती थीं आर्थिक रूप से अधिक स्वावलंबी कही जा सकती हैं। ये स्त्रियाँ ताम्बुलवाहिनी, चँवरवाहिनी और पुष्पवाहिनी आदि के रूप में बादशाहों के हरम में नौकरियाँ पाती थीं। व्यवसाय के रूप में संगीत केवल वैश्याएँ ही सीख पाती थीं जिसे कि एक घृणित व्यवसाय माना जाता था।

चरखा मध्ययुग में सूत कातने का एक प्रमुख उपकरण माना जाता था जिसपर अधिकांशतः स्त्रियाँ ही कार्य करती थीं। इससे पूर्व सूत हाथों से तैयार किया जाता था; लेकिन एक औरत हाथ की तुलना में

[60] अशिनदास गुप्ता, मध्यकालीन भारत (भाग–3), पृष्ठ संख्या, 95
[61] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (भाग–1), पृष्ठ संख्या, 205

चरखी से 4 से 5 गुना अधिक कपास साफ कर सकती थी। चरखों के प्रचलन के कारण धागों का उत्पादन कई गुना बढ़ा जिससे देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्राप्त हुई।

आशा के विपरीत हम आलोच्यकाल में कुछ राजकुमारियों और महारानियों को भी व्यवसाय में संलग्न पाते हैं। 'सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप तथा फारसी स्रोतों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि राजाओं, राजकुमारों, राजकुमारियों और हरम में रहने वाली महिलाओं के लिए वाणिज्यिक गतिविधियों में शरीक होना आम बात थी। इस प्रकार जहाँगीर, नूरजहाँ, शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) तथा यहाँ तक कि अकबर की विधवा और जहाँगीर की माँ भी जहाजों की मालिक थीं, जो सूरत और लालसागर के बंदरगाहों तक आते जाते थे।.....शहजादी जहाँआरा के पास भी अपने जहाज थे और वह हालैंडवासियों और अंग्रेजों के जहाजों में भी अपना माल भाड़े पर भेजती थी।[62]

17वीं. और 18वीं. शती में स्त्रियों द्वारा चिकित्सा को व्यवसाय के रूप में अपनाने का उल्लेख मिलता है। '18वीं. शती में एक स्त्री चिकित्सक द्वारा स्त्रियों की बीमारियों के संबंध में लिखा गया विवेचनात्मक निबंध अरबी में अनुवादित किया गया; लेकिन स्त्री चिकित्सकों की संख्या अत्यंत कम थी और यह व्यवसाय कुछ चिकित्सकों के परिवार में विधवाओं द्वारा अपनाया जाता था।[63] विधवा स्त्रियाँ नर्स एवं दाई का कार्य भी करती थीं। निर्धन स्त्रियाँ पान की दुकान पर बैठने को मजबूर थीं। सम्राट अकबर द्वारा शाही शराबखाने की देख–रेख के लिए एक द्वारपाल की पत्नी की नियुक्ति का उल्लेख भी मिलता है।

हिंदू स्त्रियों की तुलना में मुस्लिम स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी होती थी, क्योंकि इस्लामी कानून के अनुसार वे पिता की संपत्ति में भाईयों के समान ही अधिकारिणी थीं। विवाह के पश्चात् भी पिता की संपत्ति में उनका अधिकार होता था। तलाक की स्थिति में भी वे मेंहर के रूप में संपत्ति प्राप्त करती थीं; इसके विपरीत हिंदू स्त्री, विवाह पूर्व एवं पश्चात् पिता की संपत्ति में किसी भी प्रकार की अधिकारिणी नहीं थी।

राजपरिवारों एवं कुलीन परिवारों के अतिरिक्त जीविका के लिए धनार्जन करने वाली स्त्रियों में गणिकायें, देवदासियाँ, वारांगनायें, सेवावृत्ति में रहने वाली दासियाँ, ग्वालिन, नाउन तथा बारबनिताओं का उल्लेख किया जा सकता है। सामान्यतः सौंदर्य, यौवन और कार्यकुशलता द्वारा धनार्जन करने वाली स्त्रियाँ गणिकाएँ कहलाती थीं। समय–समय पर सार्वजनिक भोजों, उत्सवों, शादी–विवाह आदि में मनोरंजन के लिए वेश्याओं व नर्तकियों को आमंत्रित किया जाता था। इनके निवास हेतु नगरों से अलग मुहल्ले बने होते थे। इन्हे सामान्यतः गणिका, पातुर, नर्तकी तथा वैश्या जैसे नामों से संबोधित किया जाता था। उल्लेखनीय है कि मध्ययुगीन समाज में विधवा विवाह और नियोग प्रथा के लोप हो जाने के कारण वैश्यावृत्ति की ओर लोगों का झुकावा बढ़ा, नतीजतन इसमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

---

[62] सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत (भाग–2), पृष्ठ संख्या, 123

[63] आर. सी. मजूमदार, ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या, 42

वैश्यावृत्ति का एक संबंध विधवाओं से भी था। जब विधवाएँ कठोर त्यागमय और तपस्यामय जीवन व्यतीत करने में असमर्थ सिद्ध होती थीं तब उनपर दुराचारी होने का आरोप लगाकर घर से निकाल दिया जाता था। परिवार के इस निष्ठुर व्यवहार से पीड़ित विधवा अपने जीवन यापन हेतु वैश्या व्यापार को अपनाने को बाध्य हो जाया करती थी। इनका जीवन संगीत और ललित कला का सम्मिश्रित स्वरूप था। यही उनका प्रधान व्यवसाय भी था। आज की तुलना में मध्यकालीन समाज में गणिका आदर व सम्मान की पात्र थी।

धनोपार्जन करने का कार्य अहीरों की स्त्रियाँ भी करती थीं। ये दूध से दही जमाती थी और इसी से मक्खन भी निकालती थीं तथा इन्हीं वस्तुओं का कारोबार कर धनार्जन किया करती थीं। अपने श्रम से पैसा कमाने के कारण वे कीमती वस्त्रों जैसे लहंगा इत्यादि धारण करती थीं तथा पूरे साजो श्रृंगार के साथ रहती थीं। इनके लिए 'ग्वालिन' शब्द का प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल में ये एक पेशेवर जाति के रूप में उभरकर सामने आईं। इनके पतियों का कार्य भी ढोर–डंगर चराने का हुआ करता था। ये अपने पतियों का न केवल अन्य कार्य में हाथ बंटातीं थी वरन् अपने परिवारों के पुरूषों के लिए खाना आदि बनाकर गाँव के बाहर चारागाह तक पहुँचाती थीं। कालांतर में ये जातियाँ यादव उपनाम से प्रसिद्ध हुईं।

मध्यकाल में हमें धोबी और धोबिनों के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं जिनके बिना उच्चवर्ग का काम नहीं चल सकता था। उनके कपड़ों को धोने का कार्य यही वर्ग किया करता था जिसमें इनकी पत्नियाँ भी इनका साथ दिया करती थीं। 'धोबिनें अपने पतियों की न केवल धुलाई में मदद करती थीं वरन् अपने घर के काम काज के साथ–साथ दूसरों के घर जाकर कपड़े भी पहुँचाती थीं।[64] इसी प्रकार हमें नाउ की पत्नी नाइन के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। तीज–त्यौहार में ये महिलाओं के साथ श्रृंगार से लेकर अपने जजमान के यहाँ अनेक प्रकार के कार्य करती थीं जिसके लिए इनको अलग से इनाम दिया जाता था।[65] नाइन के साथ अपरिहार्य रूप से बारिन का उल्लेख भी मिलता है जो कनछेदन आदि का कार्य करती थीं।

पेशेवर स्त्रियों में तेलिनों का उल्लेख भी मिलता है जो न केवल अपने–अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर तेल निकालने का कार्य करती थीं वरन् हाट बाज़ार में जाकर तेल बेचने में अपने पतियों की मदद करती थीं। निम्नवर्ग में चमार जाति का महत्व भी मध्यकाल में बहुत था। उनकी स्त्रियाँ भी अपने जाति के पुरूषों के साथ चप्पल व जूतों के निर्माण एवं चर्म शिल्प के अन्य उत्पादों की रंगाई के कार्य में बराबर की हिस्सेदार थीं; इसी प्रकार तम्बोलिनें पान लगाने से लेकर बेचने तक अपने यहाँ के पुरूषों का साथ निभातीं थीं। अतः अवलोकित कालखंड में रंगरेजिन, भटियारिन, मालिन आदि स्त्रियाँ धनार्जन का कार्य बड़े ही विश्वास के साथ किया करती थीं।

---

[64] हेरम्ब चतुर्वेदी, द रोल ऑफ प्रोफेशनल कास्ट विमिन, अध्ययन खंड

[65] हेरम्ब चतुर्वेदी, द सोसायटी ऑफ नॉर्थ इण्डिया इन द सिक्सटीन सेंचुरी, पृष्ठ संख्या, 103

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैदिककाल से ही स्त्रियों को आर्थिक रूप से अपंग कर दिया गया। सभी प्रकार के अधिकारों एवं उसकी स्वतंत्रता को उससे छीन लिया गया ताकि वह आत्मनिर्भर न हो पाए और वर्णव्यवस्था सुचारू रूप से चल सके। फिर भी राजमहलों में रहने वाली राजकुमारियों एवं शहजादियों ने कुछ व्यापारिक अधिकार अपने पास सुरक्षित रखे थे जिनसे दरबार में उनकी महत्ता बनी रहे। निम्नवर्गों में छोटे–मोटे कुटीर उघोगों का प्रचलन सामान्य था इसलिए स्त्रियाँ वहाँ अधिक स्वतंत्र थीं; अर्थार्जन करने के संबंध में वे अपने पतियों से किसी भी मामले में कम नहीं थीं। कुल मिलाकर स्त्रियों के लघु व्यापारिक संबंधों को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए क्योंकि उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है ताकि उनका शोषण बंद हो सके।

मध्यकालीन पुरूष दृष्टि

'पूत के पैर पालने में ही दीख जाते हैं' यह कहावत मध्यकालीन भारतीय साहित्य और विशेषकर हिंदी साहित्य पर खरी उतरती है। हिंदी साहित्य के आदिकाल ने स्त्री जाति की जो भोग्या, वस्तुपरक, नीलमणि, रूपमति, चंद्रमुखी जैसे मानकों से सुसज्जित तस्वीर मध्ययुग के सामने रखी उसे उसने हाथों–हाथ लिया। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद जैसे गहरे आध्यात्मिक दर्शनों के इस युग में नारी और उसकी प्रवृत्तियों को ही उक्त दर्शनों के मध्य बाधा मान लिया गया। कबीर, रैदास, गुरूनानकदेव, सेना, पीपा, धन्ना, दादू, रज्जब, मलूकदास, सुन्दरदास, गरीबदास, यारीसाहब, बुल्लासाहब, दरियासाहब, चरणदास जैसे प्रख्यात संतों, कवियों ने नारी को ही ईश्वर प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा स्वीकार किया है।

भारत का मध्ययुगीन समाज मूर्तिपूजा, कर्मकांड, तंत्र–मंत्र जैसी व्याधियों से घिरा हुआ था। विषय वासनाओं में वह स्वयं के स्वत्व को भूल चुका था। उस समय संतों ने ही उसे सद्मार्ग का भान कराया और बाह्य जगत से अंतर्जगत का मार्ग दिखाया; लेकिन नारी के संदर्भ में वह स्वयं दिग्भ्रमित हो गया। उसने स्त्री जाति को काम, वासना, माया रूप में ही देखा और ईश्वरोपासना में बाधा बतलाया। 'सती प्रथा' जिसे कि मध्ययुग की सर्वाधिक घृणित प्रथा माना जाता है, वह संतो की दृष्टि में प्रशंसनीय है क्योंकि नारी सती होकर न केवल अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है, बल्कि अपनी शुद्धता का भी प्रमाण प्रस्तुत करती है।

नारी की माया के रूप में निंदा सर्वप्रथम संत साहित्य में मिलती है। उनके अनुसार सांसारिक समस्याओं और दायित्वों से घिरी होने के कारण नारी पुरूष को गृहप्रपंच की ओर खींचती है। परिवार वृद्धि का मूल कारण होने के कारण मायाजाल में फँसाती है। वैराग्य मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। आश्चर्य है कि संसार के सभी वैरागियों ने उसे तप के मार्ग की बाधा माना है। जैन एवं नाथ कवियों ने उसे योग मार्ग

की बाधा एवं संसर्ग से पुरूष का नाश करने वाली बताया है। नाथपंथियो की यह दृष्टि वज्रयानियों की घोर कामुकता व इद्रिय परायणता की प्रतिक्रिया में विकसित हुई। इस युग में कामुकता, विलासिता, इंद्रिय सुखभोग का बोलबाला चारों ओर हो रहा था। भक्ति केवल उसका साधन मात्र बनकर रह गई थी। स्वयं गुरू मत्स्येंद्रनाथ कामासक्त हो गए थे जिन्हें जागृत करते हुए गोरखनाथ को कहना पड़ा कि 'जाग मच्छंदर गोरख आया'। उन्होंने यह तथ्य प्रस्तुत किया कि–

नदी तीरे बिरवा, नारी संगै पुरूषा। अलप जीवन की आशा।[66]

अर्थात् नारी के संसर्ग में लीन पुरूष एवं सरिता के तट पर स्थित पुरूष अनिश्चित जीवन वाला होता है। इससे पूर्व त्रिलोचन, नामदेव, वेणी आदि; नारी के प्रति वितृष्णा का भाव प्रकट कर चुके थे लेकिन इस संदर्भ में नैरंतर्य हम कबीर से देखते हैं। कबीर माया के अनेक रूपों में स्त्री का भी एक रूप मानते हैं और इस माया रूपिणी स्त्री के भी अनेक रूप हैं। वह पापिणी है, मोहिनी है, जो समस्त जग को भव के कोल्हू में पेर रही है; कोई असाधारण योगी ही इससे बच सकता है। वह विश्वासघातिनी है, डाकिनी है, जो भक्ति मुक्ति और ज्ञान तीनों का नाश कर देती है। वह जगत की झूठन है, नरक का कुण्ड है, मधुमक्खी है जो उसे छेड़ता है उसे काटती है। कबीरदास नारी की ओर देखने का भी निषेध करते हैं क्योंकि इसे देखते ही विष चढ़ता है, इसलिए अपनी माता हो तो भी उसके समीप नहीं बैठना चाहिए। यथा–

नारी देखि न देखिये, निरखि न कीजै दौरि।
देखे ही थै विष चढै, मन आवै कछु औरि।।[67]

ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं–कहीं कबीर नारी के प्रति अत्याधिक कठोर हो गए हैं। उनकी घृणा नारी के प्रति नहीं अपितु नारी जाति के प्रति दृष्टिगत होती है। संत दादू की नारी दृष्टि भी कबीरदास के अनुरूप ही दिखाई देती है। वे स्वीकारते हैं कि नाना रूप धारिणी, कनक कामिनी द्वारा मुग्ध किया हुआ मनुष्य माया गृह के कूप में डूब जाता है। उदाहरणार्थ –

बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप।
मोह्या कनक अरू कामिनी, नाना विधि के रूप।।[68]

संत दादू का यह भी मत है कि नारी हरिनाम का विस्मरण कराने वाली है और सारा संसार उसी भामिनी के नाना रूपों में बंधा हुआ है; इसलिए दादू पत्नी रूप में नारी का गृहण अधर्म समझते हैं और अवधूतों द्वारा नारी त्याग की मान्यता का समर्थन करते हैं। संत रज्जब तो नारी को ग्राह ही समझते हैं। उन्होंने गज–ग्राह के रूपक से गृहिणी को सांसारिक सागर में खींचने वाला बताया है। वे मानते हैं कि जब जड़ पदार्थ नारी के हाथों में पड़कर चक्कर काटते–काटते घिस गए तो चेतनाशील नर कैसे बच सकते हैं। संत

[66] गोरखनाथ, गोरखबाणी, पृष्ठ संख्या, 137
[67] कबीर, कबीर साखी संग्रह, पृष्ठ संख्या, 166
[68] दादूदयाल, दादूदयाल की बानी, पृष्ठ संख्या, 112

मलूकदास ने स्त्री को अमल की घोंटी बताते हुए सारे संसार को अमली कहा है। जबकि सुंदरदास ने नारी के बाह्य रूप को ही सुंदर कहा है और भीतर कचरा ही कचरा बताया है। जैसे,

सुन्दर देह मलीन है, राख्यौ रूप संवारि।
ऊपर में कलई करी, भीतर भरी भंगारि।[69]

सुंदरदास अपने काव्य में उन पंच तत्वों की आलोचना करते हैं जिनसे नारी शरीर निर्मित हुआ है। वे भूल जाते हैं कि नर शरीर भी इन्हीं तत्वों से संचालित है। वीभत्सता की पराकाष्ठा पर पहुँचते हुए वे कहते हैं कि 'पुरिष मूत्र हूँ ऑत एकमेक मिलि रहीं।' सुंदरदास का कथन है कि उसकी प्रभुता पाप के जैसी है, सम्मान साँप के जैसा है, बढ़ाई बिच्छू के जैसी और वह स्वयं साक्षात् नागिन है।[70] अतः सुन्दरदास जी नारी त्याग का उपदेश देते हैं।

दाई पंथी संत गरीबदास नारी की प्रकृति से विचलित हैं। उन्हें इस बात का भय है कि नारीरत रहने के कारण इंद्र की बड़ी दुर्दशा हुई थी। दुर्वासा जैसे ऋषि, जिनके तप का लोहा संपूर्ण संसार मानता था, वे भी उर्वशी के मोहपाश में पड़कर दिग्भ्रमित हो गए और अपना समस्त तपोबल नष्ट कर बैठे। गुरू गंदर्भसेन को नारी के कारण ही गर्दभ बनना पड़ा था। उन्हें भवसागर से बाहर निकलने का मार्ग नहीं दिख रहा है जिसमें नारी सबसे बड़ी कठिनाई है।

बिहार वाले दरिया साहब कनक और कामिनी के फंदे में पड़े हुए मनुष्य को कलप कलप कर जीवन व्यतीत करने वाला मानते हैं। उनके कथनानुसार इस मायारूपी भवसागर से पार वही जा सकता है जो नारी का त्याग कर दे। कामिनी यमपाश है अतः उसे त्यागने में ही कल्याण है।[71] दास जगजीवन तो नारी निंदा में दरिया साहब से भी दो कदम आगे निकल गए हैं। वे कहते हैं कि नारी माता हो या पत्नी, जानबूझकर कुचाल चलती है।[72] संत रैदास का योग यह कहता है कि नारी ऐसी होती है कि पुरूष के मरने के तुरंत पश्चात् उसका त्याग कर देती है; चाहे वह उसकी कितनी भी प्रिय हो।[73] संत कमाल के अनुसार तो स्त्रियाँ विषतुल्य हैं और इनके त्याग में ही कल्याण है। गुरू अर्जुनदेव ने तो विषयासक्ति की बड़ी निंदा की है और विषयासक्त जीव को अगले जन्म में विष्ठाकीट होना अवश्यंभावी बतलाया है।[74] संत चरणदास ने नारी को नरक की खान कहा है जो सिंह से भी अधिक भयंकर, मदार और भटकटैया से भी भयानक और विषाक्त है; इसलिए वे दोनों प्रकार की नारी को (स्वकीया और परकीया) त्याज्य मानते हैं क्योंकि आग तो आग होती है उसकी प्रकृति है जलाना; चाहे वह घर की हो या बाहर की हो।

---

[69] गजानन शर्मा, भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 43
[70] कृष्ण गोस्वामी, संत काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 119
[71] दरिया साहब, दरियासागर, पृष्ठ संख्या, 39
[72] मातु पिता सुत हित में नारि। चलत कुचाल कुमन्त्र विचारि।। जगजीवन साहब की बानी (भाग–2), पृष्ठ संख्या ,07
[73] घर की नारि, उरहिं तन लागि। उह तौ भूतु भुतु करि भागी।। भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 44
[74] जो जानै में जोवन वन्तु। सो होवत विषटा का जन्तु।। भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 39

उल्लेखनीय है कि भारतीय साहित्य परंपरा में सभी संत नारी निंदा के पक्षधर नहीं हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो नारी को पूज्य मानते हैं। दूलनदास, प्राणदास, यारीसाहब और मारवाड़ वाले दरियासाहब उस संत परंपरा के हिमायती हैं जिसमें नारी निंदा का स्वर सुनाई नहीं देता। संत दूलनदास तो नारी के प्रति बहुत उदार दृष्टिकोण रखते हैं। उनके अनुसार स्त्री समस्त संसार की माता है, और उसका पोषण करके उसे बड़ा करती है। अतः वह निंदा के योग्य नहीं है वरन् वन्दनीय है, जो नारी निंदा करते हैं वे मिथ्याभाषी हैं।[75]

प्रकृति का चक्र विकराल है, इसे मनुष्य चुनौती प्रदान नहीं कर सकता; इसलिए नारी निंदा के तमाम कोणों का उपयोग करने के पश्चात् भी संतगण इस तथ्य को नहीं झुठला सके कि प्रभु की शरण में जाने से पूर्व मानवीय व्यवहार हेतु उन्हें रहना तो इसी जगत में है; इसलिए उपर्युक्त समस्त कारणों के बावजूद उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया तथा ग्रहस्थ आश्रम को अपनाया। ग्रहस्थाश्रम में कोई बाधा उत्पन्न न हो इसके लिए उन्होंने परनारी निषेध का उपदेश दिया।

कबीरदास का मानना है कि रावण के दस सिरों का नाश परस्त्री के कारण ही हुआ है। सुंदरदास परनारीरत जनों को अज्ञानी समझते हैं। नानकदेव परस्त्री लोभ को विकार की श्रेणी में रखते हैं। रज्जब जी ने तो अपनी ही गृहिणी छोड़ दी तो फिर पराई स्त्री से क्यों संबंध स्थापित करने लगे। इस संबंध में वे सर्प और केंचुल का उदाहरण देते हैं।[76] संत नामदेव तो पराई स्त्री के त्याग को उच्चादर्श मानते हैं क्योंकि ऐसे लोगों के निकट ईश्वर का सामीप्य होता है। परनारी के संदर्भ में गुरू चरणदास के विचार भी ऐसे ही हैं। वे परनारी को नरक के द्वार तक ले जाने वाली बताते हैं। उनकी दृष्टि में वे जन महामूर्ख हैं जो परनारी में रसमग्न होते हैं।[77]

आश्चर्य का विषय है कि भारतीय साहित्य के लगभग सभी संतो ने सती और पतिव्रता स्त्री की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इन्होंने वासनायुक्त, मायारूपिनी, कुमार्गगामिनी और व्यभिचारी नारी की जितनी निंदा की है उतनी ही प्रशंसा सती और पतिव्रता नारी की, की है। इस संदर्भ में कबीर का कथन है कि 'जिस स्त्री के एक पति है वह अत्यंत सुखी है जबकि व्यभिचारिणी के अनेक खसम हैं फिर भी उसे कष्ट हैं।[78] कबीर का कथन है कि पतिव्रता स्त्री काली, कुरूप, मैली जैसी भी हो स्वीकार्य है। ऐसी स्त्री पर बहुपति वाली स्त्रियाँ न्यौछावर की जा सकती हैं। कबीर कहते हैं कि पतिव्रता स्त्री ने यदि काँच की माला भी पहनी हो तो भी वह इतनी सुंन्दर लगती है जैसे उसने सूर्य और चँद्रमा की ज्योति को धारण किया हो। कबीर ने अपने साहित्य में चार प्रकार की स्त्रियों की प्रशंसा की है—कुमारी कन्या, विरहिणी, पतिव्रता एवं

---

[75] जगतु मातु वनिता अहैं, बूसी जगत जियाव। निंदन जोग न ये दोऊ, कहि दूलन मत भाव।। दूलनदास की वाणी, पृष्ठ संख्या, 36
[76] रज्जब घर घरणी तजी, पर घरणी न सुहाय। अहि तजि अपनी केचुली, किसकी पहिरे जाय।। भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 50
[77] पेट भरे भर सोइया, ते नर पशु समान। परनारी के आपनी, तिनका नाहीं ज्ञान।। चरणदास जी की बाणी, पृष्ठ, 80
[78] स्पतिवरतर को सुख घना, जाके पति हैं एक। मनमेली विभीचारिनी, जाके खसम अनेक।। संत बानी संग्रह, पृष्ठ 40

सती। संत रैदास ने भी सुहागन नारी को संसार में सबसे सुखी बताया है। संत रज्जब तो कामिनी को कायर और सती को सूरमा बताते हैं। संत दादू कहते हैं कि स्त्री निम्नकुल की हो या उच्चकुल की; पतिसेवा ही उसका परमधर्म है। रूपवान होना कोई कसौटी नहीं है। वह सभी प्रकार से अपने पति में रत रहे और अन्य पुरूषों को भाई माने। स्त्री जाति के परम निंदक सुंदरदास जी के कथ्यानुसार पतिव्रता स्त्री को अष्ट सिद्धि और नवनिधि स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। संत चरणदास जी ने सदा पति की आज्ञा का पालन करने वाली स्त्री को ही पतिव्रता स्वीकार किया है। वह दिन–रात अपने प्रिय के रंग में ही रंगी रहती है। स्वामी वाजिंद जी इससे भी एक कदम आगे बढ़ गए हैं। उनके अनुसार पतिव्रता स्त्री वह है जो अपने पति के सभी दोषों को अपने ऊपर ओढ़ ले। उसे किसी और की दी हुई वस्तु नहीं सुहाती अपितु उसके लिए पति द्वारा दिया गया पत्थर ही भला है। 'संत रज्जब का कथन है कि एक पतिव्रता नारी केवल अपने पति को ही संपूर्ण संसार में एकमात्र पुरूष मानती है।[79] शेष संसार उसके लिए पुरूष रहित है।

संत भक्त अपनी तल्लीनता में ब्रह्म को अपना प्रिय या पति स्वीकार करते हैं और स्वयं को उसकी प्रेयसी। कबीर कहते हैं कि 'वो मेरा पियु, में पियु की बहुरिया।' लेकिन जब इसी दर्शन को हम घोर सामाजिक भूमि पर उतारते हैं तो इसके अंतर्विरोध हमें स्पष्ट हो जाते हैं; अर्थात् दर्शन में जो बहुरिया है वह परमभक्त है और वह अपने पियु अर्थात् परम सत्ता में ध्यान लगाए हुए है। लेकिन तत्कालीन भारतीय समाज में जो बहुरिया है वह कई प्रकार की जकड़बंदियों से त्रस्त है। उसकी श्वास पर भी उसका अधिकार नहीं है। वह प्रत्येक क्षण अपने पति में ही लौ लगाने के लिए विवश है जबकि परमसत्ता अर्थात् पति पर ऐसे कोई प्रतिबंध नहीं हैं। संतो की मान्यता है कि उस अलौकिक सत्ता में लौ लगाई जाए तो वह जीवात्मा को उज्जवल कर देगी तथा जीवात्मा इस भवसागर से पार उतर जायेगी; लेकिन मध्यकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि में एक परमभक्त पत्नी अपने स्वामी में कितनी ही लौ क्यों न लगा ले तो भी उसे माया व कामिनी ही समझा जायेगा और सती होने के लिए विवश किया जायेगा। इस दृष्टि से संत साहित्य को असंगत साहित्य कहना चाहिए।

संतो की अपेक्षा यदि हम सूफ़ी साहित्य पर ध्यान दें तो वहाँ अल्लाह की आड़ में नारी की पीड़ा या दर्द की सुगबुगाहट अवश्य है। इसका एक प्रमुख कारण सूफियों का भक्ति दर्शन है जो संतो से एकदम उलट है। उनके यहाँ अलौकिक सत्ता को स्त्री माना गया है और भक्त को पुरूष रूप में चित्रित किया गया है। संभवतः स्त्रीरूपी परमसत्ता के प्रति सूफ़ी साहित्य इतना कठोर नहीं हो पाया जितना कि संत साहित्य दिखाई देता है; इसलिए मानसरोदक खंड में पद्मावती की सहेलियों के माध्यम से जायसी ने मध्यकालीन समाज में उपस्थित घुटन और श्वासों के अवरोध को इन शब्दों में प्रकट किया है–

ए रानी मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।

[79] पतिव्रता के पीव बिन, पुरूष न जनम्याँ कोइ। भक्तिकालीन काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 61

जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।।
पुनि सासुर हम गवनव काली। कित हम कित यह सरवर पाली।।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा।।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारून ससुर न निसरै देहीं।।
पिउ पियार सिर ऊपर। पुनि सो करैं दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख। दहुँ कस जनम निबाह।।[80]

एक कुमारी कन्या विवाह पश्चात् अपने ससुराल जाने को लेकर कितनी चिंतित है; उक्त दोहा–चौपाई में स्पष्ट है। वे इस घटना के प्रति आश्वस्त हैं कि पिता के घर पर ही हमें जो लाड प्यार प्राप्त हो रहा है, ससुराल जाने पर वह नष्ट हो जायेगा। सास व ननद ठीक से बात नहीं करेंगी तथा उनकी बोली जान ले लेगी और कठोर ससुर घर से बाहर नहीं निकलने देगा। चूँकि अभी पिता के आश्रय में हैं इसलिए हे सखियों जो कुछ खेलना–खिलाना है, अठखेलियाँ करनी हैं, सरोवर क्रीड़ा करनी है, अभी कर लो क्योंकि काल अनिश्चित है। न जाने कल हम मिल पाएँ या न मिल पाएँ, सरोवर कहाँ हो और हम कहाँ हों, हम फिर मिल सकीं या न मिल सकीं! हमारा पति हमें दुख में रखेगा या सुख में; कुछ भी निश्चित नहीं है इसलिए हे सखी अपनी मनोभावनाओं की पूर्ति आज ही कर लो।

बेटी को ससुराल योग्य बनाने का कार्यभार उसके जन्मते ही उसकी माँ को दे दिया जाता। सहेलियों की संगत इस प्रसंग में उसकी सहायता करती है। यह एक प्रकार का घुटनभरा प्रशिक्षण होता है जिसमें स्त्री को निरंतर यह ध्यान रखने को कहा जाता है कि पराये घर जाकर किस प्रकार सासुमाँ को सम्मान देना है, कैसे ननद से बात करनी है ? 'मृगावती' में रूपमति की माँ रूपमति को ससुराल जाते समय यही उपदेश देती है। यथा–

सासु ननद कहुँ उतर न दीजै। जौ वै कहहिं सो सिर पर कीजै।।
बिन पूछै बकत न मुंह खोली। मधुरे वचन परजन सैं बोली।।[81]

यदि सगुण कवि तुलसीदास की बात की जाए तो उन्होंने सीता जैसा एक ऐसा नारी पात्र गढ़ा जो मध्यकालीन साहित्य की परिधि के बाहर दृष्टिगत होता है। विस्मित कर देने वाला तथ्य यह है कि संत साहित्य में पति के प्रति स्त्री के जितने दायित्व गिनाए गये हैं वे सब; तुलसीदास सीता के द्वारा पूरे करवाते हैं। बस एक क्रांतिकारी तथ्य यह है कि अपनी परीक्षाएँ देते–देते जब सीता आजिज आ जाती है तो वह अपने बच्चों के लिए उनके अधिकार की माँग करती हैं और इसके लिए भी उसे परीक्षा देनी पड़ती है। इस संदर्भ में मध्यकालीन संतों और तुलसीदास में कोई विशेष लक्षित नहीं होता।

[80] जायसी, पद्मावत् (मानसरोदक खंड), पृष्ठ संख्या, 23
[81] कुतुबन, मृगावती, पृष्ठ संख्या 408

प्रत्येक युग में मित्रता और प्रेम ही एक ऐसा संबंध रहा है जिसमें मनुष्य समानता का अधिकार सहजता से प्राप्त कर लेता है। सूरदास ने स्वयं के लिए और गोपियों हेतु इसी संबंध के आधार पर भक्तिकाल के अंधकार में समानता की माँग की है। यदि हम थोड़ी देर के लिए दर्शन का चश्मा उतार दें तो खुली आँखों से देख सकेंगे कि राधा बेखटके गोपाल कृष्ण को उसकी गलती का अहसास कराते हुए कहती है–

तुम पै कौन दुहावै गैया।
इत चितवत, उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया।।[82]

संपूर्ण मध्यकालीन हिंदी साहित्य में यदि कहीं स्त्री–पुरूष के मध्य स्वतंत्रता, समानता, सम्मान और बंधुत्व की बात हुई है तो वह कृष्णभक्ति में ही संभव हो सकी है। इसलिए राधा बेझिझक कृष्ण की माताश्री यशोधरा के गाय दुहाने के प्रशिक्षण पर प्रश्न कर देती है। जबकि सामाजिक जीवन में ऐसे प्रश्न नारी जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं।

हर समय और समाज में भाषा ही वह माध्यम है जिससे मनुष्य अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति सरलता से कर सकता है; लेकिन सभी समाजों की अधिकांश भाषाएँ पितृसत्तात्मक समाज का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत, हिंदी, इत्यादि भाषाओं पर पुरूष समाज का ही वर्चस्व रहा है। इन भाषाओं में रचित सभी धर्मोपदेशक ग्रंथ पुरूष समाज की वकालत करते हुए स्त्री को कठघरे में खड़ा कर देते हैं। संभवतः सूरदास बड़े गहरे में जाकर इस बात को पहचान गए थे; इसलिए उन्होंने उद्धव द्वारा भेजी गई कृष्ण की पत्री का जवाब गोपियों की जलधारा से दिलाया है, न कि भाषा का इस्तेमाल कर। प्रतियुत्तर में गोपियों की विरह व्यथा इस रूप में प्रकट हुई है–

निरखत अंक स्यामसुन्दर के बार–बार लावति छाती।
लोचन–जल कागद–मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।।[83]

भक्तिकाल के उक्त कवियों की स्त्री विषयक दृष्टि के विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि संत साहित्य में दूलनदास, यारी साहब और मारवाड़ वाले दरियासाहब के अतिरिक्त कोई भी संत नारी के प्रति उदार दृष्टि नहीं रखता। सभी की दृष्टि में स्त्री माया, कामिनी और जन्म को नष्ट कर देने वाली है। संत साहित्य में स्वतंत्र प्रेम का अंकुर तक नहीं फूटता। वहाँ प्रिय; पति का पर्याय बनकर आता है। यदि हम हिंदू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का भी मूल्यांकन करें तो यह भ्रम भी टूट जायेगा। संसार के सभी धर्मों में हम पाते हैं कि सभी के प्रतिनिधि देवता पुरूष हैं या पुरूष नामवाले हैं। हिंदू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इस्लाम में अल्लाह या पैगंबर साहब, सिक्खों में गुरूनानक देव, इसाईयत में ईसा मसीह, बौद्ध धर्म में भगवान बुद्ध, जैन धर्म में महावीर स्वामी इत्यादि। यदि उक्त धर्मों और उनके दर्शनों का स्त्री विषयक विश्लेषण किया

[82] सूरदास, भ्रमरगीत सार (संपा. आचार्य रामचंद्र शुक्ल), पृष्ठ संख्या, 19
[83] वही, पृष्ठ संख्या, 40

जाए तो बहुत अच्छे परिणामों की आशा नहीं की जा सकती। एक सामान्य धारणा है कि भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग है; लेकिन स्त्री समाज के दृष्टिकोण से देखा जाए तो इसे अंधकार युग कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मध्यकालीन स्त्री दृष्टि

विचारों की मृत्यु उस परंपरा की मृत्यु है जिसमें मनुष्य विचरण करता है। विचार जब वृत्ति हो जाते हैं तो वह हमारे जीवन का एक सांस्कृतिक हिस्सा हो जाते हैं। यदि हम किसी मानुषिक परंपरा को निर्बल बनाना चाहें तो बहुत आवश्यक है कि सर्वप्रथम उसके वैचारिक संस्कारों पर एकाधिकार किया जाए या उन्हें नष्ट कर दिया जाए अथवा उनका विचारांतरण कर दिया जाए। मध्यकालीन पितृसत्ता ने यह कार्य स्त्रियों के संबंध में बखूबी किया। घर, परिवार, समाज, व्यापार, शिक्षा इत्यादि संबंधों में उनकी राय को कोई स्थान नहीं दिया गया। इससे स्त्री समाज अपंग होता चला गया और धीरे–धीरे यह अपंगता उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बन गई। इस अपंगता का बहुत बड़ा प्रभाव हम भारतीय साहित्य के भक्तिकाल पर देखते हैं।

भारतीय साहित्य के लगभग सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि भक्तिकाल सोई हुई भारतीय चेतना की सजग अभिव्यक्ति है। दक्षिण में आलवार, नयनामार भक्त कवियों से लेकर उत्तर में रामानंद, रामानुजाचार्य, नामदेव, शंकराचार्य तक इसका सशक्त प्रभाव देखा जा सकता है; किंतु उक्त विचारकों में किसी ने भी नारी मन की पीड़ा को सुनने का प्रयास नहीं किया। नहीं जाना कि कश्मीर की लल्लेश्वरी, महाराष्ट्र की बहिंणाबाई, गोवा की सोंसुबाई, आंध्रा प्रदेश की मोल्लांबा, कर्नाटक की अक्कमहादेवी और तमिलनाडु की गोदादेवी व कारैक्काल अम्मेयार... तक भाव विभोर कर देने वाली नारी मन की सशक्त भक्ति धारा है। नहीं जाना कि एक वैश्यापुत्री या बाल–विधवा ने किन स्थितियों में भगवान की शरण ग्रहण की। नहीं जाना कि भक्ति की यह परिधि भक्त हसीना और हमीदा के द्वारा अरब देशों तक कैसे बढ़ गई! स्त्री भक्ति का यह गुण पुरूष भक्तों को भी प्राप्त नहीं हुआ है।

उल्लेख्य है कि स्त्री भक्ति की उक्त धारा की अपनी पीड़ा, अपना दर्द और अपना मर्म है। वह किसी से उधार लिया हुआ नहीं है। उसका अपना एक रंग है जो कश्मीर से लेकर अरब तक फैला हुआ है। मध्यकालीन स्त्री भक्तों की प्रतिनिधि के रूप में हम कश्मीर की लल्लेश्वरी का नाम बड़े गर्व से ले सकते हैं। ये कश्मीर की सिद्ध संत थीं। इनका समय ईसा की 14वीं. शती माना जाता है। डॉ. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने कुछ मित्रों की सहायता से **'लल्ला वाक्यानि'** नाम से इनका एक काव्य–संग्रह तैयार किया है, जो रॉयल एशियाटिक सोसायटी लंदन द्वारा 1920ई. में प्रकाशित हुआ था। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी इनके जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख अपने लेख 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' में किया है। उनके अनुसार 'इनकी विमाता सास इन्हें बहुत कष्ट देती थीं। वह इनके भोजन की थाली में

सिलबट्टा रखकर ऊपर भात बिखेर दिया करती थीं। इस कारण बाहर से यथेष्ट दीख पड़ने पर भी इन्हें भरपेट भोजन नहीं मिल पाता था।[84] इनके पति का व्यवहार भी इनके प्रति कभी अनुकूल नहीं रहा और यही कारण था कि इन्होंने अपने पारिवारिक जीवन का त्याग करके अवंतीपुर के निवासी शैव सिद्ध बाबा श्रीकण्ठ से दीक्षा ग्रहण की।

लल्लेश्वरी के काव्य में हमें यौगिक क्रियाओं एवं शून्य की साधना के तत्व दृश्यमान होते हैं। वे निर्विकार ईश्वर और मन की शुद्धता की बात करती हैं। वे मानती हैं कि किसी भी उत्तम साधक के द्वारा निरंतर अभ्यास से दृश्य जगत का लय हो जाता है तथा वह शून्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। ऐसी स्थिति में शांत स्वरूप शून्य में भी निर्विकार परमेंश्वर 'साक्षि' रूप में अवशिष्ट रहता है। यथा–

अव्यांसि सविकास लय वेथ्थू, गगनस्सगुण म्यूंलु समिच्रटा।
शून्य गंलू त अनामय म्वतु, इहुय् उपदेश दुय् भटा।।१।।[85]

भक्ति में मन की शुद्धता किस प्रकार शून्य प्राप्ति में सहायक होती है और कैसे जीव–निर्जीव तथा भिन्न रूपों में भेद मिटा देती है ? इसका चेतन उदाहरण हम इस कश्मीरी कन्या के काव्य में देखते हैं।

शिव गुरू तोय् केशव् पलनस्, ब्रह्मा पायहर्यम् व्यलस्यस्।
योगी योगकलि पर्जान्यस्, कुस् देव अश्ववार् प्यठ् चेडयस्।।[86]

अर्थात् वह प्रश्न करती हुई कहती है कि यदि शिव अश्वस्वरूप हैं, विष्णु उनका पृष्ठास्तरण हैं तथा स्वंभू ब्रह्मा उनका चरणपीठ हैं, तो उस घोड़े का योग्य अश्वारोही कौन है ? फिर लल्ला स्वयं ही इसका उत्तर देती हुई कहती हैं कि उस विलक्षण अश्व का आरोही अनाहत, आकाशस्वरूप, शून्य में स्थित निर्विकार है। वह नाम, रूप एवं वर्ण से रहित अजन्मा एवं नाद बिंदु स्वरूप है।

गौरतलब है कि ईश्वर की अश्व रूप में कल्पना वही साधक कर सकता है जिसने ईश्वर को अपना मित्र बना लिया हो या साधना को भी साध लिया हो। सगुण भक्त सूरदास ने कृष्ण को अपना सखा मानकर अपने मन के सारे विकार, बेहिचक उस निर्विकार के समक्ष प्रकट कर दिए थे; लेकिन लल्ला का ध्यान आत्मशुद्धि या आत्मावलोकन पर है न कि किसी सगुण साकार या दृश्य ब्रह्म पर। इस संदर्भ में वे हठयोगियों के बहुत करीब पहुँच गई हैं लेकिन शून्य प्राप्ति की अद्भुत कल्पना और उसकी प्रक्रिया लल्ला की अपनी है। वह काल को अपना मित्र बनाकर रखती हैं क्योंकि घोर आध्यात्म से वह जान गईं हैं कि वह जन्म से उनके साथ है। सभी भौतिक–अभौतिक साधन लल्ला का साध छोड़ सकते हैं किंतु, वह कालमित्र उसका साथ कभी नहीं छोड़ेगा; क्योंकि वह अजन्मा है, भीतर वास करने वाला है, उसे केवल अनुभूत किया जा सकता है।

---

[84] परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 14
[85] जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, लल्लेश्वरी वाक्यानि, पृष्ठ संख्या, 01
[86] वही, पृष्ठ संख्या, 01

लल्लेश्वरी के अतिरिक्त निर्गुण–निर्विकार ईश्वर का जप करने वाली कवयित्रियों में कश्मीरी कवयित्री निर्मलाबाई, महाराष्ट्र की बहिणाबाई, बयाबाई, मुक्ताबाई, जनाबाई, महदम्बा, बावरी साहिबा, गोवा की सोंसुबाई का नाम विशिष्ट है। संत महदम्बा को मराठी साहित्य की प्रथम कवयित्री माना जाता है। ये कुशाग्र बुद्धि और धार्मिक ग्रंथों के प्रणयन में दक्ष थीं। इन्होंने 'धावले', 'मातृकी', 'रूक्मिणी स्वयंवर' और 'गर्भकाण्ड ओब्या' नामक ग्रंथों की रचना की है। ये एक बाल–विधवा थीं। कालांतर में इन्होंने संत चक्रधर से दीक्षा ग्रहण की। बाल–विधवा होने के कारण इन्हें अपने जीवन में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा था। इनके गुरू के अतिरिक्त कोई इनकी चिंता नहीं करता था। इन्हें अपने जीवन निर्वाह के लिए भिक्षा तक माँगने के लिए विवश होना पड़ा। इनका करूण कथ्य दृष्टव्य है–

नगर द्वार ही भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।
जिहाँ जाबो तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिन्ता लो।
हार चौहाटां पड़ रहूँ हो माँग पंच घर भिच्छा
बापुड लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिन्ता लो।[87]

बहबलबाई एक अन्य संत कवयित्री है जिसने कबीरदास की भांति निर्गुण ब्रह्म में राम का आरोपण किया है। आलोच्य संत का नित्य कर्म था कि वह प्रतिदिन किसी एक साधु को भोजन कराने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करती थीं। तभी सूचना हुई कि एक साधु राजा के पुत्र की हत्या कर उसके आभूषण लेकर नौ दो ग्यारह हो गया है। इसलिए कोई किसी साधु को भिक्षा न दे, भोजन न कराये। घोषणा के तुरंत बाद नित्य धर्म का पालन करते हुए बहबलबाई ने एक साधु महात्मा को भोजन कराया। परिणामस्वरूप बहबल के दोनों हाथों को कटवा दिया गया और उसे उसके बच्चे सहित राज्य से बहिष्कृत कर दिया गया। नदी किनारे पहुँचकर जब वह अपने बच्चे को पानी पिलाने के लिए झुकी तो उसका बच्चा पानी में गिर गया। उसने बहुत यत्न किए लेकिन बहबल की सहायता करने वाला कोई न था। तब अकस्मात् उसे उस अलख्य परमसत्ता का ध्यान हो आया और ये शब्द स्वतः ही उसके मुँह से निकल पड़े–

कर कटया घर लुटया, छुटया नगर वास।
बहबल बाई यूँ कहे, राम तुम्हारी आस।।[88]

कहते हैं कि परमसत्ता के स्मरण से बहबल का बच्चा बच गया और वह फिर से सामान्य जीवन व्यतीत करने लगी। सभी संत कवयित्रियाँ परम ईश्वर भक्त होने के साथ–साथ परम गुरू भक्त भी थीं। इन्हें उस निर्विकार ब्रह्म के दर्शन गुरू कृपा से ही हुए हैं; इसलिए ये सभी संत उच्च कोटि की गुरू भक्त हुई हैं। वह गुरू ही है जो इन्हें इस निस्सार संसार से पार उतार कर मूल तत्व का ज्ञान कराता है। जन्म–मृत्यु के इस बंधन से मुक्ति दिलाता है। जो आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार कराता है। उक्त कवयित्रियों में जनाबाई

[87] विनय मोहन शर्मा, हिंदी को मराठी संतो की देन, पृष्ठ संख्या, 85
[88] बलदेव वंशी, भारतीय नारीं संत परंपरा, पृष्ठ संख्या,109

ने अपने गुरू ज्ञानदेव की वंदना सख्यभाव से की है। वे कहती हैं कि मेरे सखा ज्ञानेश्वर सचमुच ज्ञान के सागर हैं। में चाहती हूँ कि मर जाऊँ और उनके घर फिर से जन्म लूँ। हे ज्ञानेश्वर! मुझ पर इतनी कृपा कीजियेगा कि में आपके चरणों पर जन्म जन्मांतर न्योंछावर होती रहूँ। यथा–

ज्ञानाचा सागर।
सखा माझा ज्ञानेश्वर।
मरोनिया जावे।
वा तुझयाचि पोटी पावे।
ऐसे करीगा माझ्या देवा।
संख्या माझ्या ज्ञानदेवा।।
जाईन ओवालनी।
जन्मों जन्मी म्हेण जनी।[89]

एक अन्य कवयित्री बयाबाई की अपने गुरू रामदास पर अपार श्रद्धा थी। जैसे गुरू–शिष्या दोनों एकमेक हो गए हों। संभवतः इसी कारण लोगों को फब्तियाँ कसने का मौका मिला हो। वे अपने गुरू के प्रति इतनी समर्पित दिख पड़ती हैं कि वे अपने गुरू को 'भाई' तक कह जाती हैं। इसके उलट संत मुक्ताबाई अपने 'भाई' ज्ञानेश्वर महाराज को अपना 'गुरू' मान लेती हैं। वे कहती हैं कि ज्ञानेश्वर जी ने मुझे अद्वैत ब्रह्म के दर्शन करा दिए हैं। अब में जान गई हूँ कि इस चराचर विश्व में ईश्वर का एक ही रूप अनुस्यूत है। स्थूल, सूक्ष्म सभी वस्तुएँ स्वाभाविक रूप में ईश्वर की सत्ता से सत्तावन हैं। वही परब्रह्म है जिसे मैंने ज्ञानेश्वर जी से दीक्षा ग्रहण कर पाया है। मुक्ता के निम्नांकित अभंग में ज्ञान प्राप्त होने पर जीव की क्या स्थिति होती है इसका उपदेश चॉगदेव के प्रति है–

सान्डी ते मान्डी, मान्डी ते सान्डी। सान्डने मान्डने दोन्ही ही सान्डी।
सोऽहं शून्य बूझा रेभाई। सांगते एकते दोन्ही हीनाही।
नी ते कांई मांझे ते कांई। परीयेसी चांगया बोले मुक्ताबाई।[90]

अर्थात् जिसने शरीर धारण किया है उसका विनाश अवश्यंभावी है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म भी होता है, लेकिन सृष्टि का यह नियम सिद्ध पुरूषों पर लागू नहीं होता। जिसने ईश्वर के प्रकृत रूप को जान लिया है, जिसने सोऽहं तत्व की उपलब्धि की है वह जन्म–मृत्यु के ऊपर उठ गया है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक जो ज्ञान की बात कह रहा है; जो सुन रहा है एवं ज्ञान; इन तीनों की पृथक सत्ता रहती है, किंतु आत्मज्ञान होने पर सभी एक तत्व में लय हो जाते हैं। इस अवस्था में अपने क्षुद्र अस्तित्व तक को बोध नहीं रहता है। हे चॉगदेव! मुक्ता के इस अमूल्य उपदेश को ध्यान से सुनो।

[89] कृष्णा गोस्वामी, संत काव्य में नारी, पृष्ठ संख्या, 194
[90] निवोधत, बालयोगिनी मुक्ताबाई, पृष्ठ संख्या, 171

मध्यकालीन भारत में कुछ नारी संत ऐसी भी हुई हैं जिन्होंने अध्यात्म के माध्यम से अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया है। इनमें संत बहिणाबाई का नाम सर्वोपरि है। वे बड़ी कुशलता से संसार की निस्सारता, क्षणभंगुरता का वर्णन करती हुई कहती हैं कि यह दुनिया दो दिन की है, इसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। ईश्वर का नाम लेकर ध्यान धारण करना चाहिए, क्योंकि एक बार शरीर छूट जाने पर यहाँ फिर नहीं आना। निम्नलिखित पद में बहिणाबाई अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए परमतत्व के लिए अल्लाह एवं कृष्ण दोनो शब्दों का प्रयोग करती हैं। इसमें सगुण एवं निर्गुण की ही एकता नहीं बल्कि हिंदू व इस्लाम धर्म साधनाओं का भी समन्वय है। उदाहरणार्थ –

दो दिन की दुनीया ऐ बाबा, दो दिन की दुनीया।
ले अल्लाह का नाम कूल धरो ध्यान
बंदे न होना तुम
गाव रतन से ही सार
नई आवेगा दूज बार
वेगी करो हे फिकीर
करो अल्लाह की जिकीर
करो अल्लाह की जिकीर
तब मिलेगा गामील पीर
बहिणी कहे तूजे पुकार
कृष्ण नाम तमे हुसियार।[91]

गोवा की एकमात्र कवयित्री सोंसुबाई या रूक्मिणीबाई ने अपने अभंगों में संतो की प्रकृति और निर्गुण निराकार भक्ति की खूब प्रशंसा की है। वे कहती हैं कि संतों ने मुझे अपनी पुत्री समझा और मेरा लालन–पालन किया। मुझे वैचारिक रूप से पोषित किया। इन संतों ने ही मुझे सांसारिक प्रपंचों से सदा बचाए रखा। मेरे मन को विरक्ति की राह पर डाला। मेरा उपकार किया। उदाहरण देखिए–

मी संताचे, संताचे। होवा माझे बोल साचे।।
सन्त दर्शनासी गेर्ल। तेथें मन हे निवाले।।
धन्यपण सोंसु झाले। पाय सन्ताचे देखिले।।[92]

मध्यकालीन अहिंदी कवयित्रियों ने अलख–निरंजन ब्रह्म में ध्यान लगाने के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति में भी अपना मन रमाया है। मराठी भाषा की कान्होपात्रा, बहिणाबाई, जनाबाई नामक कवयित्रियाँ उच्चकोटि की विट्ठलभक्त (विष्णु के अवतार) अर्थात् कृष्णभक्त हो गई हैं। इनमें से कान्होपात्रा ने तो कृष्ण भक्ति को ही

[91] विनय मोहन शर्मा, हिंदी को मुसलमान संतों की देन, पृष्ठ संख्या, 356–57
[92] बलदेव वंशी, भारतीय नारीं संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 133

अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। ये एक वैश्या की बेटी थीं। इनकी माँ की प्रबल इच्छा थी कि मेरे वृद्ध होने के पश्चात् मेरी बेटी वैश्या बने ताकि जीवन निर्वाह में कोई बाधा उत्पन्न न हो। लेकिन बेटी कान्होपात्रा इस कार्य के लिए तैयार न थी। एक दिन अपनी परिस्थितियों से क्षुब्ध होकर कान्होपात्रा ने मंदिर में प्रवेश करने जा रहे किसी वारकरी के चरण पकड़ लिए। उसने हतप्रभ होकर देखा तो एक छोटी सी बच्ची बिलख रही थी। कारण पूछने पर कान्होपात्रा ने बताया कि मैं एक वैश्या की पुत्री हूँ। मुझे भगवान कृष्ण से प्रेम हो गया है। हमारी जाति बहुत तुच्छ है। हमसे कोई विवाह भी नहीं करता। क्या भगवान कृष्ण मेरी भक्ति स्वीकार करेंगे! संत ने जवाब देते हुए कहा कि भगवान तो भाव के भूखे हैं, बेटी। उनकी दृष्टि में सभी समान हैं। यदि तुम्हारी भक्ति अपार होगी तो वे तुम्हारा भी उद्धार करेंगे। बस इतना सुनना था कि मानों कान्होपात्रा को उसका सर्वस्व प्राप्त हो गया। तदनंतर उसका पोर–पोर कृष्णभक्ति में लीन हो गया।

कान्होपात्रा जैसे–जैसे युवा होती जा रही थी वैसे–वैसे उसके सौंदर्य की ख्याति अपनी सीमाएँ लांघकर मुगल दरबार तक पहुँच गई। नतीजतन सैनिक कान्होपात्रा को लेने के लिए उसकी माँ श्यामा वैश्या के घर पहुँचे। बादशाह का पैगाम सुनकर कान्हा का हृदय छलनी हो गया। वह तुरंत पांडुरंग से प्रार्थना करने लगी कि किसी प्रकार इस विपदा को टालो। राजा के सैनिक बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। देर होती देख उन्होंने थोड़ी हेठी दिखाई। तब कान्हा ने सैनिकों से कहा कि मैं राजमहल चलने से पूर्व पंढरपुर के पांडुरंग के दर्शन करना चाहती हूँ। उसकी यह बात मान ली गई। कान्हा वीणा वादन करते हुए पंढरपुर के पांडुरंग के समक्ष पहुँची और शिकायत की कि 'मुझ पर जो संकट आया है मैं उसके लिए तुम्हें दोष नहीं देती लेकिन इस संकट से मुक्ति दिलाना तुम्हारे जिम्में है। इसलिए में दौड़कर तुम्हारे पास आयी हूँ। मुझे अपने चरणों में जगह दे दो। नही ंतो तुम्हारा भक्तवत्सल यह नाम सार्थक सिद्ध नहीं होगा।[93] यह कहकर प्यारी भक्त कान्हां पांडुरंग में तब तक ध्यान मग्न रही जब तक उसने अपना आत्मविसर्जन नहीं कर दिया।

उल्लेखनीय है कि हिंदू धर्म में तैंत्तीस करोड़ देवी देवता हैं। इनमें से जितनी ख्याति भगवान कृष्ण को प्राप्त हुई ऐसी किसी और देवता को नहीं। फिर जहाँ तक स्त्री–लेखन का प्रश्न है वहाँ भी उनका मन रामभक्ति से अधिक पांडुरंग में ही रमा है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण गोपाल कृष्ण का व्यक्तित्व है जो भक्तों को सहज प्राप्त है। कृष्ण यथार्थ समाज के जितने समीप हैं राम उतने ही दूर हैं। कृष्ण में एक नर के सभी स्वाभाविक गुण विद्यमान हैं जबकि राम मर्यादापुरूषोत्तम हैं, धर्म और विधि–विधानों से अधिक बंधे हुए हैं। भारत में अहिंदी प्रदेशों के अलावा हिंदी प्रदेशों में भी बहुत सी कवयित्रियों ने गोपाल कृष्ण की वंदना की है।

[93] बलदेव वंशी, भारतीय नारीं संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 68

कृष्णभक्ति से अलग अहिंदी लेखिकाओं ने अपने काव्य में विरह के गीत भी गाए हैं। सोलहवीं शताब्दी की कश्मीरी कवयित्री हब्बा खातून ने विरह व्यथा का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसकी प्रतिध्वनि केवल खुदा ही सुन सकता है। सामान्य मानुष उसके मर्म को अनुभूत नहीं कर सकता। वह पुकारती है–

गुनाह मेरे माफ़ करना, या खुदाया,
क्या मिलेगा तुझे भला मेरी मौत से ?
जा रही हूँ पीड़ा में, गुजरेंगे कैसे ये दिन ?[94]

हब्बा ख़ातून अपने गीतों में एक ऐसी प्रेमिका के रूप में उभरकर आती हैं जो अपने लौकिक प्रेमी को अपनी ओर फेरने तथा उसमें प्रेम की ज्योति जगाने के लिए याचना, अनुनय, विनय का सहारा लेती हैं। उनका एक काव्यांश देखिए–

काश एक बार तुम आ जाते
उसके रूप से अँधेरा मिट जाय,
काश एक बार तुम आ जाते।[95]

यहाँ हब्बा खातून का सारा मर्म 'काश!' शब्द में है। कवयित्री की तीव्राशा है कि यदि उनका प्रिय आ जाए तो वे अपने मन की सभी गाँठों को खोल दें। सभी द्वेष व कलुष त्यागकर अपने प्रिय को समर्पित हो जाएँ। उनकी उत्कंठा देखते ही बनती है।

मध्यकालीन अहिंदी कवयित्रियों के उपरोक्त जीवन और काव्य विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक स्त्री की एक बड़ी व्यथा है। सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा बाल विधवाओं, विधवाओं और वैश्याओं को समाज की फब्तियों का सामना अधिक करना पड़ता होगा। फिर इनके पास भगवान की शरण में जाने के अतिरिक्त उपाय भी क्या रहा होगा! संभवतः वही उनका उद्धार गृह रहा हो। जहाँ तक निर्गुण उपासकों का प्रश्न है तो सभी गुरू कृपा को अपना ध्येय मानते हैं। उनकी गुरू में परम आस्था है। लेकिन उनका निर्गुण ब्रह्म कबीर, दादू या पीपा सा कठोर नहीं है। वह स्त्री को सती होने के लिए बाध्य नहीं करता और उसमें पतिव्रता होने की भी कोई बाध्यता परिलक्षित नहीं होती। इसके उलट वह बेसहारा स्त्रियों का सहारा बनता है। उनकी वेदना में शरीक़ होता है तथा उन्हें अपनत्व प्रदान करता है।

उक्त कवयित्रियों में हर्ष का मुख्य विषय मुस्लिम स्त्रियों के द्वारा कृष्णभक्ति को अपनाया जाना है। इससे मधुसूदन की लोकप्रियता और उनके प्रति की भक्ति की पराकाष्ठा प्रकट होती है। संभवतः राम की अपेक्षा कृष्णभक्ति में स्त्रियों का मन अधिक रमता हो। उपरोक्त विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन भारतीय साहित्य में पितृसत्तात्मक वर्चस्व के कारण कोई 'स्त्री' काव्य में अबतक समृद्ध नहीं हो

[94] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 77
[95] वही, पृष्ठ संख्या, 78

सकी है। जबकि हम देखते हैं कि निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्त कवयित्रियाँ पर्याप्त मात्रा में भारत भूमि पर हो गई हैं, जिन्हें खोजकर सामने लाने की आवश्यकता है।

'परिदृश्य' अर्थात् दसों दिशाओं का दृश्य। ईस्वी सन् 1200 से 1857 का यह दृश्य वर्चस्ववादी समाज ने अपने हिसाब से देखा; किंतु वे भूल गए कि वे दसों दिशाएँ भी उन्हें देख रही हैं। उनका अस्तित्व विकल्पनीय नहीं, अपरिहार्य है। आदिकाल से लेकर मध्यकाल के सभी धर्मों, संस्कारों, राज–नीतियों एवं अर्थव्यवस्थाओं में उनका विचरण है। फिर कोई भी सभ्यता अपने इतिहास से न उलट सकती है और न भाग सकती है, हाँ! वह इतिहास को अपना साथी अवश्य बना सकती है। आवश्यकता इसी सत्य को स्वीकार करने की है। उपरोक्त मूल्यांकन एव दृश्यावलोकन के परिणास्वरूप स्त्री लेखन का जो सशक्त परिदृश्य हमें प्राप्त होता है, जरूरत उसे उसके सही रूप में बाहर लाने की है। तभी हम न केवल आधुनिक काल की उचित व्याख्या कर सकेंगे; प्रत्युत् अपने वर्तमान का जो नैतिक और सांस्कृतिक उधार है, उसे भी चुकता कर सकेंगे।

अध्याय # 2

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन

जाँच–पड़ताल

(क) पांडुलिपियों की पड़ताल

(क) विषय का महत्त्व

(ख) पाडुलिपियों की खोज

(ग) ग्रंथ परिचय एवं महत्त्व

(ख) पाठ निर्धारण

(क) पाठालोचन की प्रक्रिया का परिचय

(ख) मूल पाठ एवं पाठांतर

पांडुलिपियों की पड़ताल

(क) विषय का महत्त्व

'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन (ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)' एक व्यापक विषय है जिसके अंतर्गत मीराँबाई के अतिरिक्त 'गंगाबाई', 'प्रवीणराय पातुरि', 'साँई', 'शेख रंगरेजिन', 'ताज बीबी', 'ब्रजदासी रानी बाँकावती', 'दयाबाई', 'सहजोबाई', 'सुंदरिकुँवरिबाई', 'छत्रकुँवरिबाई', 'रसिकबिहारी बनीठनी जी', 'प्रतापकुँवरिबाई', 'चंद्रसखी' और 'रतनियाँ' जैसी प्रतिभा सपन्न कवयित्रियाँ हुई हैं। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है जिनमें इनके अनेक पद संकलित हैं। इनमें अधिकांश रचनाएँ ऐसी हैं जो हस्तलिखित हैं और आज भी देश के विभिन्न राज्यों के भिन्न–भिन्न पुस्तकालयों में रखी हुईं धूल धूसरित हो चुकी हैं तथा अपने प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रही हैं। व्याख्येय कालखंड में ग्रंथ रचनाकारों की संख्या से अधिक संख्या ऐसी लेखिकाओं की है, जिन्होंने फुटकल छंदों की अधिक रचना की है; इनमें 'उमांबाई', 'मुक्ताबाई', 'पार्वतीबाई', 'केशव पुत्रवधु' 'चंपादे रानी', 'रानी राड़धड़ी जी', 'प्रवीणराय पातुरि', 'पद्माचारिणी', 'खगनियाँ', 'ठकुरानी काकरेची जी', 'स्वरूपाबाई', 'आंभाबाई', 'हरकूबाई', 'रानाबाई', 'कविरानी चौबे', 'भागबाई', 'हरिजी रानी चावड़ा', 'राड़जी रानी', 'सुन्दरकली' का नाम उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकारों तथा प्रतिभाशाली शोधार्थियों में से एक–आधा को छोड़कर किसी ने भी इन लेखिकाओं को इतिहास की काल कोठरी से बाहर निकालने का प्रयास नहीं किया। इसका एक कुत्सित कारण तत्कालीन समाज की पुरूष वर्चस्ववादी सोच है, जिसके अंतर्गत स्त्रियों को सदा ही पुरूष के आवरण में देखा गया है; अर्थात् पितृसत्तात्मक समाज में जब तक पति, राजा, महाराजा, ठाकुर का महत्त्व है तब तक ही क्रमशः पत्नी, रानी, महारानी और ठकुराईन का महत्त्व है; फलस्वरूप तद्युगीन समाज ने स्त्री समाज और स्त्री रचनाकारों को कभी साहित्यिक पटल पर प्रकाशित ही नहीं होने दिया। स्त्री रचनाकारों की इस नगण्यता की कहानी हम साहित्येतिहासकार गार्सां–द–तासी से लेकर बच्चन सिंह तक देख सकते हैं।

हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहासकार गार्सां–द–तासी कृत 'इस्तवार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' में हमें कुल सात (कर्मा बाई[1], जाना बेगम[2], प्रेमा बाई[3], मीराँबाई[4], मुक्ताबाई[5], रत्नावती[6], रूपमती[7]) लेखिकाओं का छुटपुट वर्णन प्राप्त होता है। इसमें मीराँबाई के विषय में ही कुछ विस्तृत जानकारी प्राप्त

[1] गार्सां–द–तासी (अनु. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय), हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या, 32
[2] वही, पृष्ठ संख्या, 83
[3] वही, पृष्ठ संख्या, 158
[4] वही, पृष्ठ संख्या, 212
[5] वही, पृष्ठ संख्या, 220
[6] वही, पृष्ठ संख्या, 229
[7] वही, पृष्ठ संख्या, 249

होती है, जबकि शेष कवयित्रियों के संदर्भ में केवल नाम निर्वाह का पालन किया गया है; फिर भी इस संदर्भ में तासी की प्रशंसा होनी चाहिए कि उन्होंने फ्रेंच भाषा में लिखने के बावजूद एक समभाव दृष्टि रखकर स्त्री रचनाकारों को अपने इतिहास में स्थान दिया। यह प्रशंसा इसलिए भी होनी चाहिए क्योंकि भावी समय में मिश्रबंधुओं को छोड़कर किसी भी इतिहासकार ने उतनी जहमत नहीं उठाई जितनी कि तासी ने उठाई थी। तासी के तथाकथित इतिहास के बाद लिखित 'शिवसिंह सरोज' में हम उक्त लेखिकाओं के अतिरिक्त चार नई लेखिकाओं का नामोल्लेख पाते हैं जो 'प्रवीणराय पातुरि', 'प्रेम सखी'[8], 'रत्नकुँवरि'[9] और 'सुजान' नाम से जानी जाती हैं। कई इतिहासकारों ने भाषा और लेखक के आधार पर 'शिवसिंह सरोज' को हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास बतलाने का प्रयास किया है। यदि उनका तर्क मान लिया जाए तो स्त्री साहित्य की और उपेक्षा हो जायेगी; साथ ही यह प्रश्न प्रस्फुटित होगा कि क्या तत्कालीन समाज की स्त्रियाँ हिंदी भाषा नहीं जानती थीं ? निम्न और निम्नमध्यमवर्गीय परिवार की स्त्रियों से शिक्षा प्राप्ति की बहुत आशा नहीं की जा सकती थी; लेकिन क्या राजघरानों की स्त्रियाँ भी शिक्षा से वंचित थीं ? राजवंशी स्त्रियों में शिक्षा के अभाव के प्रश्न को स्वयं मेड़ता की मीराँ निर्गुण–सगुण भक्ति के अनेक पद लिखकर ख़ारिज कर देती है। अतः स्त्री रचनाकारों के एक बड़े समूह के अभाव में 'शिवसिंह सरोज' को हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास कैसे माना जा सकता है ?

हिंदी साहित्य के प्रथम पूर्ण इतिहास के बतौर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान' को देखा जाता है। यह सही है कि तकनीकी रूप से यह इतिहास की अधिकांश शर्तों को पूरा करता है, परंतु रचनाकारों के नामोल्लेख एवं विवरण प्रदान करने के मामले में यह 'शिवसिंह सरोज' की हू–ब–हू नक़ल है; इसलिए हम इसमें किसी भी नई लेखिका का नामोल्लेख नहीं पाते; बल्कि इसके विपरीत इसमें सुजान का नाम अदृश्य है। इतिहास लेखन की इस परंपरा और लेखिकाओं के नामोल्लेख के संदर्भ में हम 'मिश्रबंधु विनोद' को एक आदर्श साहित्येतिहास अवश्य कह सकते हैं। मिश्रबंधुओं ने इसमें महाराष्ट्र की मुक्ताबाई[10], पार्वतीबाई[11] उमांबा[12], मिनाबाई[13] चंपादे रानी[14], सोनकुँवरि[15], सुन्दरकुँवरिबाई[16], रारधरीजी राठुरिन[17], दयाबाई[18], बयाबाई[19], सहजोबाई[20], ठंढ़ी सखी[21], ताज[22], इंद्रामती

[8] शिवसिंह सेंगर, शिवसिंह सरोज, पृष्ठ संख्या, 735
[9] वही, पृष्ठ संख्या, 787
[10] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 81
[11] वही, पृष्ठ संख्या, 548
[12] वही, पृष्ठ संख्या, 81
[13] वही, पृष्ठ संख्या, 106
[14] वही, पृष्ठ संख्या, 164
[15] वही, पृष्ठ संख्या, 173
[16] वही, पृष्ठ संख्या, 434
[17] वही, पृष्ठ संख्या, 211
[18] वही, पृष्ठ संख्या, 461

बाई[23], कविरानी चौबे[24], शेख रंगरेजिन[25], रसिकबिहारी बनीठनी[26], व्रजदासी बाँकावती[27], सुजान[28] जैसी कई कवयित्रियों को अपने इतिहास में स्थान दिया है। इससे सिद्ध होता है कि मिश्रबंधु इतिहास की धारा के साथ स्त्रीरहित होकर नहीं चलना चाहते थे। उमाबाई और मुक्ताबाई के संबंध में स्वयं उनकी घोषणा है कि इनका महत्त्व इनके 'स्त्री होने के कारण है।[29]

'विनोद' के पश्चात् फिर से स्त्री रचनाकारों का एक संभाव्य दखल हिंदी साहित्येतिहास से समाप्त हो गया। लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित और 1929 में लिखित आचार्च रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' स्त्री मंगल की भावना से रहित दिख पड़ता है क्योंकि मध्यकालीन लेखिकाओं में यह केवल मीराँबाई को लेकर चला है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इससे आगे बढ़कर अपने 'उद्भव और विकास' में एक नई कवयित्री बावरी साहिबा[30] का नाम उद्धृत किया है; लेकिन वहाँ भी इनका कोई पद दृष्टिगत नहीं देता। उनके परिचय में केवल यही लिखा है कि इन्होंने 'बावरी संप्रदाय' की स्थापना की थी। रामकुमार वर्मा ने अपने आलोचनात्मक इतिहास में मध्यकालीन लेखिकाओं के संबंध में अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों से आगे चलकर 'सोढ़ी नाथी'[31] को साहित्य पटल पर अंकित किया। उनके अनुसार इन्होंने भगवद् भक्ति के सात ग्रंथ लिखे हैं जिनमें, 'भगत भाव रा', 'चन्द्रायन', 'हरि लीला', 'नाम लीला', 'बालचरित' मुख्य हैं। अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों की भांति रामकुमार वर्मा ने भी 'नाथी जी' का कोई पद उद्धृत नहीं किया है और न ही कहीं प्राप्त होने का संकेत दिया है; इस तरह नाथी जी की प्रमाणिकता भी संशय के घेरे में आ जाती है। आश्चर्य की बात यह है कि रामकुमार वर्मा के बाद किसी भी इतिहासकार ने मध्यकालीन लेखिकाओं को खोजने का प्रयास नहीं किया; नतीजतन मद्धम–मद्धम स्पंदित होती ज्योति एक बार फिर काल कवलित हो गई। उल्लेखनीय है कि इस काल कवलित ज्योति को डॉ. सुमन राजे ने अपने 'आधा इतिहास' द्वारा पुनर्प्रकाशित करने का प्रयास किया है; लेकिन उनका 'आधा इतिहास' आधा संस्कृत भाषी लेखिकाओं का है और आधा हिंदी भाषी। हिंदी भाषी लेखिकाओं में उन्होंने अधिकांशतः उच्चकोटि की शोधार्थी सावित्री सिन्हा का ही अनुसरण किया है। उनके द्वारा आधुनिककालीन लेखिकाओं के विषय में ऐसी

---

[19] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 236
[20] वही, पृष्ठ संख्या, 433
[21] वही, पृष्ठ संख्या, 77
[22] वही, पृष्ठ संख्या, 250
[23] वही, पृष्ठ संख्या, 265
[24] वही, पृष्ठ संख्या, 317
[25] वही, पृष्ठ संख्या, 322
[26] वही, पृष्ठ संख्या, 367
[27] वही, पृष्ठ संख्या, 395
[28] वही, पृष्ठ संख्या, 38
[29] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 81
[30] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृष्ठ संख्या, 85
[31] रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या, 175

कोई चमत्कृत कर देने वाली सामग्री का हवाला नहीं दिया गया है जिससे साहित्यिक समुदाय अनभिज्ञ हो। बहरहाल इतिहासकारों के इस पुरूषवादी दृष्टिकोण को निम्नलिखित तालिका के द्वारा भली भांति समझा जा सकता है और स्त्री रचनाकारों के प्रति हुई साहित्यिक बेरूखी का अनुमान लगाया जा सकता है। तालिका दृष्टव्य है –

(तालिका–1) साहित्येतिहास में लेखिकाएँ

क्र. सं.	गार्सां–द–तासी : हिंदुई साहित्य का इतिहास (ईस्वी सन् 1839 और 1847)	शिवसिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (ईस्वी सन् 1878)	जॉर्ज ग्रियर्सनः द मॉडर्न वर्नाक्यूलर (ईस्वी सन् 1888)	मिश्रबंधु : मिश्रबंधु विनोद (ईस्वी सन् 1913)	आचार्य रामचंद्र शुक्लः हिंदी साहित्य का इतिहास (ईस्वी सन् 1929)
001	कर्मा बाई	प्रवीन राइ पातुरी	मीराबाई	उमांबा	मीराबाई
002	जाना बेगम	प्रवीन कविराइ	चन्दसखी	मुक्ताबाई	–
003	मीरा/मीराँबाई	प्रेम सखी	परवीन राइ पातुरी	मिनाबाई	–
004	प्रेमा बाई/भाई	मीराबाई	रतन कुँअरि	मीराबाई	–
005	मुक्ता बाई	रत्नकुँवरि	रसिकबिहारी	चंपादे रानी	–
006	रत्नावती	सुजान	प्रेमसखी	गंगा स्त्री	–
007	रूपमती	ताज	सेख	जमुना स्त्री	–
008	–	चन्द्रसखी	–	सोनकुँवरि	–
009	–	रसिकबिहारी	–	प्रवीणराय वेश्या	–
010	–	सेख	–	रानी रारधरीजी राठूरिन	–
011	–	–	–	कल्यानी	–
012	–	–	–	नवल	–
013	–	–	–	ताज	–
014	–	–	–	इंद्रामती बाई	–
015	–	–	–	कविरानी चौबे	–
016	–	–	–	शेख़ रंगरेज़िन	–
017	–	–	–	प्रिया सखी	–
018	–	–	–	रसिकबिहारी बनीठनीजी	–
019	–	–	–	महारानी बाँकावतीजी	–
020	–	–	–	बिरजूबाई	–
021	–	–	–	सहजोबाई	–
022	–	–	–	सुंदरिकुँवरि बाई	–
023	–	–	–	दयाबाई	–
024	–	–	–	छत्रकुँवरिबाई	–

025	–	–	–	बख्तकुँवरि (प्रियासखी)	–
026	–	–	–	चावड़ीजी रानी	–
027	–	–	–	राड़जी (रानी)	–
028	–	–	–	गुप्तरानीबाई	–
029	–	–	–	गंगा स्त्री	–
030	–	–	–	श्रीप्रतापबाला	–
031	–	–	–	पजन कुँवरि	–
032	–	–	–	अलिकृष्णावति	–
033	–	–	–	हरिजी रानी चावड़ा	–
034	–	–	–	**अनूनैन (संश्यास्पद)**	–
035	–	–	–	अलीमन	–
036	–	–	–	कृपा सखी	–
037	–	–	–	कुंज गोपी	–
038	–	–	–	कृपा सहचरी	–
039	–	–	–	गीध	–
040	–	–	–	गौरी	–
041	–	–	–	चतुर सुजान	–
042	–	–	–	छत्रपति पद्मावती	–
043	–	–	–	नवलसखी	–
044	–	–	–	नीलसखी	–
045	–	–	–	नैनायोगिनी	–
046	–	–	–	फूली बाई	–
047	–	–	–	बावरी सखी	–
048	–	–	–	भौंरी सखी	–
049	–	–	–	रंगीली सखी	–
050	–	–	–	ललित सखी	–
	–	–	–		–

(तालिका–2) साहित्येतिहास में लेखिकाएँ

क्र. सं.	रामकुमार वर्माः हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (सन् 1938)	आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास (सन् 1952)	रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (सन् 1986)	बच्चन सिहः हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (सन् 1996)	सुमन राजे : हिंदी साहित्य का आधा इतिहास (सन् 2002)
001	सोढ़ी नाथी	बावरी साहिबा	मीराबाई	मीराबाई	मीराबाई
002	दयाबाई	मीराबाई	—	—	ताज़

003	सहजोबाई	—	—	—	चंद्रसखी
004	प्रेमसखी (पुरूष)	—	—	—	झीमा चारिणी
005	मीराबाई	—	—	—	पद्मा चारिणी
006	बावरी साहिबा	—	—	—	बिरजूबाई
007	मीराबाई	—	—	—	चंपादे रानी
008	—	—	—	—	रानी राड़धरी
009	—	—	—	—	शेख़ रंगरेजिन
010	—	—	—	—	रूपमती
011	—	—	—	—	साँईं
012	—	—	—	—	रत्नावली
013	—	—	—	—	सुजानराय
014	—	—	—	—	प्रवीणराय पातुर
015	—	—	—	—	ब्रजकुँवरि बाई
016	—	—	—	—	सुन्दरकुँवरिबाई
017	—	—	—	—	सोनकुँवरि (सुबरनबेलि)
018	—	—	—	—	छत्रकुँवरि बाई
019	—	—	—	—	कविरानी चौबे
020	—	—	—	—	कृष्णावति
021	—	—	—	—	बीराँ
022	—	—	—	—	गबरी बाई
023	—	—	—	—	आनंदी बाई
024	—	—	—	—	महारानी वृषभानु कुँवरि
025	—	—	—	—	बख़्तकुँवरि प्रियासखी
026	—	—	—	—	प्रताप कुँवरि बाई
027	—	—	—	—	रत्नकुँवरि
028	—	—	—	—	केशवपुत्रवधु
029	—	—	—	—	उमा
030	—	—	—	—	मुक्ताबाई
031	—	—	—	—	सहजोबाई
032	—	—	—	—	दयाबाई
033	—	—	—	—	इंद्रामती
—	—	—	—	—	—

उपरोक्त तालिकाएँ स्त्री रचनाकारों के प्रति हिंदी साहित्येतिहासकारों की उपेक्षित दृष्टि का सशक्त प्रमाण हैं; लेकिन ऐसा नहीं है कि समस्त हिंदी जगत में किसी ने भी 'महिला लेखन' का संज्ञान लेने का प्रयास न किया हो; जिस प्रकार हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने से पूर्व 'कृष्णदेव व्यासदेव', 'सरदार' और 'राजा शिवसिंह' जैसे लेखको ने कई कविवृत्त संग्रहों का निर्माण किया था; उसी प्रकार महिला लेखन को एक आकार देने के प्रयास में, 'मुंशी देवी प्रसाद', 'ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', 'गिरिजादत्त शुक्ल', 'व्यथित हृदय',

'सावित्री सिन्हा', 'उषा कंवर राठौर' और 'बलदेव वंशी' जैसे लेखकों ने स्त्री केन्द्रित कई कविवृत्त संग्रहों का निर्माण किया जिससे स्त्री–लेखन की एक विस्तृत परंपरा के प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं। यह एक अलग बात है कि महिला लेखन के संबंध में इतना गहन अध्ययन और एक प्रबल पृष्ठ तैयार होने के बावजूद किसी साहित्यकार ने 'हिंदी महिला लेखन का इतिहास' लिखने का प्रयास नहीं किया। यह सही है कि यह एक जटिल कार्य है और इसपर और शोध करने की आवश्यकता है; परंतु ये जटिलताएँ तो प्रत्येक नए कार्य के प्रारम्भ में आती हैं। संभवतः यहाँ भी पुरूष साहित्यकारों की स्त्री उपेक्षित दृष्टि ही आड़े आ गई होगी ? बहरहाल, इससे इतर महिला लेखन के जो छुट–पुट कार्य होते रहे हैं; उनकी एक तालिका निम्नांकित है –

(तालिका–3) कवयित्रीवृत्त संग्रह में लेखिकाएँ

क्र. सं.	**मुंशी देवी प्रसादः महिला मृदुबाणी (सन् 1905)**	**ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल': स्त्री कवि कौमुदी (सन् 1931)**	**गिरिजादत्त शुक्लः हिंदी काव्य की कोकिलाएँ (सन् 1933)**	**व्यथित हृदयः हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ (सन् 1941)**	**सावित्री सिन्हाः मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ(सन् 1953)**
001	कविरानी चौबे	मीराबाई	मीराँ	मीराबाई	झीमा चारणी
002	काकरेची जी	ताज	प्रवीणराय	प्रवीणराय	पद्मा चारणी
003	खगनियाँ	खगनिया	ताज	ताज	बिरजू बाई
004	साँईं	शेख	शेख	शेख	नाथी
005	छत्रकुँवरिबाई	छत्रकुँवरिबाई	रसिकबिहारी	रसिक विहारी	साखाली रानी
006	झीमाचारिणी	प्रवीणराय	सहजोबाई	सहजो बाई	ठकुरानी काकरेची
007	ताज	दयाबाई	दयाबाई	दया बाई	चंपा दे रानी
008	तुलछराय	कविरानी	सुन्दरकुँवरि बाई	सुन्दर कुंवरि बाई	रानी रारधरी जी
009	पद्माचारिणी	रसिकबिहारी	प्रतापकुँवरि बाई	प्रताप कुंवरि बाई	हरिजी रानी चावड़ा
010	प्रतापकुँवर (रानी)	ब्रजदासी	–	साँईं	मुक्ताबाई
011	मीराँ	साँई	–	–	पार्वती
012	रत्नकुँवरि बीबी	प्रतापकुँवरिबाई	–	–	सहजोबाई
013	रसिकबिहारी बनीठनी	सहजोबाई	–	–	दयाबाई
014	रानी राड़धड़ा जी	झीमा	–	–	इन्द्रामती
015	रायप्रबीन	सुन्दरकुँवरि बाई	–	–	मीराबाई
016	बिरजू बाई	चंपादे	–	–	गंगाबाई

017	ब्रजदासी बाँकावती	रत्नकुँवरिबीबी	–	–	रानी सोनकुँवरि
018	शेखरंगरेजिन	–	–	–	वृषभान कुँवरि
019	सहजोबाई	–	–	–	रसिकबिहारी
020	सुन्दर कुँवरि बाई	–	–	–	ब्रजदासी बाँकावती
021	हरीजी रानी	–	–	–	प्रियासखी
022	–	–	–	–	सुन्दर कुँवरि बाई
023	–	–	–	–	ताज
024	–	–	–	–	अलबेली अली
025	–	–	–	–	वीराँ
026	–	–	–	–	छत्र कुँवरि बाई
027	–	–	–	–	बीबी रत्न कुँवरि
028	–	–	–	–	पजन कुँवरि
029	–	–	–	–	स्वर्णलली
030	–	–	–	–	कृष्णावती
031	–	–	–	–	माधवी
032	–	–	–	–	मधुर अली
033	–	–	–	–	प्रेम सखी
034	–	–	–	–	प्रताप कुँवरि बाई
035	–	–	–	–	तुलछराय
036	–	–	–	–	प्रवीणराय पातुर
037	–	–	–	–	रूपमती बेगम
038	–	–	–	–	तीन तरंग
039	–	–	–	–	शेख रंगरेजिन
040	–	–	–	–	सुन्दर कली
041	–	–	–	–	रत्नावली
042	–	–	–	–	खगनिया
043	–	–	–	–	केशव पुत्रवधू
044	–	–	–	–	कविरानी चौबे

045	–	–	–	–	साईं
046	–	–	–	–	नैनायोगिनी

(तालिका–4) कवयित्रीवृत्त संग्रह में लेखिकाएँ

क्र. सं.	ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल': स्त्री–कवि–संग्रह (1987)	रामप्रसाद मिश्रः हिंदी की कवयित्रियाँ (1990)	उषा कंवर राठौरः मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (2002)	बलदेव वंशीः भारतीय नारी संत परंपरा (2011)
001	मीराबाई	मुक्ताबाई	मीरांबाई	बावरी साहिबा
002	सहजोबाई	मीराँ	अजबकुंवरीबाई	मुक्ताबाई
003	दयाबाई	ताज बेगम	सोढी नाथी	मीरांबाई
004	साईं	सहजोबाई	रसिक बिहारी बनीठनी	उमा
005	रसिक बिहारी	दयाबाई	बीरां	ताज बीबी
006	रत्नकुँवरि बीबी	सुंदरिकुँवरि बाई	ब्रजदासी	इन्द्रामती
007	सुन्दर कुँवरि बीबी	प्रतापकुँवरि बाई	रानी बांकावती	सहजोबाई
008	खगनियां	–	सूरजकंवर	दयाबाई
009	–	–	समानबाई	पार्वती
010	–	–	प्रतापकुंवरि	फूलीबाई
011	–	–	तुलछराय	करमाबाई
012	–	–	फूलीबाई	–
013	–	–	रानाबाई	–
014	–	–	दयाबाई	–
015	–	–	सहजोबाई	–
016	–	–	गवरीबाई	–
017	–	–	आंभाबाई	–
018	–	–	सुखीदेवी	–
019	–	–	स्वरूपाबाई	–
020	–	–	पद्माचारिणी	–

021	–	–	चंपादे	–
022	–	–	रानी राड़धरीजी	–
023	–	–	काकरेची जी	–
024	–	–	बिरजूबाई	–
025	–	–	महादानबाई	–
026	–	–	हेमसिद्धि	–
027	–	–	विद्यासिद्धि	–
028	–	–	विवेकसिद्धि	–
029	–	–	हरकूबाई	–
030	–	–	हुलासाजी	–
031	–	–	जड़ावजी	–
032	–	–	भूरसुन्दरी	–
033	–	–	स्वरूपाबाई	–
034	–	–	हरिजीरानी चावड़ी	–

इस तरह हम देखते हैं कि आलोच्य विषय 'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः एक अध्ययन (ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक) अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; विशेषतौर पर तब, जब मुक्ताबाई और उमाबाई जैसी कवयित्रियाँ तेरहवीं शती में ही साहित्यिक पटल पर दस्तक देने लगी हों। अब समय आ गया है कि आलोच्य लेखिकाओं को इतिहास की काल कोठरी से निकाल कर साहित्य जगत के सामने लाया जाए और लेखिकाओं की तत्कालीन मनोभावनाओं को समझने का प्रयास किया जाए।

(ख) पांडुलिपियों की खोज

पांडुलिपियों की खोज की प्रेरणा हमें सर्वप्रथम 'मिश्रबंधु विनोद' से प्राप्त हुई। उन्होंने जितनी मध्यकालीन लेखिकाओं का नामोल्लेख, ग्रंथ परिचय, कालखंड और पद परिचय दिया है वह बेहद चौंकाने वाला था। हमें इतनी सारी लेखिकाओं का परिचय पहली बार प्राप्त हुआ था। सावित्री सिन्हा के शोध प्रबंध 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' ने इस तथ्य को और पुष्ट किया कि हिंदी साहित्येतिहासकारों ने लेखिकाओं की बहुत उपेक्षा की है। व्याख्येय कालीन लेखिकाओं के प्रति इतिहासकारों के इस उपेक्षा भाव ने आलोच्य

विषय 'हिंदी साहित्य का स्त्री लेखनः एक अध्ययन (ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)' पर शोध करने के लिए और प्रेरित किया।

शोध के दौरान ज्ञात हुआ कि हिंदी साहित्य की आलोच्य लेखिकाओं और उनके साहित्य से संबंधित पांडुलिपियाँ देश के विभिन्न पुस्तकालयों में रखी हुई हैं। इनमें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; 'चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर; राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जयपुर; महाराजा पुस्तकालय, जयपुर; अलबर्ट हॉल, जयपुर; संजय शोध संस्थान, जयपुर; राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर; उदयपुर और बीकानेर के आर्काइव्स, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली, मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली; लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली मुख्य हैं।

शोध के दौरान ज्ञात हुआ कि राजस्थान (जयपुर, जोधपुर, बीकारेन, उदयपुर) के उक्त पुस्तकालयों में आदिकालीन और मध्यकालीन लेखिकाओं से संबंधित बहुत सी धूल धूसरित सामग्री रखी हुई है जिनपर गूढ़ और गंभीर शोध करने वालों की निगाह अभी तक गई नहीं है। राजस्थान के जयपुर में स्थित 'चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस' में हिंदी लेखिकाओं द्वारा लिखे गए ग्रंथों और पांडुलिपियों को बहुत सहेज के रखा गया है। सिटी पैलेस को लिट्रेरी हैरीटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आमेर एण्ड जयपुर के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ स्थित पुस्तकालय और पोथीख़ाना दोनो अलग–अलग स्थानों पर स्थित हैं। पुस्तकाल्याध्यक्ष की अनुमति से सूची पत्र मे स्थित पांडुलिपियों को शोधार्थी के पढ़ने हेतु मंगाया जाता है। हमें 'चंद्रमहल पोथीखाना' से बहुत सी पांडुलिपियों को देखने और कुछ का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिनका विवरण निम्नलिखित है –

1. सुंदरिकुँवरिबाई
(क) नेहनिधि
(ख) रंगझर,
(ग) भावविलास

2. शेख रंगरेजिन
(क) कवित्त संग्रह

3. प्रवीणराय और ताज
(क) कवित्त संग्रह

4. ब्रजदासी रानी बाँकावती
(क) ख्याल संग्रह
(ख) भागवत पुराण भाषा
(ग) विवाह विलास

5. सहजोबाई

(क) रासमंगल

6. श्रृंगार सखी

(क) विलास मंजरी

(ख) सूरज जी की कथा

(ग) कवित्त पदादि संग्रह

7. प्रेम कुँअरि

(क) करूणा बिवाई

8. कृष्णदासी

(क) विवाह विलास 1840 वि. सं.

9. किशोरी अली

(क) कर्म का कवित्त

(ख) नाम विरूदावली

(ग) भ्रमरगीत भाषा

(घ) राधिका नामावली भाषा

(ड़) रास पंचाध्यायी भाषा

10. हरिप्रिया

(क) दुख मोचन

11. संत सखी

(क) पद संग्रह

12. उमादे भटियाणी

(क) कवित्त संग्रह

13. चन्द्रसखी

(क) भजन संग्रह

14. पार्वती बाई

(क) पार्वतीबाई की शब्दी

विषय निर्वाह हेतु हम नीचे सुंदरकुँवरिबाई कृत 'रंगझर', 'नेहनिधि', और ब्रजदासी बाँकावती कृत 'भागवत पुराण भाषा' व 'ख्याल संग्रह' की पाँडुलिपियों की छाया प्रति दे रहे हैं ताकि, आलोच्यकालीन लेखिकाओं के लेखन की स्थिति ज्ञात हो सके। छाया प्रतियाँ निम्नांकित हैं –

(छायाप्रति –1) सुंदरिकुँवरि बाई कृत 'रंगझर' का प्रथम पृष्ठ

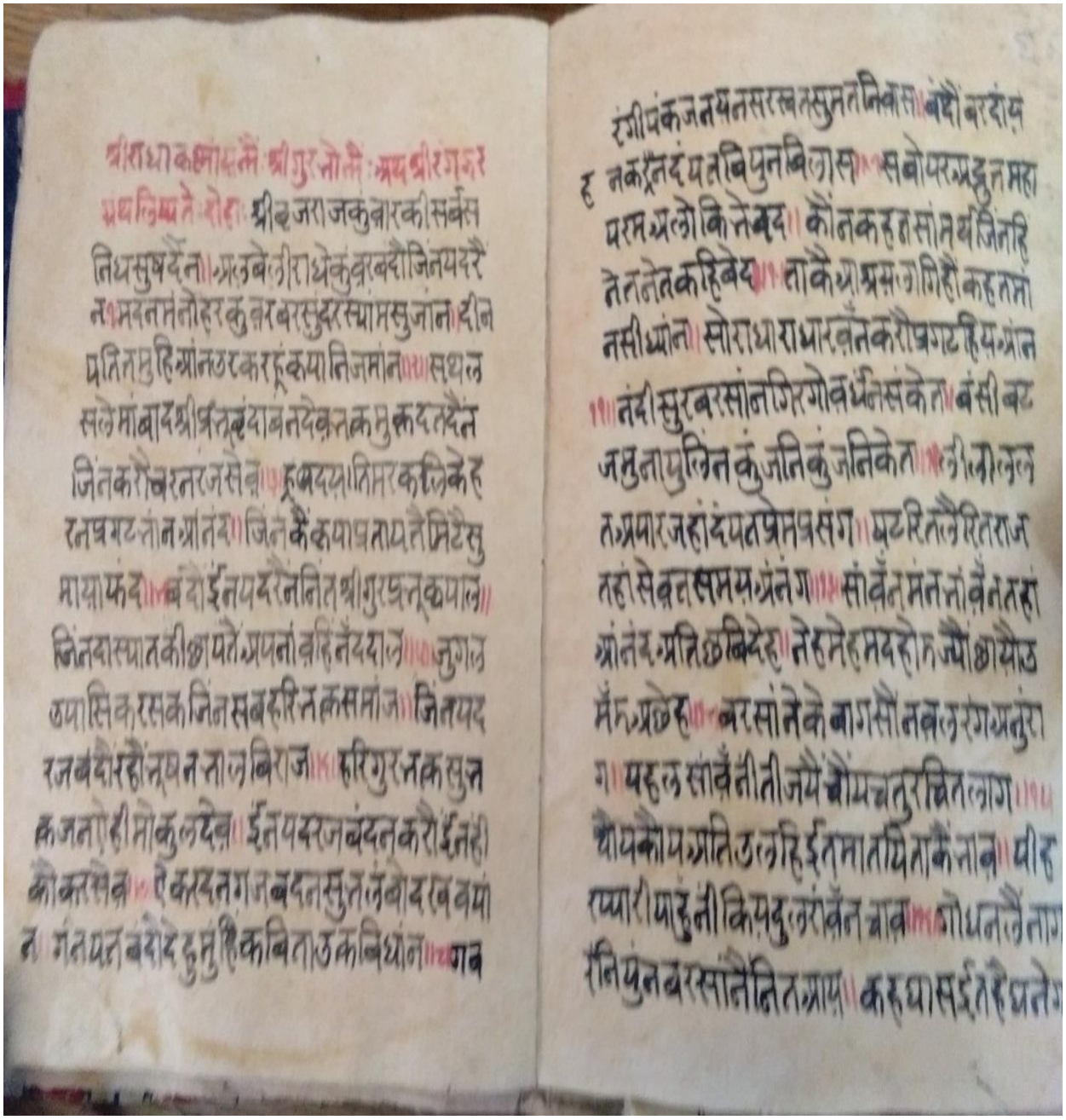

(छायाप्रति – 2) सुंदरिकुँवरिबाई कृत 'नेहनिधि' का अंतिम पृष्ठ

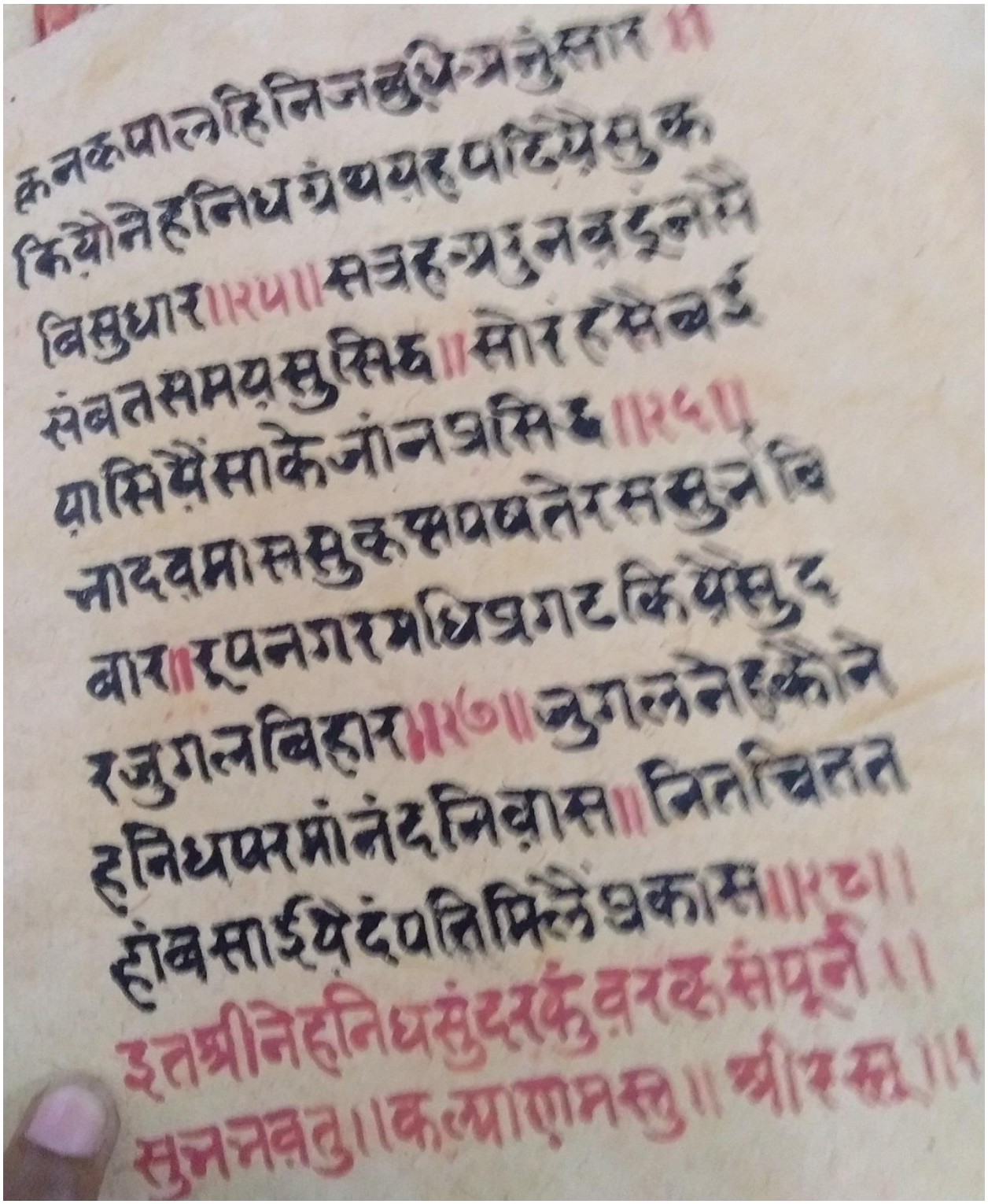

(छायाप्रति –3) ब्रजदासी रानी बाँकावती कृत 'भागवत पुराण भाषा' का पृथम पृष्ठ

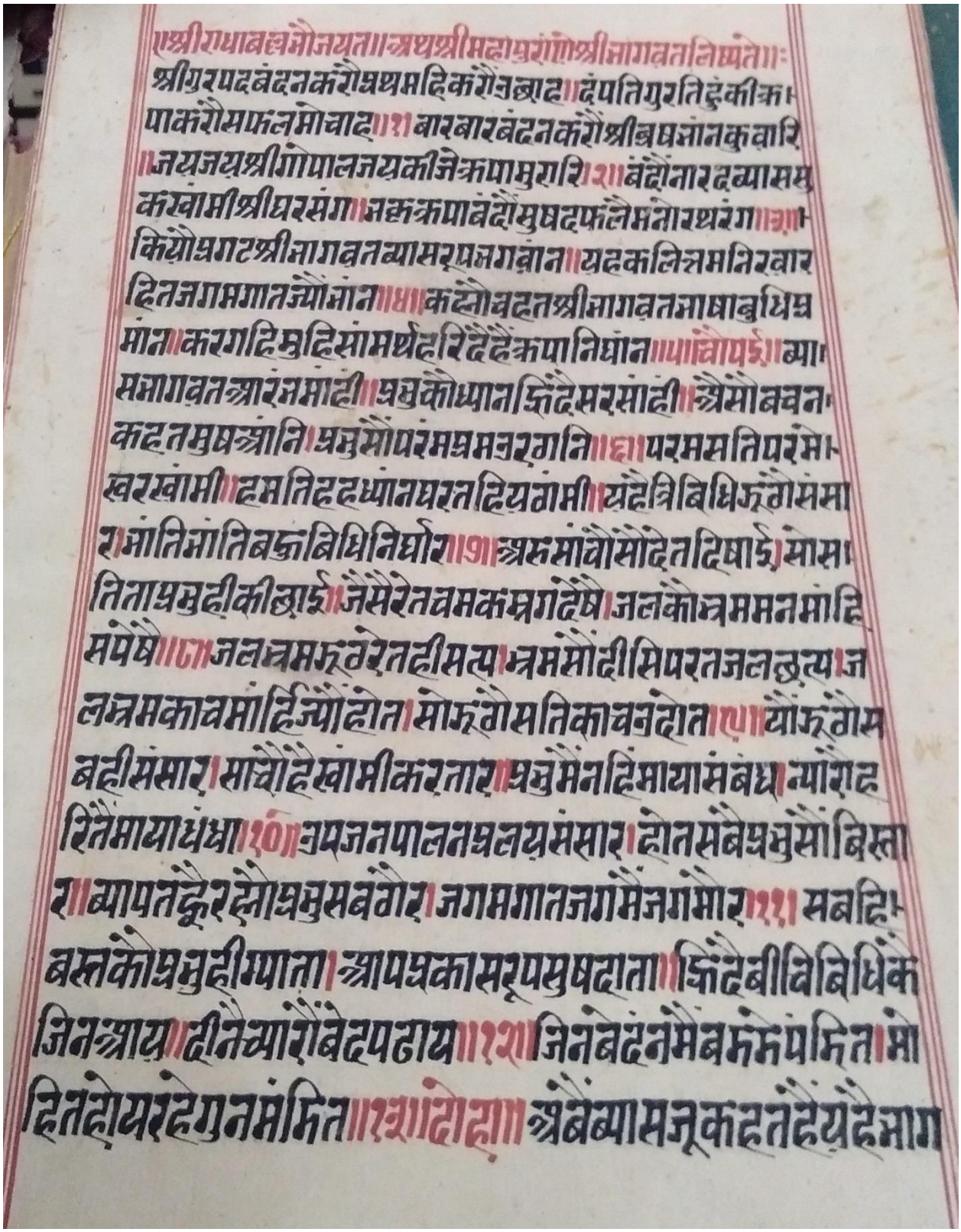

(छायाप्रति –4) ब्रजदासी रानी बाँकावती कृत 'ख्याल संग्रह' प्रथम पृष्ठ

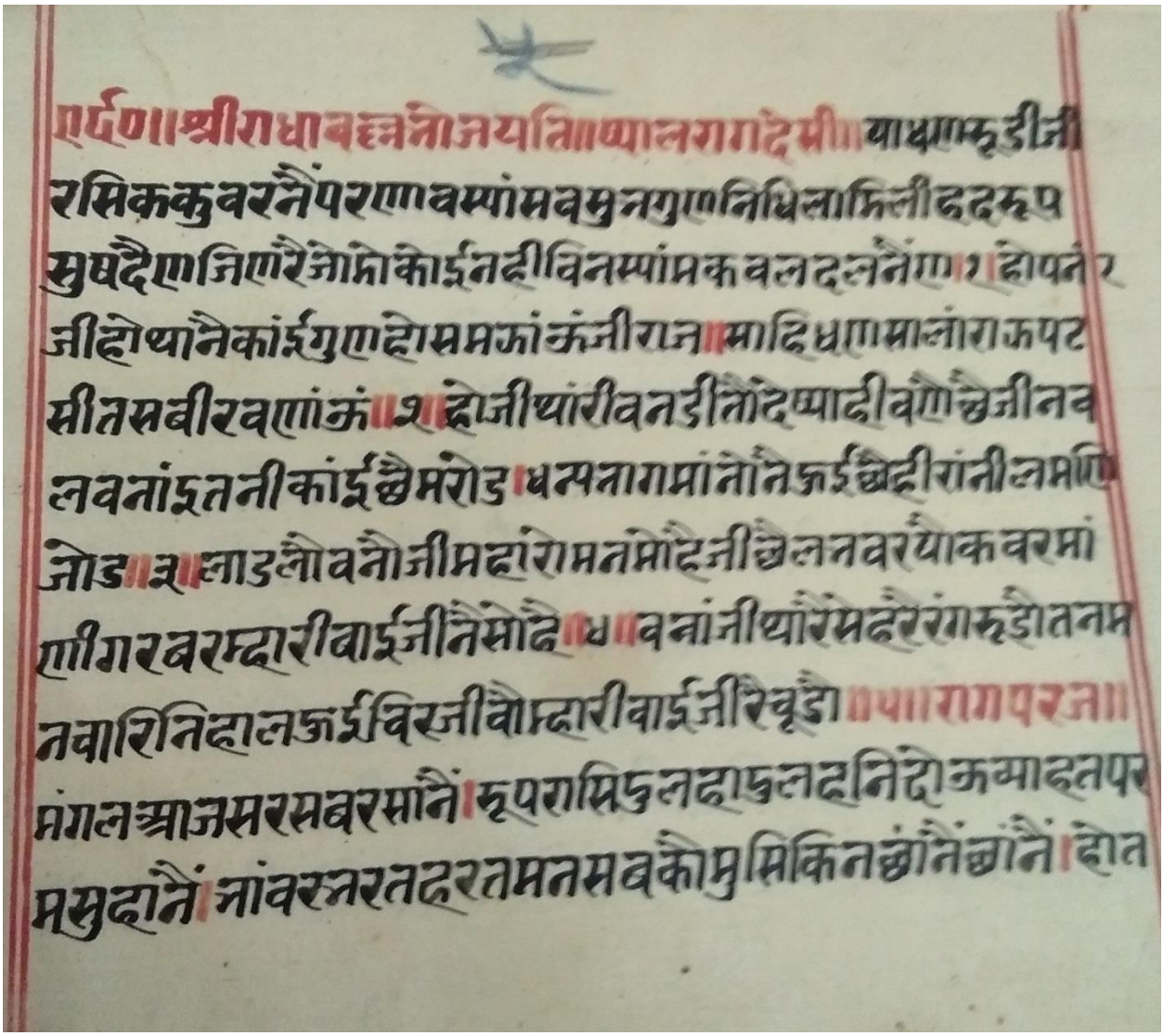

उपरोक्त छायाप्रतियों की भाषा ब्रज है, परंतु उसे इस प्रकार लिखा गया है कि वह संस्कृत की सामासिक शैली जैसी प्रतीत होती है। इसका एक कारण यह भी है कि हिंदी भाषा की वर्णावली, जैसी आज प्रयुक्त होती है वैसी मध्यकालीन रचनाकारों के मध्य नहीं हुआ करती थीं। उनकी अक्षरावली और आज की अक्षरावली में बहुत अंतर है। इस अंतर को समझने के लिए बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, और उदयपुर की छायाप्रतियों में प्रयुक्त वर्णावली के अंतर को समझना होगा। इसके लिए रजवाड़ों की भाषाओं का चार्ट या उक्त चारों क्षेत्रों की 'वर्णावली अंतर सूची' नीचे दी जा रही है जिसके विश्लेषण से ज्ञात हो जायेगा कि तद्युगीन और समकालीन हिंदी भाषा में कितना अंतर है। सूची निम्नांकित है –

BKDPM 9767 N
रजवाड़ों की भाषाओं का चार्ट
राजस्थान राज्य अभिलेखागार
बीकानेर (राजस्थान)
बीकानेर राज्य की भाषा
जोधपुर राज्य की भाषा
जयपुर राज्य की भाषा
कोटा उदयपुर

तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि चारों क्षेत्रों की लिपि की बुनावट आज जैसी, और एक जैसी नहीं है। आलोच्यकालीन भाषा में 'न' वर्ण 'उ' जैसा प्रतीत होता है तथा 'रू' को 'रू' लिखा गया है और जिसे आज मूर्धन्य व्यंजन 'ष' उच्चरित किया जाता है वह ब्रजदासी कृत 'भागवत पुराण भाषा' में 'ख' पढ़ा जाता है। इसके प्रमाण हेतु 'भागवत पुराण भाषा' का एक दोहा देखिए –

अबैं व्यासजू कहत हैं यहै भागवत मांहिं।।
धर्म सबै निहकाम अब, बर्नन करि सुष पाहिं।।[32]

ध्यातव्य है कि 'भागवत पुराण' के उक्त दोहे में 'सुष' का अर्थ 'सुख' से प्रस्फुटित होता है और ज्ञात होता है कि बाँकावती जी कह रही हैं कि भागवत का वर्णन करने से सुख की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार हमें 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर' में मीराँबाई कृत 'नरसिंह जी रो माहेरौ, रतनिया कृत 'नरसी जी की हुड़ी' और भागबाई कृत 'भागबाई की साखी' की छायाप्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनकी एक–एक छायाप्रति निम्नांकित है –

(छायाप्रति –6) मीराँबाई कृत 'नरसिंह जी रो माहेरौ' का प्रथम पृष्ठ

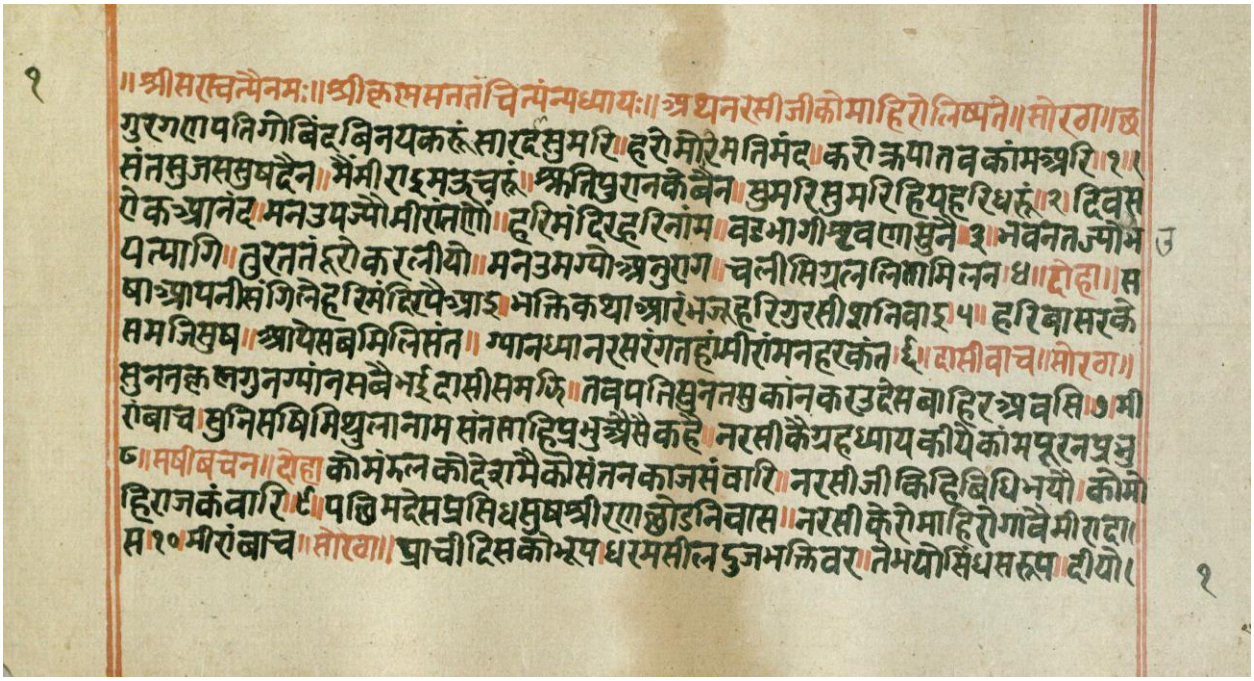

[32] ब्रजदासी बाँकावती, भागवत पुराण भाषा, पृष्ठ संख्या, 01

(छायाप्रति –7) रतनिया कृत 'नरसिंह जी की हुड़ी' का प्रथम पृष्ठ

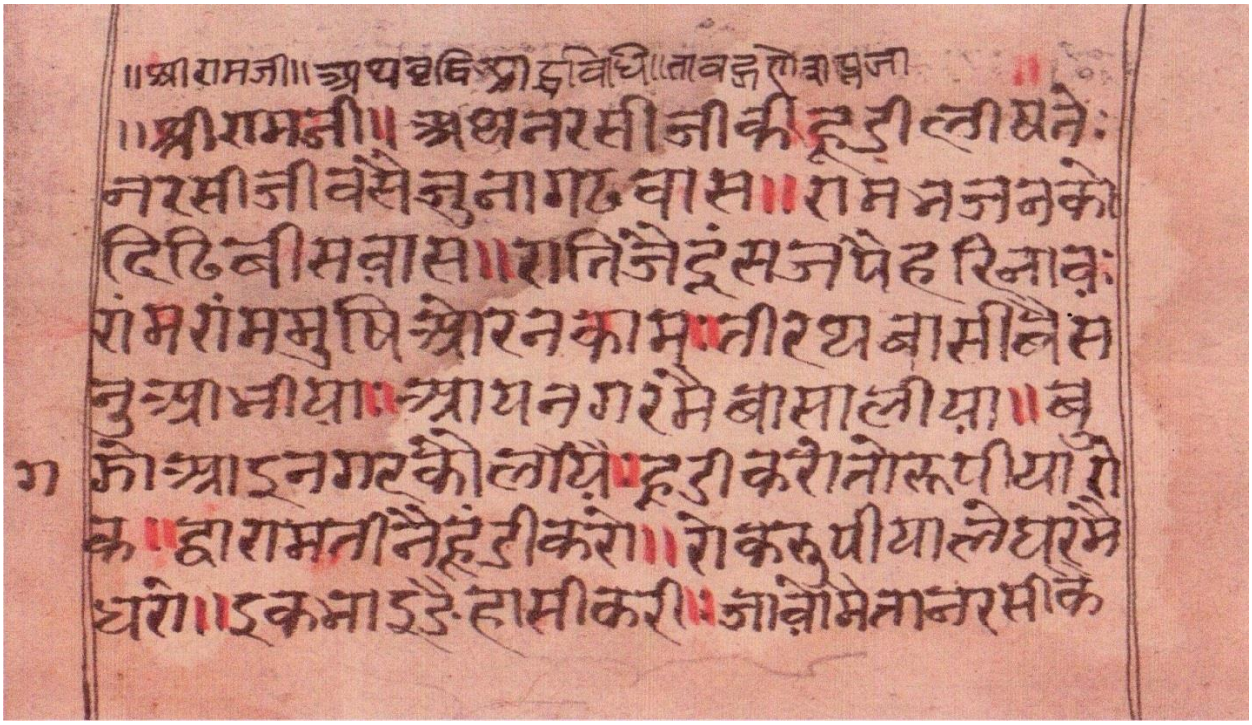

(छायाप्रति–8) 'भागबाई की साखी' का प्रथम पृष्ठ

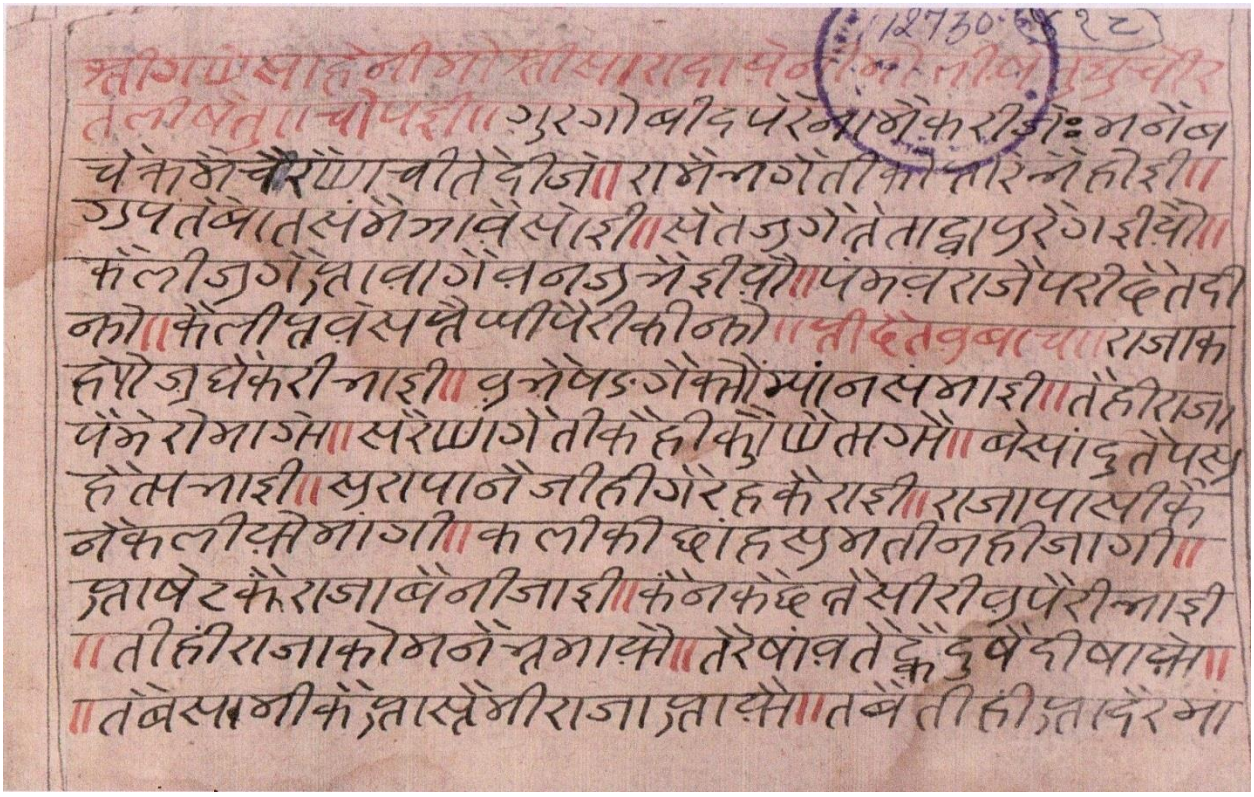

उपरोक्त छायाप्रतियों की शब्दावली राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है। यहाँ पर भी 'ष' को 'ख' उच्चरित किया गया है। साहित्य जगत में मीराँबाई की कई पदावली प्राप्त होती हैं, लेकिन उनके जितने ग्रंथ बताए जाते है उनकी अलग से कोई प्रति दृष्टिगत नहीं होती; फिर रतनियाँ और भागबाई जैसी लेखिकाओं का हिंदी साहित्य में कहीं कोई पद या नामोल्लेख भी प्राप्त नहीं होता। इस संबंध में जयपुर के पुस्तकालय से प्राप्त व्याख्येय लेखिकाओं की पांडुलिपियाँ न केवल उनके साहित्य सृजन को उजागर करती हैं वरन् साहित्येतिहास में उनकी एक सबल छवि भी प्रस्तुत करती हैं। उपरोक्त तीनों प्रतियाँ जिस पुस्तकालय (प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान) में प्राप्त हुई हैं, उसकी एक विशेषता यह है कि यहाँ का संरक्षण पूर्णतः सरकार के हाथों में हैं और पुस्तकालयाध्यक्ष की अनुमति से 5 रूपये प्रति, छायाप्रति के हिसाब से आप छायाप्रतियाँ प्राप्त कर सकते हैं। प्रशंसनीय है कि वे इसकी एक रसीद भी बनाकर देते हैं और लिया गया सारा धन राजस्थान सरकार के ख़जाने में शामिल कर लिया जाता है।

जयपुर में 'अलबर्ट हॉल' नामक एक म्युजियम है जिसके पुस्तकालय में प्राचीन काल के राजा महाराजाओं की ऐतिहासिक पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह पुस्तकालय स्वर्ग समान है। बहरहाल, पांडुलिपियों की खोज की इस प्रक्रिया में यह बात पुष्ट हो जाती है कि आलोच्यकालीन लेखिकाओं के साहित्य सृजन एवं जीवन परिचय हेतु राजस्थान अपने आप में बहुत सारी सामग्री समेटे हुए है जिसपर समय रहते काम हो जाना चाहिए अन्यथा लेखिकाओं की साहित्य साधना कभी समाज के समक्ष नहीं आ पायेगी और समाज व साहित्य में उनकी भागीदारी का उचित मूल्यांकन नहीं हो पायेगा।

(ग) ग्रंथ परिचय एवं महत्त्व

पांडुलिपियों की खोज के दौरान हमें ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक की लेखिकाओं द्वारा लिखित कई ग्रंथ, कवित्त संग्रह, फुटकल रचनाएँ और उनके परिचय प्राप्त हुए हैं जिनका परिचयात्मक विश्लेषण और महत्त्व प्रस्तुत करना अपरिहार्य है। ये ग्रंथ न केवल लेखिकाओं की साहित्यिक समृद्धि के सूचक हैं वरन् उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक संवेदनाओं पर भी प्रकाश डालते हैं। ये ग्रंथ दो श्रेणियों में विभक्त हैं – हस्तलिखित ग्रंथ और प्रकाशित ग्रंथ। इन ग्रंथों में निहित विषयवस्तु पर शोध प्रबंध की आगे की यात्रा निर्भर करती है इसलिए इनका पूर्ण परिचय एवं महत्त्व प्राप्त कर लेना आवश्यक है। अतः लेखिकाओं द्वारा लिखित ग्रंथों का परिचय एवं महत्त्व इस प्रकार है –

हस्तलिखित ग्रंथ

1. नरसिंह जी रो माहेरौ

मीराँबाई कृत 'नरसिंह जी रो माहेरौ' ईस्वी सन् 1530 में लिखित रचना है जिसकी हस्तलिखित प्रति 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर' में रखी हुई है। प्रस्तुत ग्रंथ में कृष्ण भक्ति के अनेकों पद रचित हैं। इनमें कृष्ण के बाल रूप के साथ–साथ उनके व्यस्क रूप की भी उपासना की गई है। ग्रंथ के प्रमाण हेतु हम उसके द्वितीय पृष्ठ की एक छाया प्रति संलग्न कर रहे हैं जो निम्नांकित है –

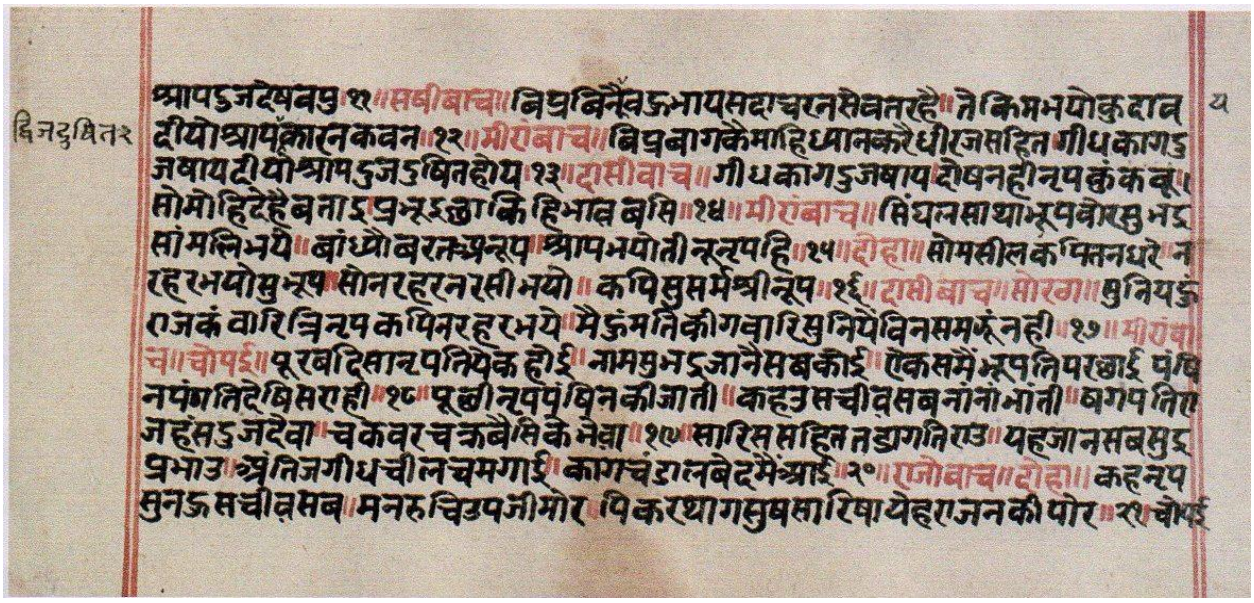

2. नेहनिधि

सुन्दरिकुँवरिबाई कृत 'नेहनिधि' की रचना ईस्वी सन् 1760 में की गई थी। इस रचना में वृन्दावन में हुई कृष्ण और राधा की विलास क्रीड़ाओं का वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रति 'चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस', जयपुर में सुरक्षित है। यह एक मोटी पुस्तक है जिसमें 'नेहनिधि', 'रंगझर', 'भावना प्रकाश' संग सात ग्रंथ रचित हैं। इसकी रचना सामान्य काग़ज पर न होकर ताड़ पत्र पर हुई है और इसके पृष्ठों की संख्या 250 से 300 के लगभग है।

3. विवाह विलास

ब्रजदासी रानी बाँकावती कृत 'विवाह विलास' की रचना ईस्वी सन् 1770 में हुई थी। यह रचना कृष्ण भक्ति के व्यापक प्रसार की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इस ग्रंथ में

कवयित्री ने राधा कृष्ण के विवाह एवं उससे संबंधित विभिन्न शास्त्रीय एवं लोक प्रथाओं का विस्तृत चित्रांकन किया है। इससे कवयित्री की कृष्ण भक्ति के साथ–साथ राधा भक्ति भी प्रकट होती है। इसकी रचना भी ताड़ पत्रों पर हुई है।

4. रंगझर

सुन्दरिकुँवरिबाई कृत 'रंगझर' की रचना ईस्वी सन् 1788 में हुई थी। इस ग्रंथ में भी राधा कृष्ण की दिन–प्रतिदिन की लीलाओं का वर्णन है जिससे यह बात और पुष्ट हो जाती है कि तद्युगीन लेखिकाओं ने कृष्ण के साथ–साथ राधा को भी अपने साहित्य सृजन का अभिन्न हिस्सा बनाया है। इससे हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति के साथ–साथ राधा भक्ति की भी असीम संभावनाएँ हैं। पूर्वोक्त ग्रंथों की भांति इसकी रचना भी ताड़ पत्रों पर हुई है। इसकी हस्तलिखित प्रति चंद्रमहल पोथीखाना, सिटी पैलेस, जयपुर में सुरक्षित है।

5. भावना प्रकाष

सुंदरिकुँवरिबाई कृत 'भावना प्रकाश' की रचना ईस्वी सन् 1792 में हुई थी। इसके अंतर्गत कृष्ण तथा राधा की दाम्पत्य लीलाओं का मनोहारी वर्णन किया गया है। इतिहास में राधा और कृष्ण का विवाह प्रसिद्ध नहीं है लेकिन कवयित्री की कल्पना ने इसे संभव कर दिया है। व्याख्येय प्रेमी युगल के प्रति किसी कवयित्री की यह एक भिन्न दृष्टि का परिचायक है। इसकी हस्तलिखित प्रति 'चंद्रमहल पोथीखाना, सिटी पैलेस', जयपुर में सुरक्षित है।

6. ख्याल संग्रह

ब्रजदासी बाँकावती कृत 'ख्याल संग्रह' की रचना ईस्वी सन् 1793 में हुई थी। यह मूलतः रागों पर आधारित ग्रंथ है जिसमें 'राग देसी', 'राग परज' और 'राग सोरठ' जैसे कई राग लिखित हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि आलोच्यकालीन लेखिकाओं में विशेषकर राजकुमारी, रानी, महारानी लेखिकाओं की अभिरुचि संगीत में भी थी और संभवतः वे इसका अभ्यास भी करती हों। इसकी हस्तलिखित प्रति 'चंद्रमहल पोथीखाना, सिटी पैलेस', जयपुर में सुरक्षित है।

7. ब्रजदासी 'भागवत पुराण भाषा'

ब्रजदासी बाँकावती कृत 'भागवत पुराण भाषा' की रचना ईस्वी सन् 1793 में हुई थी। यह विशाल ग्रंथ भागवत पुराण का पद्यानुवाद है। अपने गुरू से भागवत के व्यवस्थित अध्ययन के फलस्वरूप ही रानी बाँकावती भागवत को पूर्ण रूप में आत्मसात् कर सकीं। उल्लेखनीय है कि इसके पाँच बड़े–बड़े खंड हैं जो बड़े–बड़े ताड़ पत्रों पर लिखे गए हैं और प्रत्येक खंड लगभग 160 पृष्ठों का है। इसकी हस्तलिखित प्रति 'चंद्रमहल पोथीखाना, सिटी पैलेस', जयपुर में सुरक्षित है।

प्रकाशित ग्रंथ

1. साँई की कुंडलियाँ

साँई, गिरिधर कविराय की पत्नी थीं और उनके समान ही कुंडलियों की रचना करती थीं। इन्होंने ईस्वी सन् 1650 के लगभग अनेक कुंडली छंदों की रचना की है जिनमें उन्होंने अपने पति के समान ही उपदेशात्मक भाषा का प्रयोग किया है और संसार को रीति–नीति की बातें समझाई हैं। कहा जाता है कि साँई ने सैंकड़ों की संख्या में कुंडली छंदों की रचना की है लेकिन हमें उनके द्वारा रचित केवल 19 कुंडलियाँ ही प्राप्त हुई हैं जो ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' कृत 'स्त्री–कवि–कौमुदी' नामक पुस्तक में संकलित हैं।

2. शेख रंगरेजिन के कवित्त

संस्कृत के प्रकांड पंडित एवं हिंदी के बहुमुखी साहित्यकार विद्यानिवास मिश्र ने ईस्वी सन् 1994 में 'आलम ग्रंथावली' को संपादित किया था जिसमें आलम की पत्नी शेख रंगरेजिन के लगभग 82 कवित्त और सवैया छंद संकलित हैं। शेख रंगरेजिन के कवित्तों की पांडुलिपियाँ 'चंद्रमहल पोथीखाना, सिटी पैलेस', जयपुर के पुस्तकालय में भी 'कवित्त संग्रह' नाम से मौजूद हैं। शेख ने अपने छंदों मे कृष्ण भक्ति के नाना रंग बिखेरे हैं और कहीं कही वे भक्ति से इतर श्रृंगारिक भी हो उठी हैं। कृष्ण भक्ति साहित्य में उनके योगदान को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

3. दयाबोध

दयाबाई कृत दयाबोध की रचना ईस्वी सन् 1740 के लगभग हुई थी। इन्होंने अपने ग्रंथ में दोहा–चौपाई शैली के निर्वाह के साथ 'गुरू भक्ति', 'निर्गुण भक्ति' और 'सगुण भक्ति' को नए आयाम प्रदान किये हैं। ये एक संत स्वभाव की कवयित्री थीं जो केवल अपने गुरू चरणदास को सर्वोपरि स्वीकारती थीं और उन्हीं के चरणों में मुक्ति देखती थीं इसलिए इनके ग्रंथ में गुरू भक्ति प्रमुखता से मुखरित हुई है।

4. सहजप्रकाश

सहजोबाई कृत 'सहजप्रकाश' की रचना ईस्वी सन् 1745 के लगभग अनुमानित की जाती है। इन्होंने भी दयाबाई की भांति गुरू वंदना को ही सर्वोपरि माना है और साथ ही 'काल का महत्त्व', 'साधु महिमा', 'सांसारिक विराग', 'कर्म', 'बुद्ध अवस्था' आदि पर अनेक दोहों की रचना की है। ये चरणदास की शिष्यांओं में उच्चकोटि की शिष्या थीं।

5. रसिकबिहारी बनीठनी के पद

कविवर नागरीदास कृत 'नागरीदास ग्रंथावली' में कवयित्री रसिकबिहारी बनीठनी जी के कई पद और दोहे संकलित हैं। बनीठनी जी के पद रागों पर आधारित हैं जिनमें 'राग तिताल', 'राग सोरठ', 'राग काफी', 'राग नायकी', 'राग गौरी' आदि मुख्य हैं। उन्होंने अपने पदों में बालकृष्ण की अनेक मनोहर छवियाँ उकेरी हैं। उनके पदों में श्री कृष्ण जनमोत्सव से लेकर 'अथराधाजन्मोत्सव', 'साँझी उत्सव' और 'होरी उत्सव' तक के अनेक रसमय राग संकलित हैं। राधा जन्मोत्सव पर बधाई के गीत गाने वाली यह पहली कवयित्री है।

6. महिला मृदुबाणी

मुंशी देवी प्रसाद 'मुंशिफ' द्वारा ईस्वी सन् 1904 में रचित मध्यकालीन लेखिकाओं का काव्य संकलन ग्रंथ 'महिला मृदुबाणी' एक महत्त्वपूर्ण रचना है। हिंदी साहित्येतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी शोधकर्त्ता ने राजस्थान की 35 लेखिकाओं का जीवन परिचय और साहित्यिक परिचय एक साथ प्रस्तुत किया हो। इस ग्रंथ के माध्यम से पहली बार साहित्य जगत को 'कविरानी चौबे', 'काकरेची जी', 'खगनियाँ', 'साँई', 'चंपादे रानी', 'छत्रकुँवरिबाई', 'झीमाचारिणी', 'ताज', 'तुलछराय', 'पद्माचारिणी', 'प्रतापकुँवरिबाई', 'रत्नकुँवरि बीबी',

'रसिकबिहारी बनीठनी जी', 'रानी राड़धड़ी जी', 'बाँकावती जी रानी', 'शेख रंगरेजिन' और 'सुंदरिकुँवरिबाई' सरीखी कई लेखिकाओं का ज्ञान हुआ और साहित्य जगत की आंशिक दृष्टि महिला लेखन की ओर मुड़ी। इस पुस्तक में मुंशी जी ने 'राधाभक्त', 'कृष्ण भक्त', 'रामभक्त' और 'निर्गुण भक्त' कवयित्रियों का पर्याप्त परिचय दिया है। महिला लेखन के संबंध में यह ग्रंथ हिंदी साहित्य की धरोहर है।

7. हिंदी के मुसलमान कवि

साहित्य चिंतक गंगा प्रसाद सिंह विशारद द्वारा रचित 'हिंदी के मुसलमान कवि' पुस्तक की रचना ईस्वी सन् 1926 में की गई। इसमें उन्होंने 'शेख रंगरेजिन', 'रूपमति बेगम' और 'ताज' को मुसलमान कवयित्रियों में सम्मिलित किया है तथा उनका छोटा सा जीवन परिचय देकर उनके कवित्तों और सवैयों पर प्रकाश डाला है। ध्यातव्य है कि गंगा जी ने इसमें प्रधानतः भक्ति विषयक छंदों को स्थान दिया है तत्पश्चात् श्रृंगारिक छंदो का लेखन हुआ है। केवल तीन कवयित्रियों को स्थान देकर भी गंगा जी इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने कवयित्रियों के अन्य पुस्तकों में अंतर्निहित छंदों से अलग, नए छंदों पर प्रकाश डाला है; जैसे शेख के द्वारा रचित शिवभक्ति, दुर्गाभक्ति और गंगा वर्णन के पद इसी पुस्तक में संकलित हैं जो भक्ति की नयी दिशा की ओर संकेत करते हैं। इस संबंध में यह पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में मौजूद है।

8. स्त्री–कवि–कौमुदी

ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' द्वारा रचित 'स्त्री–कवि–कौमुदी', 'महिला मृदुबाणी' के पश्चात् अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना ईस्वी सन् 1931 में की गई थी। यह कुछ मामले में 'महिला मृदुबाणी' से आगे है तो कुछ संबंधों में किनारा करके निकल जाता है। इस ग्रंथ में जहाँ राड़जी रानी जैसी राजस्थानी कवयित्रियों को स्थान नहीं दिया गया है, वहीं लेखिकाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय में यह अपने पूर्ववर्ती से उत्कृष्ट है। भाषाई रूप से भी यह अपने पूर्ववर्ती ग्रंथ से अधिक स्पष्ट है; फिर भी यह कहना गलत न होगा कि थोड़े बहुत अंतर के साथ यह अपने पूर्वलिखित ग्रंथ का अनुगामी है।

9. हिंदी काव्य की कोकिलाएँ

इस ग्रंथ की रचना श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल और ब्रजभूषण शुक्ल के द्वारा ईस्वी सन् 1933 में की गई। यह ग्रंथ तीन खंडो में विभक्त है जिसमें प्रथम खंड मध्यकालीन कवयित्रियों और द्वितीय एवं तृतीय खंड आधुनिककालीन कवयित्रियों से सुसज्जित है। इसमें भी कृष्णभक्त, रामभक्त और श्रृंगारिक, तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों की कवयित्रियाँ उल्लिखित हैं।

10. हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ

श्री व्यथित हृदय द्वारा ईस्वी सन् 1941 में रचित 'हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ' पुस्तक में भी कई मध्यकालीन लेखिकाओं के नाम उकेरे गए हैं; लेकिन इसमें कोई नाम ऐसा नहीं है जो इससे पूर्व लिखित पुस्तकों में न हो। इस प्रकार यह पुस्तक अपनी पिछली पुस्तकों की नकल ही प्रतीत होती हैं। हाँ! लेखिकाओं के एक–आधा पद में थोड़ी सी हेर फेर अवश्य है लेकिन उसी थोड़ी सी हेर फेर के साथ वे पद पूर्वोक्त संकलनों में भी प्राप्त हो जाते हैं। फिरभी महिला लेखन के घोर अभाव में यह पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हुई दिख पड़ती है।

11. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ

विदुषी सावित्री सिन्हा कृत 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसकी रचना ईस्वी सन् 1953 में की गई थी। यह किसी महिला द्वारा लिखित पहली पुस्तक है, जो केवल मध्यकालीन लेखिकाओं पर केन्द्रित है। हर्ष की बात यह है कि इसमें तेरहवीं शती की कवयित्री मुक्ताबाई, पार्वतीबाई और उमांबा का जीवन परिचय और पद परिचय दोनों दिये गये हैं। विदुषी सावित्री सिन्हा ने इसे छः भागों में विभक्त किया है – 'डिंगल की कवयित्रियाँ', 'निर्गुण धारा की कवयित्रियाँ', 'कृष्ण काव्य धारा की कवयित्रियाँ', 'राम काव्य धारा की कवयित्रियाँ', 'श्रृंगार काव्य की लेखिकाएँ' और 'स्फुट काव्य की लेखिकाएँ'। सावित्री सिन्हा द्वारा रचित इस पुस्तक की मुख्य विशेषता, रचयिता की गहरी राजनीतिक–सामाजिक समझ के साथ–साथ कवयित्रियों के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रस्तुत करने की कला है। यदि उनकी रसवादी दृष्टि को छोड़ दें तो जितना संभव हो सका है, सावित्री सिन्हा ने सभी मध्यकालीन लेखिकाओं के साथ न्याय करने का प्रयास किया है। उल्लेखनीय है कि आलोच्य पुस्तक में सावित्री सिन्हा ने तेरहवीं शती से लेकर

1950 तक की लेखिकाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया है, किंतु हमने इसे केवल 1857 तक ही सीमित रखा है।

12. हिंदी की कवयित्रियाँ

साहित्यकार रामप्रसाद मिश्र कृत 'हिंदी की कवयित्रियाँ' पुस्तक की रचना ईस्वी सन् 1990 में हुई थी। इस पुस्तक में विद्वान साहित्यकार ने आदिकालीन, भक्तिकालीन और आधुनिककालीन, कई कवयित्रियों का नामोल्लेख किया है, लेकिन व्याख्येय पुस्तक में उल्लिखित सभी नाम सावित्री सिन्हा द्वारा सृजित उक्त पुस्तक में उपलब्ध हैं; इसलिए इस पुस्तक को अपनी पूर्ववर्ती पुस्तक की छोटी सी नकल समझना अधिक उपयुक्त होगा। बहरहाल, स्त्री साहित्य के भंडार भरने के संबंध में इसकी स्वीकृति अनुचित न होगी। फिर रामप्रसाद जी ने इसमें शैली का नया पुट लाने का हर संभव प्रयास किया है।

13. मीराँबाई की पदावली

पंडित परशुराम चतुर्वेदी कृत 'मीराँबाई की पदावली' की रचना ईस्वी सन् 1932 में हुई। इसका वर्तमान संस्करण 2008 में प्रकाशित हुआ है। इसे मीराँबाई के अध्ययन हेतु सर्वाधिक प्रमाणिक रचना माना जाता है। इसमें चतुर्वेदी जी ने मीराँबाई के जीवन, पदावली और पाठान्तर आदि पर गहन अध्ययन किया है; साथ ही मीराँ के जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख भी किया है।

14. मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना

डॉ. उषा कंवर राठौर द्वारा रचित 'मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। सावित्री सिन्हा की भांति इन्होंने भी 1500 से 1900 तक की लेखिकाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गहराई से अध्ययन किया है; जिसको हमने विषय निर्वाह हेतु ईस्वी सन् 1857 तक सीमित कर दिया है। इसका प्रथम प्रकाशन ईस्वी सन् 2002 में राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर से हुआ। उषा जी ने इसमें उन जैन कवयित्रियों को भी स्थान दिया है जिन्होंने हिंदी में रचना की है; साथ ही कुछ नयी लेखिकाओं का जीवन परिचय एवं कृतित्व भी सामने रखा है। इन्होंने भी 500 वर्षों की कवयित्रियों को छः खंडों में विभक्त किया है – 'कृष्णभक्ति काव्यधारा की कवयित्रियाँ', 'रामभक्ति काव्यधारा की कवयित्रियाँ',

'निर्गुणभक्ति काव्यधारा की कवयित्रियाँ', 'डिंगल काव्यधारा की कवयित्रियाँ', 'जैन काव्यधारा की कवयित्रियाँ' और अन्य कवयित्रियाँ। सावित्री सिन्हा के शोध ग्रंथ से इतर जैन कवयित्रियों को स्थान प्रदान करना इस पुस्तक की नवीनता है। इससे उन लेखिकाओं को भी खोजने की प्रेरणा प्राप्त होती है जो हैं, तो अन्य भाषाओं की लेकिन हिंदी साहित्य में भी लेखन कर रही हैं।

15. भारतीय नारी संत परंपरा

साहित्य मीमांसक बलदेव वंशी कृत 'भारतीय नारी संत परंपरा' का प्रथम प्रकाशन ईस्वी सन् 2011 में हुआ था। बलदेव वंशी जी ने इसमें अपने पूर्वोक्त रचनाकारों से कुछ अलग हिंदीत्तर और विदेश की हिंदी लेखिकाओं (माँ पीरो और श्री माँ) का भी नामोल्लेख किया है। बलदेव वंशी जी ने लेखिकाओं के जीवन के बारे में पर्याप्त जानकारी दी है, लेकिन उनके कृतित्व के संबंध में सामग्री का पर्याप्त अभाव है; फिर भी इस पुस्तक की मूल्यवत्ता को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता।

उल्लेखनीय है कि उपरोक्त वर्णित पुस्तकें आदिकालीन और मध्यकालीन महिला साहित्य की महत्त्वपूर्ण धरोहर है। उनके परिचय एवं महत्त्व से यह सिद्ध हो जाता है कि हिंदी साहित्य में महिला लेखन को बहुत महत्त्वपूर्ण कभी नहीं माना गया जबकि महिला लेखन की विस्तृत परंपरा यहाँ उपस्थित दिख पड़ती है।

पाठालोचन की प्रक्रिया का परिचय

हिंदी साहित्येतिहास, कविवृत्त संग्रहों एवं हस्तलिखित ग्रंथों में महिला रचनाकारों के कई पद दिए गए हैं; परंतु ऐसा अंशतः ही दृष्टिगत होता है कि साहित्येतिहास एवं कविवृत्त संग्रहों में उद्धृत पदों में साम्यता हो। इन पदों में वर्ण, शब्द, वाक्य, लय, मात्रा, अनुस्वार, अनुनासिकता आदि के कारण कई भेद उत्पन्न हो गए हैं जिससे मूल पाठ में परिवर्तन हो गया है। जैसे उमांबा कृत एक पद में 'सैयां' शब्द के वर्ण 'या', पर अनुस्वार लगा हुआ है जबकि यह एक अनुनासिक शब्द है जिसपर चंद्रबिंदु लगनी चाहिए। कई स्थानो पर 'प्रबीनराय' को 'प्रवीनराय' लिखा गया है जबकि यह शब्द (प्रवीनराय) ब्रजभाषा से अधिक हिंदी के निकट है और फिर तद्युगीन समय में हिंदी साहित्य पर खड़ी बोली हिंदी का इतना आधिपत्य नहीं था जितना ब्रजभाषा का था; इसलिए इस शब्द का उपयोग करना ब्रजभाषा की दृष्टि से सही नहीं है।

कई जगह मात्राओं के क्रम मे हेर–फेर हो गया है जैसे खगनियाँ की एक पहेली में 'गूंजत पुहुपन पै मन साधे' को ज्योति प्रसाद मिश्र जी ने अपने 'स्त्री कवि संग्रह' में 'गूजैं फूलै पर मन साधे' कर दिया है, जिससे प्रथम पद में 17 मात्राओं का क्रम 16 का हो गया है। इसी तरह खगनियाँ की एक अन्य पहेली के प्रथम पद 'रहत पीतम्बर वाके काँधे' में से ज्योति जी ने 'वाके' शब्द का लोप कर दिया है जिससे लयात्मक अवरोध उत्पन्न हो गया है और पद की निर्मिति 'रहता है पीतांबर कांधे' हो गई है।

किसी–किसी पद में तो शब्दों का क्रम ऐसा उलट दिया गया है जिससे समस्त छंद का अर्थ परिवर्तित हो गया है। शेख रंगरेजिन द्वारा रचित एक कवित्त की पंचम पंक्ति है – 'सेख कहि आधे बैना बोलि करि नीचे नैना'; परंतु पंडित गिरिजादत्त शुक्ल और व्यथित हृदय जी ने इस पंक्ति को उलटते हुए पद लिखा है 'सेख कहि आधे बैना बोलि कर नाचे नैना'। 'बोलि करि नीचे नैना' के स्थान पर 'बोलि कर नाचे नैना' कहने से समस्त छंद का अर्थ परिवर्तित हो जाता है और छंद का मूल खंडित हो जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि कई–कई स्थानो पर तो पूरा–पूरा वाक्य बदल दिया गया है जिससे छंद ही कुछ और हो गया है। जैसे उमांबा का एक पद है 'सहेत्या है भारो बहुत सुधारो, सतगुरू सैन मिलायो', इसे आभा त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन नारी भावना के परिप्रेक्ष्य मे संत कवयित्रियों का योगदान' में 'सहेल्या हेमारों बौहोत सुप्यारौ सैण सतगुरू जी सैण चलायौ है' कर दिया है। ऐसा होने से छंद का समस्त रूप ही खंडित हो गया है। इस तरह हमने पाठालोचन की इस प्रक्रिया में वर्ण, शब्द, मात्रा, वाक्य, लय आदि को ध्यान में रखकर उपरोक्त पुस्तकों तथा कविवृत्त संग्रहों में से वे पद चुने हैं जो मूल पाठ से सामंजस्य नहीं रखते। हमने निम्नांकित पदों या छंदो में निहित उक्त प्रकार की सभी कमियों को निकालकर मूल पाठ तैयार किया है, ताकि पाठकों को कविवृत्त संग्रहों का अध्ययन करते हुए दिशा भ्रम न हो। यह समस्या उन वर्णों को लेकर उत्पन्न हुई है जिनका 'मूल' लिखित में अलग और उच्चारण में अलग

है, जैसे 'भागवत पुराण भाषा' में मूर्धन्य 'ष' को 'ख' और 'ग' को 'ठ' उच्चरित किया गया है। ऐसे स्थानों पर हमने मूल पाठ से किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया है और उन्हें जस का तस रहने दिया है।

उल्लेखनीय है कि पाठालोचन और मूलपाठ निर्धारण हेतु हमने श्रद्धेय किशोरीलाल गुप्त की प्रविधि का ही अनुसरण करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस प्रविधि का प्रयोग 'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित एक हज़ार कवियों के जन्म, मरण, रचनाकाल, समकालीन रचनाकार, पिता, पति, गुरू, शिष्य इत्यादि के निर्धारण के लिए किया था और 'सरोज सर्वेक्षण' नाम के एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की थी। उनकी प्रविधि की गुणवत्ता यह है कि वह किसी लेखक या ग्रंथ का चौतरफा अध्ययन करती है और विषय या ग्रंथों के परिचय से प्रारम्भ होकर वर्णानुक्रम, पृष्ठनिर्देश, छापेख़ाने, अशुद्ध पाठ, सन्–संवत् आदि की भूलों तक जाती है। श्रद्धेय किशोरीलाल गुप्त जी इस बात का भी खूब ख्याल रखते हैं, कि ग्रंथ मे दिये गए अन्य ग्रंथों के उदाहरण भाषा और काल के आधार पर कहाँ तक उचित हैं; अर्थात् वे जिस ग्रंथ का पाठालोचन कर रहे होते हैं उसके साथ उनके ग्रंथों की भी समालोचना हो जाती है, जो आलोच्य ग्रंथ के मूलाधार हैं; अतः यह प्रविधि साहित्यिक ग्रंथो के लिए एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि प्रदान करती है।

मूलपाठ एवं पाठांतर

संत उमाबाई।

सैयाँ हो मेरी सब ही न बीरी हो गुनो।
करूणानन्द सामी अरज सुनो।।
कामी, कपटी, लोभी मन बसु लालच में अति लीन।
अधम उधारन विरद तुम्हारो सो क्यों होवेगा दीन ?
जो तुम तारी सन्तन का हो मेरी समारत नाहिं।
अधम उधारन नाम सुनो हो, खुशी रहूँ मन माँहिं।।[33]

[33] पाठान्तर –

1. सैयां हो मेरी सब ही न बीरी हो गुनो।
   करूणानन्द सामी अरज सुनो।।
   कामी, कपटी, लोभी मन बसु लालच में अति लीन।
   अधम उधारन विरद तुम्हारो से क्यों होवेगा दीन ?
   जो तुम तारी सन्तन को हो मेरी समारत नाहिं।
   अधम उधारन नाम सुनो हो, खुशी रहूँ मन माँह।। (मध्यकाकालीन नारी भावना के परिप्रेक्ष्य में संत कवयित्रियों का योगदान)

सहेल्या है भारो बहुत सुधारो, सतगुरू सैन मिलायो।

राम तमारा नाम मैं को रैण–दिवस तलफाय।।[34]

चंपादे रानी।

प्यारी कहै पीथल सुनौ। धोला दिस मत जोय।

नरा नाहरा डिगमरा। पाका ही रस होय।।

खेड़ज पक्का धोरियाँ। पंथज गउँघा पाव।

नरा तुरंग बनफला। पक्का पक्का साव।।[35]

प्रवीणराय पातुरि

बिनती राय प्रबीन की, सुनिये साह सुजान।

झूठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान।।[36]

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हैं निज स्वासन सों सिगरी मति गोई।

देह तजौं कि तजौं कुलकानि, हिये न लजौं लजि हैं सब कोई।

---

2. भारतीय नारी संत परंपरा में 'सैयाँ' शब्द में 'या' पर अनुस्वार है, जबकि यह अनुनासिक वर्ण है।
3. कई पुस्तकों में तृतीय पँक्ति में से 'मन' विलुप्त है।

[34] पाठान्तर –
सहेल्या हेमारों बौहौत सुप्यारौ सैण सतगुरू जी सैण चलायौ है।
राम तमारा नां मै हौ रैण दिवस तलफाय।। (मध्यकाकालीन नारी भावना के परिप्रेक्ष्य में संत कवयित्रियों का योगदान)

[35] पाठान्तर –
प्यारी कहे पीथल सुनौ। धोलाँ दिस मत जोय।।
नराँ नाहराँ डिगमराँ। पाकाँ ही रस होय।।
खेड़ज पक्काँ धोरियाँ। पंथज गउघाँ पाव।
नराँ तुरंगाँ बनफला। पक्काँ पक्काँ साव।। (महिला मृदुबाणी)
1. नराँ, नाहराँ, डिगमराँ, पाकाँ, पक्काँ आदि शब्दों पर चंद्रबिन्दु (ँ) की आवश्यकता नहीं है।

[36] पाठान्तर –
बिनती राय प्रवीन की, सुनिये साह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी–बायस–स्वान।। (स्त्री–कवि–कौमुदी)
1. 'प्रवीन' में 'व' वर्ण का उच्चारण है जबकि ब्रज में यह 'ब' होगा अर्थात् 'प्रबीन'
2. 'जूठी' के स्थान पर 'झूठी' का प्रयोग सिद्ध है।

स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई।

जामैं रहै प्रभु की प्रभुता। अरू मेरो पतिव्रत भंग न होई।।[37]

<u>खगनियाँ।</u>

आधा नर आधा मृगराज।

युद्ध वियाहे आवे काज।।

आधा टूटि पेट में रहै।

बासू केरि खगनियाँ कहै।।[38]

(नरसिंह)

लम्बी चौड़ी आँगुरी चारि।

दुहों ओर तैं डारिन फारि।

जीव न होय जीव को गहै।

बासू केरि खगनियाँ कहै।।[39]

(कंघी)

रहत पीतम्बर वाके काँधे।

गूंजत पुहुपन पै मन साधे।।

---

[37] पाठान्तर –
आईहों बूझन मंत्र तुम्है। जिन स्वासन सों सिगरी मति गोही।। (मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)
हाथ रहै परमारथ स्वारथ। चित्त विचारि कहौ पुनि सोई।। (महिला मृदुबाणी)
1. प्रथम पंक्ति का अंतिम शब्द 'गोही' के स्थान पर 'गोई' होना चाहिए।
2. सही पंक्ति 'स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई' है।

[38] पाठान्तर –
आधानर आधा मृगराज।
युद्ध विआहे आवे काज।।
आधा टूट पेट में रहे।
वासू केरि खगनिया कहै।। (स्त्री–कवि–संग्रह)
1. कई स्थानों पर खगनियाकृत पहेली में 'टूट', 'विआहे' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो अनुपयुक्त हैं।
2. खगनियाँ शब्द पर चंद्रबिंदु सिद्ध है; परंतु कई स्थानों पर यह नहीं दी गई है।

[39] पाठान्तर –
लंबी चौड़ी आँगुरि चार।
दुहँ ओर से डारिन फार।
जीव न होय जीव को गहै।
बासू केर खगनिया कहै।। (स्त्री–कवि–सग्रह)
1. ब्रजभाषा में 'चार' और 'फार' शब्द के स्थान पर 'चारि' और 'फारि' शब्द प्रयुक्त होता है।

कारो है पै रस को गहै।

बासू केरि खगनियाँ कहै।।[40]

(भौंरा)

रूपमति बेगम

और धन जोड़ता है री मेरे, तो धन प्यारे की प्रीत पूँजी।

काहू त्रिया की न लागे दृष्टि, अपने कर राखूँगी कूँजी।।[41]

साँई।

साँई बेटा बाप के बिगरे भए अकाज।

हरणाकुसपु अरू कंस को गयो दुहुन को राज।।

गयो दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।

दुशमन दावागीर हँसे बहु–मंडल नगरी।।

कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई।

पिता पुत्र के बैर नफ़ा कहु कौने पाई।।[42]

साँई ऐसे पुत्र से बाँझ रहै बरू नारि।

बिगरे बेटे बाप से जाय रहै ससुरारि।

---

[40] पाठान्तर –
रहता है पीतांबर कांधे।
गूजैं फूलै पर मन साधे।।
काला होता रस को गहै।
बासू केरि खगनिया कहै।। (स्त्री–कवि–सग्रह)

[41] पाठान्तर –
सावित्री सिन्हा कृत 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' में 'काहू' शब्द के स्थान पर 'कहू' शब्द है जो ब्रजभाषा के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त है।

[42] पाठान्तर – 1
साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को गयउ दुहुन को राज।
गयउ दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर हँसे महिमंडल नागरी।
कह गिरिधर कविराय युगन ते यह चलि आयी।
पिता पुत्र के बैर नफ़ा कहु कौने पायी।। (स्त्री–कवि–संग्रह)
पाठान्तर – 2
हरनाकुस ओ कंस को, गयो दुहुन को राज। (मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)

जाय रहै ससुरारि नारि के हाथ बिकाने।

कुल के धर्म नसाय और परिवार नसाने।

कह गिरिधर कविराय मातु झक्खे वहि ठाईं।

असि पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहतिउँ बरू साईं।।[43]

छत्रकुँवरिबाई।

श्याम सखी हँसि कुँवरि दिस, बोली मधुरे बैन।

सुमन लेन चलिए अबै, यह बिरियाँ सुख दैन।।

यह बिरियाँ सुखदैन, जान मुसकाय चलीं जब।

नवल सखी करि कुँवरि, संग सहचरि बिथुरी सब।।

प्रेम भरी सब सुमन चुनत, जित तित साँझी हित।

ये दुहुँ बेबस अंग फिरत, निज गति मति मिश्रित।।[44]

कविरानी चौबे।

मैं तो यह जानी ही कि लोकनाथ पाय पति,

संग ही रहौंगी अरधंग जैसे गिरिजा।।

एते पै विलक्षण ह्वै उत्तर गमन कीनो,

---

[43] पाठान्तर –1
सॉई ऐसे पुत्र ते बाँझ रहे बरू नारि।
बिगरे बेटा बाप से जाय रहे ससुरारि।
जाय रहे ससुराहि नारि के हाथ बिकाने।
कुल के धर्म्म नसाय और परिवार नसाने।
कह गिरिधर कविराय मातु झंखे वहि ढाईं।
अस पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहितिउँ बरू साईं।। (स्त्री–कवि–कौमुदी)
पाठान्तर –2
सॉई ऐसे पुत्रते बाँझ रहे बरू नारि।
बिगरी बेटे बाप से जाय रहे ससुरारि।
जाइ रहे ससुरारि नारि हाध बिकाने।
कुल के धर्म नसाय और परिवार नसाने।
कह गिरिधर कविराय मातु झंखे वहि ठाईं।
असि पुत्रिन नहिं होय, बांझ रहतिउँ बस सांई।। (स्त्री–कवि–संग्रह)

[44] पाठान्तर –
श्याम सखी हँसि कुँवरि दिसि, बोली मधुरी बैन।.....
यह बिरियाँ सुख दैन, जान मुसुकाय चली जब।
1. कई स्थानों पर इसी प्रकार 'मधुरे' के स्थान पर 'मधुरी' और 'दिस' की जगह 'दिसि' का प्रयोग किया गया है जो अनुपयुक्त है।

कैसे कै मिटत ये बियोग बिधि सिरिजा।।

अब तो जरूर तुम्हें अरज करेही बनैं,

वेहु द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरिजा।।

जो पैं तुम स्वामी आज अटक उल्लंघ जैहों,

पाती मांहि कैसे लिखूँ मिश्र मीर मिरिजा।।[45]

<u>शेख रंगरेजिन</u>।

नेह सों निहारैं नाहु नेकु आगे कीने बाहु,

छाँहियों छुवत नारि नाहियों करति है।

प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,

धरकि सकुचि हियौ गाढ़ौ कै धरति है।।

'सेख' कहि आधे बैना बोलि करि नीचे नैना,

हा हा करि मोहन के मनहिं हरति है।

केलि के अरम्भ खिन खेल के बढ़ाईबे को,

प्रोढ़ा जो प्रबीन सो नबोढ़ा ह्वै ढरति है।।[46]

---

[45] पाठान्तर –
मैं तो यह जानी हो कि लोकनाथ पति पाय,
संग ही रहौंगी अरधंग जैसे गिरजा।।
एते पै बिलक्षण ह्वै उत्तर गमन कीन्हों,
कैसे कै मिटत ये वियोग बिधि सिरजा।।
अब तौ जरूर तुम्हें अरज करे ही बने,
वे हू द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरजा।
जौ पै तुम स्वामी आज अटक उलंघ जैहों,
पाती माहिं कैसे लिखूँ मिश्र मीर मिरजा।। (स्त्री–कवि–संग्रह)

1. 'लोकनाथ पति पाय' से पद की लय भंग होती है।
2. कई स्थानों पर इसी प्रकार 'गिरिजा' के स्थान पर 'गिरजा', 'सिरिजा' के स्थान पर 'सिरजा', 'फिरिजा' के स्थान पर 'फिरजा' और 'मिरिजा' के स्थान पर 'मिरजा' शब्द का प्रयोग किया है जो ब्रजभाषी और उर्दू प्रभाव से एकदम अलग है और खड़ी बोली हिंदी के एकदम निकट है। ध्यातव्य है कि मध्यकालीन ब्रजभाषा में इस प्रकार के शब्दों का चलन नहीं था इसलिए यहाँ यह शब्द अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं।

[46] पाठान्तर – 1
नेह सों निहारि नाहु नेकु आगे कीने बाहु,
छांहियों छुवत नारि नाहियों करति है।
प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,
धरकि सकुचि हियौ गाढ़ौ कै धरति है।।
सेख कहि आधे बैना बोलि कर नाचे नैना,
हा हा करि मोहन के मनहिं हरति है।
केलि के अरम्भ खिन खेल के बढ़ायबे को, (हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ)
प्रोढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा ह्वै ढरति है।। (हिंदी काव्य की कोकिलाएँ)

बीबी ताज।

सुनो दिलजानी मेरे दिलदी कहानी तुम,

दस्तही बिकानी बदनामी ही सहूँगी मैं।

देव पूजा ठानी मैं निवाज़ हूँ भुलानी तजे,

कलमा कुरान साडे गुनन गहूँगी मैं।।

श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिए,

तेरे नेह दाग में निदाग हो दहूँगी मैं।

नंद के कुमार कुरबान तांडी सूरत पै,

तांड नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।।[47]

---

1. पुस्तक 'हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ' में उल्लिखित छंद का पाठान्तर पाठ ही किया गया है; वहाँ 'बोलि करि नीचे नैना' के स्थान पर 'बोलि कर नाचे नैना' ही पढ़ा गया है। साथ ही 'निहारै' को 'निहारि', 'छाँहियों' को छांहियों', और 'प्रबीन' को 'प्रवीन' ही पढ़ा गया है जो ब्रजभाषा की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

पाठान्तर – 2

नेह सों निहाये नाहु नेकु आगे कीन्हें बाहु,
छाँहियौ छुवत नारि नाहियों करति है।
प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,
परकि सकुच हियौ गाढ़ौ कै धरति है।।
सेख कहै आधे बैन बोलि करि नीचे नैन,
हा हा करि मोहन के मनहि हरति है।
केलि के अरम्भ खिन खेल के बढ़ायेबे को,
प्रोढ़ा जो प्रवीन–सो नवोढ़ा ह्वै ठरति है।। (मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)

1. पुस्तक 'मध्यकालीन हिंद कवयित्रियाँ' में भी प्रस्तुत छंद में कई स्थानों पर पाठान्तर दृष्टित होता है। प्रस्तुत छंद में 'निहारै' के स्थान पर 'निहाये', 'छाँहियों' के स्थान पर 'छाँइयौं' 'धरकि' के स्थान पर 'परकि', 'सकुचि' के स्थान पर 'सकुच', 'ढरति' के स्थान पर 'ठरति' जैसे शब्दों की भरमार है जो अनुपयुक्त हैं।
2. शेख के कई छंदों में 'बरबस बस' की जगह 'बरबर बसि', 'छलु' की जगह 'छल', 'बलि' की जगह 'बालि' प्रयुक्त हुआ है जो सही नहीं है। इससे शेख के छंदों में कई पाठान्तर निर्मित हो गए हैं।

[47] पाठान्तर – 1

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुराना सारे गुनन गहूँगी मैं।।
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नंद के कुमार कुरबार ताणी सूरत पै,
हूँ तो तुरकानी हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं।। (स्त्री–कवि–संग्रह)

1. बीबी ताज मध्यकाल के ब्रजभाषी समय में मुगल साम्राज्य के अंतर्गत पंजाबी लहजे में कृष्णभक्ति की कविता कर रही थीं इसलिए उनके काव्य में ब्रज, पंजाबी और उर्दू का पुट आ जाना स्वाभाविक है; फिरभी उनका प्रयास कृष्णभक्ति के लिए उपयुक्त ब्रजभाषा में लिखना रहा था जिसपर पंजाबी प्रभाव स्वाभाविक रूप से आ गया है जो उनके आलोच्य छंद में सर्वाधिक दृष्टित होता है।
2. प्रस्तुत छंद में 'दिल की', 'भी', 'सारे', 'रहूँगी', 'ताणी' और 'हिन्दुआनी' जैसे शब्द अनुपयुक्त बन पड़े है। 'दिलजानी' के साथ 'दिलदी' शब्द आना चाहिए क्योंकि दोनो पंजाबी शब्द हैं। इसी प्रकार 'ताणी' पर अनुस्वार होना चाहिए ताकि पंजाबी लहजा आ सके। एक अन्य स्थान पर प्रयुक्त 'कुरबार' गलत है क्योंकि सही शब्द 'कुरबान' है जो उर्दू का पुट लिये हुए है। 'हिन्दुआनी' शब्द खड़ीबोली हिंदी का पुट देने के लिए आया है जबकि तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार सही शब्द 'हिन्दुवाणी' होना चाहिए।

पाठान्तर – 2

हौं तो तुरकानी हिन्दुआनी ह्वै रहुंगी मैं।। (हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ)

पाठान्तर – 3

सुनो दिलजानी मेडे दिल दी कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी ही सहूँगी मैं। (महिला मृदुबाणी)

1. पंजाबी में 'मेडे' जैसा कोई शब्द प्रयुक्त नहीं होता।

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला,

बड़ा चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।

माल गले सोहै, नाक मोती सेत सोहै कान,

कुण्डल मन मोहै लाल मुकुट सीस धारा है।

दुष्टजन मारे, संतजन रखवारे 'ताज',

चित्त हित वारे प्रेम प्रीतकर वारा है।

नन्द जू को प्यारा, जिन कंस को पछारा,

वह वुन्दावनवारा कृष्ण साहेब हमारा है।।[48]

<u>रानी ब्रजदासी बाँकावती</u>।

बार बार बंदन करौं, श्री वृषभांन कुवारि।

जय जय श्री गोपाल जी, कीजे कृपा मुरारि।।[49]

पाठान्तर – 4

देव पूजा ठानी मैं, निवाजहु भुलानी, तजे
कलमा कुरान साड़े, गुननि गहूँगी मैं।। (भारतीय नारी संत परंपरा)

1. 'निवाजहु' शब्द ब्रज बौर उर्दू का मिश्रण है जो लेखक की कल्पना की निर्मिति है।

पाठान्तर – 5

सुनो दिलजान! मेरे दिल की कहानी,
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिए,
तेरे नेह–दाघ में निदाघ हो रहूँगी मैं।।
नंद के कुमार! कुरबान तेरी सूरत पर,
हूँ तो तुरकानी हिंदुवानी हो रहूँगी मैं।। (हिंदी की कवयित्रियाँ)

1. 'स्यामला', 'नेह–दाघ', 'निदाघ' , 'रहूँगी', 'पर', जैसे शब्द अनुचित स्थान पर आए हैं; फिर उस समय हिंदी के इतने शुद्ध शब्द मुगलिया प्रभाव में प्रयुक्त होने असंभव से प्रतीत होते है। ब्रजभाषा में 'पर' के स्थान पर 'पै' शब्द का प्रचलन है इसलिए भी इन शब्दों की उपयुक्तता संदिग्ध प्रतीत होती है।

पाठान्तर – 6

नंद के कुमार कुरबान तोरी सूरत पै,
त्वाढ़ नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।। (मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)

1. 'तोरी', 'त्वाढ़' शब्द भी उपर्युक्त भांति ही हैं। पंजाबी में सही शब्द 'त्वाड्डे' है न कि 'त्वाढ़'; ये लेखिका के अतिरिक्त ब्रजप्रभाव से निर्मित प्रतीत होता है।

[48] पाठान्तर – 1

छैल जो छबीला सब रंग में रंगीला,
चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों में न्यारा है।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत जोहे,
कान कुंडल मन मोहै, लाल मुकुट सि धारा है।।
दुष्टजन मारे, संतजन रखवारे 'ताज',
चित हित वरे, प्रन–प्रीति करनवारा है।
नंद जू का प्यारा, जिन कंस को पछारा, (मुसलमानो की हिंदी सेवा)
वह बृंदावनवारा कृष्ण साहब हमारा है। (हिंदी की कवयित्रियाँ)

पाठान्तर – 2

चित्त का अड़ीला सब देवतों से न्यारा है। (महिला मृदुबाणी)

व्यास भागवत आरंभ मांही।

प्रभु कौ ध्यान हृदय सरसांही।।

ऐसो बचन कहत मुषआंनि।

प्रभु सौं परंम प्रेम उरठानि।।[50]

परम सति परमेस्वर स्वामी।

हम तिह ध्यांन धरत हिय ठानि।।

यहै त्रिबिधि झूठौ संसार।

भांति भांति बहु बिधि निर्धार।।[51]

सबहि बख्त कौ प्रभु ही ग्याता।

आप प्रकास रूप सुषदाता।।

हृदय बीचि बिधि कै जिन आय।

दीनै च्यारौ बेद पढ़ाय।।[52]

---

[49] पाठान्तर –
बार–बार वन्दन करौं, श्री वृषभान कुँवारि।
जय जय श्री गोपाल जू, कीजे कृष्णमुरारि।।

[50] पाठान्तर –
व्यास भागवत आरँभ माँही।
प्रभु को आन हृदय सरसाँही।।
ऐसो बचन कहत मुनि आन।
प्रभुसौं परम प्रेम उर ठान।। (महिला मृदुबाणी)

1. 'भागवत पुराण भाषा' में 'ष', 'ख' और कहीं कहीं 'ग, 'ठ' का पर्याय है। इसका संकेत हम ऊपर कर चुके हैं।
2. प्रस्तुत चौपाई में 'ध्यान' के स्थान पर 'आन', और 'मुष (मुख)' के स्थान पर 'मुनि' हो गया है जो अनुचित है।
3. 'आनि–ठानि' की जगह 'आन–ठान' आना अनुपयुक्त है। फिर इससे चौपाई की 16–16 मात्राओं के क्रम में भी बाधा उत्पन्न होती है।
4. 'स्त्री–कवि–कौमुदी' जैसी पुस्तकों में 'मुषआनि' के स्थान पर 'सुनिआन' हो गया है।
5. कई स्थानों पर 'अनुस्वार' की जगह 'अनुनासिकता' का आरोप है जो उच्चारण की लय को प्रभावित करता है।

[51] पाठान्तर –
परम प्रेम परमेश्वर स्वामी।
हम तिहि ध्यान धरत हिय ठानी।।
यहै त्रिविध झूठो संसार।
भाँति भाँति बहु बिधि निरधार।। (महिला मृदुबाणी)

1. मूल पाँडुलिपि में 'सति' शब्द है न कि 'प्रेम' शब्द है।

[52] पाठान्तर –
सबहि बस्तु को प्रभुही ग्याता।
आप प्रकास रूप सुखदाता।।
हृदै बीच विधि के जिन आय।

राग सोरठा

सूडो सूडो जी थारां लोयणां रो विलास

मनमांनी छांनी वातारौ जिण मै होय उजास

नीति नई रस रीति रंग भरी कर रही नेह प्रकास

यण बैभव पर प्रांण वारणौ कियौ उमंगि ब्रजदास।।[53]

दयाबाई।

'दया कुंवरि' या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।

जैसो बास सराँय को तैसो यह जग होय।।[54]

रसिकबिहारी बनीठनी जी।

कैसे जल लाउं मैं पनघट जाऊँ।

होरी खेलत नंद लाड़िलो री, क्योंकर निबहन पाऊँ।

वे तो निलज फाग मदमाते, हौं कुल–वधु कहाऊँ।

जो छुवै अंचर 'रसिक बिहारी' तो हूँ धरती फार समाऊँ।।[55]

दीनें चारूं वेद पढ़ाय।। (महिला मृदुबाणी)

1. मूल पाठ में 'बख्त' शब्द है न कि 'बस्तु'। बस्तु कहने से अर्थ में बहुत अन्तर उत्पन्न हो जाता है।
2. 'सुषदाता' और 'सुखदाता' शब्द में 'ष' और 'ख' का ही लिखित अंतर है जबकि उच्चारण एक समान है।

[53] यह ब्रजदासी कृत 'ख्याल संग्रह' का पद है। इसमें 'यण वैभव' का अर्थ 'धण वैभव' से लेना चाहिए।

[54] पाठान्तर – 1

'दया कुँवरि' या जक्त में, नहीं रह्यो फिर कोय।

जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय।। (हिंदी काव्य की कोकिलाएँ)

पाठान्तर – 2

जैसे बास सराय की, तैसो यह जग होय।। (हिंदी काव्य की कोकिलाएँ)

[55] पाठान्तर – 1

कैसे जल जाऊँ मैं पनघट जाऊँ।

होरी खेलत नंदलाडलो री क्यों कर निभन पाऊँ।

वे तो निलज फाग मदमाते हौं कलवधु कहाऊँ।

जो छुवे अंचर रसिकबिहारी तो हौं धरती फार समाऊँ।। (महिला मृदुबाणी)

पाठान्तर – 2

कैसे जल जाऊँ मैं पनघट आऊं।

होरी खेलत नन्द लाडलो री, क्यों कर निबह न पाऊँ।

ते तो निलज फाग मदमाते, हों कुल वधु कहाऊं।

जो छुअ अंग रसिक बिहारी, तो हूं धरती फार समाऊं।। (मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना)

पाठान्तर – 3

जो छुवे अंचर 'रसिक बिहारी' धरती फार समाऊँ।। (हिंदी काव्य की कोकिलाएँ)

आज बरसानैं मंगल माई।

कुँवरि लली को जनम भयो है, घर–घर बजत बधाई।

मोतिन चौक पुरावो, देहु असीस सुहाई।

'रसिकबिहारी' की यह जीवनि, प्रगट भई सुखदाई।।[56]

कुंज पधारो रंग–भरी रैंन।

रंग भरी दुलहिन, रंग भरे पिय स्याम–सुन्दर सुखदैन।

रंग भरी सैंनीय रची, जहाँ रंग भरयो उलहट मैंन।

'रसिक बिहारी' प्यारी मिलि दोउ, करो रंग सुख सैंन।।[57]

<u>सुंदरिकुँवरिबाई</u>।

मेरी प्राण सजीवन राधा।

कब तो बदन सुधाधर दरसै मो अखियन हरे बाधा।।

ठमकि ठमकि लरिकौंही चालत आव सामुहे मेरे।

---

[56] पाठान्तर – 1
आज बरसाने मंगल माई।
कुँवर लली को जनम भयो है। घर घर बजत बधाई।
मोतिन चौक पुरावो गावो। देहु असीस सुहाई।
'रसिक बिहारी' की यह जीवनि, प्रगट भई सुखदाई।। (महिला मृदुबाणी)
1. यहाँ मुँशी जी ने 'राग गौरी' की लय बनाए रखने के लिए 'गावो' शब्द को जोड़ दिया है जो अनुचित है।

पाठान्तर – 2
आज बरसाने मंगल माई।
कुँवर लली को जनम भयो है घर घर बजत बधाई।।
मोतिन चौक पुरावो जावो, देहु असीस सुहाई
रसिक बिहारी की यह जीवनि प्रकट भई सुखदाई।। (स्त्री–कवि–संग्रह)
1. यहाँ ज्योति प्रसाद जी ने तृतीय पंक्ति में 'जावो' शब्द अतिरिक्त रूप से जोड़ दिया है।

पाठान्तर – 3
आज बरसाने मंगल गाई
कुँवर लली को जनम भयो है। घर घर बजत बधाई।
मोतिन चौक पुरावो गावो देहु असीस सुहाई।
रसिक बिहारी की यह जीवनि, प्रकट भई सुखदाई।।
1. यहाँ प्रथम पंक्ति में 'माई' के स्थान पर 'गाई' शब्द का प्रयोग किया गया है।

[57] पाठान्तर – 1
कुंज पधारो रंग–भरी रैंन।
रँग भरी दुलहिन, रंग भरे पीया स्यामसुँदर सुख दैन।।
रँग भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रँग भर्यो उलहट मैन।
'रसिकबिहारी' प्यारी मिलि दोउ करौ रंग सुख–दैन।। (महिला मृदुबाणी और स्त्री–कवि–कौमुदी)
1. इसी प्रकार का एक पाठ 'हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ' पुस्तक में किया गया है जहाँ कुछेक अंतर के साथ 'स्याम' को 'श्याम' और 'उलहट' को 'उलहत' कर दिया गया है।

रस के बचन पियूष पोष के कर गहि बैठहु मेरे।।

रहसि रंग की भरी उमंगनि ले चल संग लगाए।

निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख–दरसाय।।[58]

तजौ चोरी की घात अयान की।

नन्दराय के लला लडौहे सुनलो बात सयान की।।

कीरति पठई दुलहा देखन तिय आई बरसान की।

सुन्दरकुँवरि सुलच्छन गुननिधि ब्याहोगे वृषभान की।।

आई है ते जाय कहेगी बात रावरे बान की।

सास कहेगी चोर कुँवर को जैहै वह प्रिय प्रान की।।

इक तो कारो चोर भयो फिर दइया छाप लजान की।

सुनि हँसिहैं चन्दाननि दुलहो जिहँ उपमा न समान की।।[59]

---

[58] पाठान्तर –
मेरो प्रान–सजीवन राधा।
कब तो बदन सुधाधर दरसै यों अँखियन हरै बाधा।।
ठमकि ठमकि लरिकौंही चालन आव सामुहे मेरे।
रस के वचन पियूष पोष के कर गहि बैठहु मेरे।।
रहसि रंग की भरी उमंगति ले चल संग लगाय।
निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख–दरसाय।। (हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ)
1. कई स्थानों पर 'मो अखियन' के स्थान पर 'यों अखियन' हो गया है जिससे अर्थ परिवर्तित हो गया है।

[59] पाठान्तर – 1
तजो चोरी की घात अयान की।।
नंदराय के लला लड़ोहै अब सुनो बात सयान की।
कीरत पठई दुलहा देखन तिय आंई बरसान की।।
सुंदर कुँवरि सुलच्छन गुननिधि व्याहोगे वृषभानु की।।
आई है ते जाय कहेगी बात रावरे बान की।।
सास कहेगी चोर कुँवर को ना द्योँ सुता प्रिय प्रान की।।
इक तो कारो चोर भयो फिर दइया छाप लजान की।।
सुनि हँसिहँ चंदाननि दुलही जिहँ उपमा न समान की।। (महिला मृदुबाणी)
1. द्वितीय पंक्ति में 'अब' शब्द अतिरिक्त है जिससे पद की लय टूट रही है।
2. छठी पंक्ति में 'जैहै वह प्रिय प्रान की' के स्थान पर 'द्योँ सुता प्रिय प्रान की' आने से अर्थ भंग होता है।

पाठान्तर – 2
तज चोरी की घात अयान की।
नंदराय के लला लडैते सुन लो बात सयान की।।
कीरति पठई दुलहा देखन तिय आई बरसान की।।
सुन्दर कुँवरि सुलच्छन गुन निधि ब्याहोगे वृषभान की।।
आई है तो जाय कहेंगी बात रावरे बान की।
सास कहैगी चोर कुँवर को जैहे वह प्रिय प्रान की।।
इक तो कारो चोर भयो फिर दूइया बात लजान की।
सुणि हँसि हैं चंदाननि दुलही जिहि उपमा न समान की।। (मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)

कुंवर सकुचि मुसिक्याय़ दृगन ढारत सतिरौं हीं।

मुकर ओट पट लाय कहत झूठहिं कहायौं हीं।

जुरैं घुरैं दृग ढुरैं कुंवर अरसौंही जागै।

लषि लषियि पिय हिय हाल हाल धीरज भागै।।[60]

<u>प्रतापकुँवरिबाई</u>।

होरी खेलन की रूत भारी।

नर तन पाय भजन कर हरि को मास एक दिन चारि।।

अरे अब चेत अनारी।

ज्ञान गुलाल अबीर प्रेम करि प्रीत तणी पिचकारी।।

सास उसास राम रंग भर भर सुरत सरीरी नारी।।

खेल इन संग रचा री।

सुलटो खेल सकल जग खेले उलटो खेले खिलारी।।

सतगुरू सीख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी।।

भरम सब दूर गुमारी।[61]

---

[60] पाठान्तर –
सुंदरिकुँवरिकृत 'नेहनिधि' का छंद है। पाँडुलिपि में 'मुसिक्याय़' इसी प्रकार लिखा है। 'लषि लषि' से वर्तमान 'लखि लखि' का अर्थ लेना चाहिए।

[61] पाठान्तर – 1
होरी खेलन की सत भारी।
नर–तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी।
अरे अब चेत अनारी।
ज्ञान–गुलाल अबीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी।
लाल उसास राम रँग भर–भर, सुरत सरीरी नारी।
खेल इन संग रचा री।
उलटो खेल सकल जग खेलै, उलटो खेलै खिलारी।
सत गुर सीख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी।
भरम सब दूर गुमारी। (हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ)
1. 'सत', द्वितीय पंक्ति का 'अरे', और 'लास' शब्द अर्थ भिन्नता उत्पन्न कर रहे हैं।

पाठान्तर – 2
होरी खेलन की रितु भारी।
नर तन पाय भजन करि हरि को है औसर दिन चारी।
अरे अब चेतु अनारी।
ज्ञान गुलाल अबीर प्रेम करि प्रीत तणी पिचकारी।
सास–उसास राम रँग भरि–भरि सुरति सरी–सी नारी।
खेल इन संग लचारी।।
सुलटो खेल सकल जग खेलै उलटो खेल खेलारी।
सतगुरू सीख धारू सिर ऊपर सत संगति चलि जा री। (हिंदी की कवयित्रियाँ)
1. 'औसर' शब्द पद में नहीं है यह लेखक की स्वयं की निर्मिति है।

उपरोक्त पाठालोचन के पश्चात् यह बात और पुष्ट हो जाती है कि भिन्न–भिन्न कविवृत्त संग्रहों के लेखकों ने पाँडुलिपियों के रूप में स्थित साहित्य की शब्द संरचना अपने–अपने ढंग से की है। संभव है कि पांडुलिपियों की लिखावट को पूर्ण रूप से न पढ़ पाने के कारण ऐसा हुआ हो; परंतु पांडुलिपियों की खोज से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कई पाठ 'मूलपाठ' से बहुत भिन्न हैं। इससे पांडुलिपियों की खोज और उसे सही प्रकार से पढ़ लेने की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है।

2. 'औसर' शब्द से अर्थ भिन्नता उत्पन्न होती है।
3. 'धार' ब्रजभाषा का शब्द है जिसका अर्थ है धारण करना जबकि 'धारू' खड़ी बोली हिंदी के अधिक निकट है जो यहाँ अनुचित बन पड़ा है।

अध्याय # 3

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन

जीवन व साहित्य

(क) जीवन में साहित्य

(ख) साहित्य में जीवन

(क)

जीवन में साहित्य

जीवन में साहित्य

कोई भी जीव–निर्जीव अपने देश और काल से नहीं भाग सकता। यदि उसे काल कवलित करने का प्रयास भी किया जाता है तो समय का बहाव फिर से उसे उसी चौकठे पर लाकर खड़ा कर देता है जहाँ से उसे बेदखल करने का प्रयास किया गया था। हिंदी साहित्य की लेखिकाओं के साथ भी ऐसा ही हुआ है। संपूर्ण हिंदी साहित्य का आदिकाल और मध्यकाल पुरूष कवियों का ही होकर रह गया है। मध्यकाल तो मीराँबाई से आगे बढ़ ही नहीं सका है। ऐसा नहीं है कि बीच–बीच में साहित्य की खदानों को खोदने का प्रयास नहीं किया गया। अवश्य किया गया, लेकिन बार–बार मीराँबाई ही उनके हाथ लगी। उल्लेखनीय है कि कभी–कभी साहित्यकार काल को अपने वश में कर लेता है अन्यथा वह तो सदा ही काल के वश में रहता ही है; परंतु मीराँबाई को लेखकों व आलोचकों दोनों ने मिलकर इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया कि अन्य स्त्री रचनाकारों की घोर उपेक्षा हो गई। परिणाम यह कि काल की चौखट पर दस्तक देती हुईं पार्वतीबाई, मुक्ताबाई, ताज़, खगनियाँ, शेख़ रंगरेजिन जैसी लेखिकाएँ घुप अँधेरे में खो गईं।

कई विद्वानों का कथन है कि यदि मीराँबाई की भांति अन्य स्त्री रचनाकारों के पद्य या गद्य में कुछ महत्त्वपूर्ण होता तो अवश्य ही उन्हें हिंदी साहित्य की बिरादरी द्वारा अपनाया जाता! लेकिन इस पर एक सामान्य सा यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी रचनाकार की रचना का अध्ययन करने से पूर्व हम इस प्रकार का निर्णय दे सकते हैं ? यदि नहीं तो सर्वप्रथम हमें शेष लेखिकाओं के लेखन का अध्ययन–विश्लेषण कर लेना चाहिए तत्पश्चात् स्थितिजन्य और साहित्य सापेक्ष कोई निष्कर्ष देना चाहिए; अन्यथा आलोचकीय दृष्टि पर ही कई प्रश्नचिह्न लग जाएँगे। फिर आलोचना का प्रथम गुण ही है कि आलोचक को पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिए।

जहाँ तक इन कवयित्रियों के लेखन का प्रश्न है तो यह बतलाना आवश्यक है कि हिंदी साहित्य में लगभग नब्बे से अधिक लेखिकाएँ हुई हैं; लेकिन कईयों के जन्म–मृत्यु तथा लेखनी के ज्ञान के अभाव में उन्हें शामिल नहीं किया जा सका है। हमारे समक्ष यह सर्वप्रथम चुनौती थी कि हमें उनका प्रमाणिक जीवन परिचय, उनके द्वारा लिखित रचनाओं का परिचय, उनकी रचना के विषय एवं उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त उनके 'स्व' का पूर्णरूप से ज्ञान हो। इसी को आधार बनाकर हमने इस अध्याय की सर्जना की है और प्रयास किया है कि सावित्री सिन्हा तथा सुमन राजे की तरह असमंजस न उत्पन्न हो, अन्यथा सूर्य की भांति उभरता हुआ लेखिकाओं का जीवन चरित्र फिर से घुप्प अँधेरे में लुप्त हो जाएगा। इसलिए लेखिकाओं का जीवन परिचय व उनकी रचनाओं का विवरण लिखते समय बहुत सावधानी से काम लिया गया है। ध्यातव्य है कि इस पूरे अध्याय में लेखिकाओं को उनके कालक्रमानुसार रखा गया है। जहाँ किसी कवयित्री का जन्मकाल नहीं मिल सका है वहाँ उसके रचनाकाल से उसके जन्म का अनुमान किया गया है। इसके साथ ही तत्कालीन समय में शासन करने वाले राजा–महाराजाओं एवं समकालीन कवि–कवयित्रियों के आधार पर

समय निर्धारण करने में सहायता मिली है। ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक के बड़े कालखंड में संत भक्त, कृष्ण भक्त, राम भक्त और पतिभक्त, इत्यादि प्रकार की कवयित्रियाँ हुई हैं। इसका प्रारम्भ उमांबा या उमा बाई से किया गया है जो महाराष्ट्र की एक विदुषी थीं और हिंदी में भी लेखन किया करती थीं। लेखिकाओं का जीवन परिचय, रचनाओं का विवरण एवं उनके साहित्य में अभिव्यक्त उनके 'वैयक्तिक' का विवरण निम्नलिखित है–

उमा या उमांबा : उमा के जन्म या रचनाकाल के संबंध में कोई निश्चित तथ्य प्रस्तुत करना अभी असंभव है। 'भालेराव जी के अनुसार ये चक्रधर स्वामी (ईस्वी सन् 1272) के समकालीन और चक्रधर शिष्य नागदेवाचार्य की भगिनी थीं।'[1] इससे इनका रचनाकाल भी इसी के आस–पास समझना चाहिए और इनका जन्म इससे बीस तीस वर्ष पूर्व समझना चाहिए। ये महाराष्ट्र की रहने वाली थीं। इन्होंने कई स्फुट छंदों की रचना की है। कोई संपूर्ण ग्रंथ इनका प्राप्त नहीं होता। उमा के जितने पद हमें प्राप्त होते हैं उनसे इनके संत भक्त होने की संभावना को बल मिलता है।

पार्वती या पार्वती बाई : **'सेवादास की वाणी'** नामक अनेक संतों की वाणियों के संग्रह में कुछ पद 'पार्वती जी की शब्दी' के नाम से भी संकलित हैं। उनके जीवन तथा समय के विषय में कुछ भी निश्चित कह पाना अभी कठिन है। प्राप्त साक्ष्यों से केवल यह ज्ञात होता है कि वे किसी निस्पृह और काम को दग्ध कर देने वाली गुरू की शिष्या थीं।[2] उनका यह दोहा भी इसी ओर संकेत करता है –

निसप्रेही निहस्वादी कामदग्धी दिने दिने,
तासु शिष्या देवी पार्वती।

'अर्थात् ऐसा गुरू जो निस्पृह है, जिसने कामवासना को तप की अग्नि में जलाकर राख कर दिया है, मैं पार्वती ऐसे गुरू की शिष्या हूँ।' डॉ. सावित्री सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' में पार्वती बाई को अपने एक लेख 'मध्यकालीन साहित्य को स्त्रियों की देन' नामक शीर्षक में कालानुसार द्वितीय स्थान पर रखा है। इसलिए नवीन खोजों के होने तक हमने भी पार्वती बाई का क्रम नहीं बदला।

मुक्ताबाई :महाराष्ट्र की संत परंपरा में 'नाम चतुष्टय' के रूप में विख्यात 'निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई अपनी विशिष्ट उपस्थिति रखते हैं। महाराष्ट्र में बड़े आदर सम्मान के साथ चारों को स्मरण किया जाता है। एक ही परिवार के चारों सदस्य, चारों ही उच्चकोटि के संत। इनके पिताश्री ने लगता है किसी दैवी अनुभूति या प्रेरणा से इनके आध्यात्मिक–प्रतीकात्मक नामकरण किये थे। सांसारिकता से 'निवृत्ति' से लेकर 'ज्ञान' के 'सोपान' चढ़ते हुए 'मुक्त' होने तक की प्रतीकात्मक यात्रा।[3] ऐसे समय में जब हिंदी में किसी कवयित्री की स्वर ध्वनि दूर–दूर तक सुनाई नहीं पड़ रही थी तब मुक्ताबाई ने ही उसे अपनी काव्य गरिमा से सुशोभित किया। आपको हिंदी के साथ–साथ मराठी भाषा की भी आदि कवयित्री माना जाता है। 'आपका जन्म ईस्वी सन् 1245 के लगभग महाराष्ट्र में हुआ। आप अपने चारो बंधुओं में सबसे छोटी थीं।

[1] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 81
[2] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 49
[3] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 55

हिंदी का सौभाग्य है कि मुक्ताबाई सदृश महाराष्ट्रीय विदुषी ने इसे अपनी कृति से अलंकृत किया है।[4] आपका रचनाकाल ईस्वी सन् 1288 के लगभग अनुमान किया जाता है। उस समय आप अपनी रचना प्रक्रिया के चरम पर थीं। आप 'एक उत्कृष्ट हठयोगिनी थीं।[5] आपने कई **अभंग पदों**, **उलटबासियों** और **ग्राम गीतों** की रचना की है। 'कहते हैं शक संवत् 1219 वैशाख 12 (ईस्वी सन् 1297) के दिन जब मुक्ताबाई भौतिक देह से मुक्त हो रही थीं, तब प्राकृतिक वातावरण भी बहुत विक्षुब्ध था। आकाश में भयंकर मेघ गर्जन, बिजली का प्रताड़ित आघात, जनमानस की विक्षुब्ध आहत मानसिकता को प्रतिबिम्बित कर रहा था।'[6]

मीराँबाई : गहरी छानबीन एवं तथ्यों की सूक्ष्मतम पड़ताल के द्वारा कई देशी–विदेशी विद्वानों ने मीरा के जीवन संबंधी ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर किया है। इन भिन्न–भिन्न मत मतांतरों के मध्य मीरा का जन्म ईस्वी सन् 1498 (वि. सं. 1555 वैशाख सुदि 3) को हुआ।[7] आपका जन्म स्थान मेड़ता का कुड़की नामक गाँव माना गया है। आप मेड़तिया राठौड़ रतनसिंह जी की पुत्री, मेड़ते के राव दूदा जी की पौत्री तथा जोधपुर को बसाने वाले राव जोधा जी की प्रपौत्री थीं।[8] मीराँ की माता का देहांत तब हो गया था जब वह केवल दो वर्ष की बालिका थी। मीराँ की माता के देहांत के उपरांत मीराँ के दादा राव दूदा उसे मेड़ता में अपने पास ले आए और उसका पालन–पोषण इन्हीं की देख–रेख में होने लगा। उसके दादा राव दूदा बड़े धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। वह भगवान चतुर्भुज के उपासक थे। उन्होंने चतुर्भुज भगवान का मंदिर भी बनवाया था। अतः स्वाभाविक ही परिवार का झुकाव धर्म–भावना की ओर था। फिर उनके घर साधु संतो का आना लगा रहता। कहते हैं, एक बार एक साधु उनके घर आया। उनके पास गोपाल कृष्ण की एक अति सुन्दर, आकर्षक मूर्ति देख मीराँ उसे लेने के लिए मचल उठी। साधु सहज ही उस मूर्ति को देना नहीं चाहता था। इधर मीराँ की हठ कि वह खाना पीना ही छोड़ बैठी। साधु वहाँ से चला तो गया; किंतु मीरा की बाल–हठ देख पुनः लौटकर आना पड़ा। उसने वह मूर्ति मीरा को दे दी। यही कृष्ण प्रेम का बीज बाद में पल्लवित–पुष्पित हुआ और मीराँ, मीराँ कहलाई।[9] बाल्यकाल में मीरा की शिक्षा–दीक्षा का उचित प्रबंध किया गया था। इनके पठन–पाठन हेतु गुर्जर गौड़ गजाधर नियुक्त हुए थे। इनका विवाह ईस्वी सन् 1516 में उदयपुर एवं चित्तौड़ के महाराज कुमार भोजराज के साथ हुआ था।[10] किंतु विवाह के चार पाँच वर्ष में ही वे विधवा हो गईं। शैशव में माता एवं कैशोर्य में पति के निधन ने उनके सहज और संस्कारगत प्रेम को अत्यधिक स्फीत कर दिया। 1527 ई. में खानवा (कानवा) के युद्ध में इनके विख्यात श्वसुर साँगा, बाबर से

[4] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 81
[5] रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 01
[6] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 56
[7] कल्याण सिंह शेखावत, मीराँ ग्रंथावली भाग–1, पृष्ठ संख्या, 15–16
[8] मुंशी देवीप्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 59
[9] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 69
[10] किशोरीलाल गुप्त, सरोज सर्वेक्षण,पृष्ठ संख्या, 589

हारे। इस युद्ध में मीरा के पिता रतनसिंह जी भी शहीद हुए। 1528 ईस्वी में साँगा का देहांत हो गया। साँगा के बाद उनके द्वितीय पुत्र रत्नसिंह महाराणा हुए जो शीघ्र ही बूँदीवालों से हुए एक संघर्ष में मारे गए। तब 'बूँदी के भाणेज' बीस वर्षीय उदंड विक्रमादित्य राणा बने, जिनके अत्याचारों ने मीरा के प्रशांत व्यक्तित्व को संघर्ष की ज्वाला से जाज्वल्यमान कर दिया। 'राणा के विरोध के बावजूद वे पदरचना–पदगान, साधु–सत्संग, नृत्य, कीर्तनादि में लीन रहीं तथा उनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई जिसने क्षूद्र विक्रमादित्य में हीनभाववृद्धि ही की। उसने मीराँ को अनेक कष्ट दिए, जिन्हें सुनकर वीरमदेव ने मीरा को मेड़ता बुला लिया जहाँ के विख्यात चारभुजा मंदिर में उनके दर्शन और सत्संग के लिए आने वालों की भारी भीड़ लगी रहती; किंतु 1538 ई॰ में वीरमदेव के हाथों से मेड़ता का निकल जाना मीराँ के वैराग्य में सहायक सिद्ध हुआ तथा वे मथुरा, वृंदावन इत्यादि की तीर्थयात्रा पर निकल पड़ी।[11] यहाँ जीवगोस्वामी से मिलकर मीराँ मंडली नृत्य कीर्तन करती हुई द्वारिका पुरी के लिए निकली। 'द्वारिका में भी मीराँ की ख्याति व्याप्त हो गई। इधर मेवाड़ में विक्रमादित्य, वनवीर इत्यादि खलनायकों का समय बीत चुकने पर साँगा के जीवित बचे कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह महाराणा बने। उन्होंने कुछ पंडितों को मीराँ को द्वारिका से मेवाड़ लिवा लाने के लिए भेजा।[12] किंतु वे मीराँ को लौटा लाने में असफल रहे। मीराँबाईके जीवन में आश्रय–निराश्रय का यह दौर धूप–छाँव की भाँति जीवन भर चलता रहा। वे मेवाड़ से निकलकर पूरे भारत की भक्त हो गईं, किंतु पारिवारिक तौर पर कहीं की नहीं रहीं। किसी मनुष्य या पुरूष से उसका घर छिन जाए तो वह बदहवास होकर इधर–उधर पैर पटकता है, हाथ पैर चलाता है, किंतु किसी स्त्री के पास उसका घर न हो तो उसकी पीड़ा का अनुमान लगाते ही सिहरन होने लगती है। परिणामस्वरूप अपने दाम्पत्य सुख के इस गहरे अभाव को उन्होंने प्रियतम कृष्ण की निरंतर उपस्थिति से भरने का प्रयास किया। मीराँ की यही पीड़ा उनके काव्य में भक्ति के रूप में प्रकट हुई। उन्होंने 'गीत गोविंद की टीका', 'नरसी जी का मायरा अथवा माहेरो', 'राग सोरठ का पद संग्रह अथवा राग सोरठ का पद', 'मलार राग', 'राग गोविंद अथवा राम गोविंद', 'सतभामानुं रूसण', 'मीराँ नी गरबी', 'रूक्मणी मंगल', 'नरसी मेहता की हुंडी', 'चरित (चरित्र)', जैसे कई पद संग्रहों, गीत संग्रहों तथा काव्य संग्रहों की रचना की। मीराँ के अधिकतम पद गेय हैं 'जिसमें झिंझौरी, रामकली, कान्हरा, सारंग, कामोद, टोड़ी, हमीर, विहाग, जैजैवंती, भैरवी, पहाड़ी, सूहा, काफी, तिलक, प्रभाती, सोरठ, सोहनी, देस, मांड, त्रिबेनी, कल्याण, नीलांबरी, पीलू, आनंद भैरो, बिलावल, आसावरी, दरबारी, मल्हार, मारू, कालिंगड़ा, छायानट, तिलक, पूरबी, जौनपूरी, मालकोस, धानी, गूजरी, कजरी, प्रभावती, खम्माच, ललित, सिंध भैरवी, धनाश्री, होली इत्यादि रागों का महान वैभव दृष्टिगत होता है।[13] मीराँ के जन्म की भांति उनके देहावसान से संबद्ध अनेक मत मतांतर एवं भिन्न–भिन्न जनश्रुतियाँ लोक में प्रचलित हैं। मुंशी देवी प्रसाद ने

[11] राम प्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 13
[12] वही, पृष्ठ. संख्या, 13–14
[13] राम प्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 19–20

लणुवे ग्राम के भाट भूरदान के हवाले से मीरा का निधन विक्रम संवत 1603 (ईस्वी सन 1546) स्वीकारा है।[14] डॉ. कल्याण सिंह शेखावत राठौड़ों की मेडतिया शाखा के कुल गुरूओं की ख्यात के अनुसार माघ शुक्ल पंचमी विक्रम संवत् 1604 (ईस्वी सन् 1547) में मीराँ का देहांत मानते हैं। कुल मिलाकर इसी के आस–पास लगभग 60 वर्ष की आयु में मीरा का देहावसान मानना चाहिए।

झीमा चारिणी : झीमा चारिणी बीकानेर राज्य के बीठू चारण की बहन थीं, इनका समय विक्रम की पंद्रहवी शताब्दी से ईस्वी सन् 1503 (वि. सं. 1560) के लगभग अनुमान किया जाता है। उस समय खीची वंश का राजा अचलदास कोटा पर राज कर रहा था। झीमा चारिणी जीविका के लिए वहाँ पहुँची।[15] अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और मुखर स्वभाव से उसने राजा को प्रभावित किया और पुरस्कार स्वरूप अपनी सहेली उमादे का विवाह अचलदास से करा दिया। विवाह हो जाने पर झीमा भी उमादे के साथ कोटा आ गई। झीमा चारिणी ने कुछ फुटकल पदों की रचना की है। उनका कोई काव्य या गद्य संग्रह हमें प्राप्त नहीं हुआ है। उनके फुटकल गीत जो हमें प्राप्त हुए हैं उनमें श्रृंगार का तत्व प्रधान है न कि उस काल की प्रतिध्वनि उनमें समाहित है।

ताज या ताज बीबी : वह एक विशेष प्रकार का युग था। 'नंदलाल की बाँसुरी ने भारत के कोने–कोने में अपना माधुर्य बिखेर दिया था। नंदलाल की बाँसुरी बज कर बंद हो चुकी थी; किंतु उसकी झंकार अब भी लोगों के कानों में हो रही थी और चिरंकाल तक होती रहेगी। साधारण मनुष्य उसे केवल एक बाँस की बाँसुरी की झंकार समझते हैं, किंतु जिनके हृदय में आँखें होती हैं और जो दार्शनिक ज्ञान के श्रवण से उस झंकार को सुनते हैं, उन्हें उसमें एक दूसरा ही रस मिलता है। वह रस मिलता है जो संसार के बाहर की वस्तु है, और दुर्लभ है, जो अमूल्य है। महात्मा सूरदास नंदलाल की बाँसुरी के इसी रस पर रीझे थे। मीराँ इसी के लिए मतवाली हुई थीं, और रसखान ने इसी के ऊपर अपने को निछावर कर दिया था। ताज भी उसी पर लुटी हुई दिखाई देती हैं।[16] इसलिए 'ताज मध्यकालीन कृष्णभक्त कवयित्रियों में महत्त्वपूर्ण स्थान की वाहक हैं। कृष्णभक्ति और ब्रजप्रेम में निमग्न होकर ताज ने तमाम सामाजिक–धार्मिक वर्जनाओं से परे असंख्य पदों की रचना की है। इन पदों के अवलोकन से ताज की दृढ़ निष्ठा एवं साहित्यिक उत्कृष्टता स्पष्ट हो जाती है।[17]

---

[14] मुंशी देवीप्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 59
[15] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 28
[16] व्यथित हृदय, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, पृष्ठ संख्या, 29
[17] किशोरी लाल गुप्त (सं.), शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर, पृष्ठ संख्या, 220

ताज के जन्म काल के विषय में अनेक मतभेद हैं फिर भी विद्वानों का एक बड़ा तबका ताज़ का जन्म ईस्वी सन् 1695 मानने के पक्ष में है। ताज धार्मिक तौर पर एक मुसलमान स्त्री थीं और पंजाब की रहने वाली थीं। ये अकबर बादशाह की प्रिय बेगमों में से एक थीं इसलिए इन्हें ताज बेगम के नाम से भी जाना जाता है। संस्कृति के आदान प्रदान के इस काल में में इन्हें अन्य कविवरों व कवयित्रियों की भाँति ताज ने मुसलमान होते हुए भी कृष्णभक्ति को ही अपने जीवन का मूलाधार बनाया।

'ताज़ कृत कई ग्रंथो का उल्लेख भी यत्र–तत्र मिलता है। सिहोर निवासी गोंविंद गिल्लाभाई को प्राप्त हुई एक पुस्तक के आधार पर उन्होंने ताज के द्वारा निम्नलिखित विषयों पर काव्य रचना किए जाने की पुष्टि की है, जैसे–(क) गणेश स्तुति (ख) सरस्वती समाराधन (ग) भवानी वंदना (घ) हरदेव जी की प्रार्थना (ड़) दशावतार वर्णन (च) मुरलीधर के कवित्त (छ) निरोष्ठ कवित्त (ज) होरी काग (झ) बारहमासा छप्पयों में (ट) बारहमासा कवित्तों में (ठ) बारहमासा कुंडलियों में (ड) भक्ति पक्ष के कवित्त (ढ) फुटकर आदि।[18] इन सब ग्रंथों की भाषा मूलतः ब्रज है। कृष्ण भक्ति के इस सागर में डूबकर ताज सदा के लिए उतरा गईं। उनका नाम मीरा की भांति कृष्ण के साथ सदा के लिए जुड़ गया जिसकी इतिहासकारों ने सदा अनदेखी की है।

पद्मा चारिणी : पद्मा चारिणी का जन्म माला जी साहू के घर अनुमानतः 1597 ईस्वी से पूर्व हुआ था। 'ये बारहट शंकर की पत्नी थीं और बीकानेर राज्य के अंतःपुर में जीविका निर्वाह के लिए रहती थीं।[19] ऐसा प्रतीत होता है कि इनका कार्य अंतःपुर की रानियों का मनोविनोद करना और वहाँ चलती हुई प्रतियोगिताओं पर पद या कविता बनाना था। इनकी भाषा डिंगल थी। केवल कुछ पदों के अतिरिक्त इनका भी कोई काव्य या गद्य संग्रह प्राप्त नहीं होता।

चंपादे रानी : रानी चंपादे जैसलमेर के राव लहरराज जी की बेटी और बीकानेर के राजा राजसिंह जी के भाई पृथ्वीराज जी की रानी थीं। इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1593 के लगभग अनुमान किया जाता है। रानी चंपादे ने कई दोहों की रचना की है लेकिन कोई काव्य–संग्रह प्राप्त नहीं होता। इनके दोहों की भाषा डिंगल है जिसमें कुछ–कुछ ब्रज भाषा के शब्द भी मिश्रित हैं।[20]

[18] किशोरी लालगुप्त, सरोज सर्वेक्षण, पृष्ठ संख्या, 335
[19] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 31
[20] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पुष्ठ संख्या, 16

रानी राड़ धडी जी : 'राड़ जी रानी मारवाड़ के अंतर्गत राड़धड़ा प्रांत के राणा की पुत्री थीं और सिरोही के राव जी को ब्याही गईं थीं। दोनों राजा और रानी लिखे पढ़े थे और कभी–कभी कविता करके भी अपना जी बहलाया करते थे।[21] किंतु रानी जी का कविता प्रेम इतना नहीं था कि वह किसी काव्य–संग्रह में परिणत हो जाए। इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1593 अनुमान किया जाता है। इनकी कविता मुक्तक काव्य (दोहा) में लिखी गई है जो राजस्थानी के अधिक समीप है।

गंगाबाई : गंगाबाई मध्यकालीन कृष्ण काव्यधारा की एक प्रमुख कवयित्री हैं। पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह तय होता है कि गंगाबाई आचार्य वल्लभ के सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ की शिष्या थीं। प्रभुदयाल मीतल के अनुसार गंगाबाई श्रीनाथजी जी की सेविका और वल्लभाचार्य की शिष्या थीं।[22] किंतु 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है कि वे आचार्य वल्लभ की नहीं, गोस्वामी विट्ठलनाथ की शिष्या थीं। इस वार्ता में इन्हें क्षत्रिय कुल उत्पन्न महावन निवासिनी माना गया है। डॉ. हरिहर नाथ टण्डन के अनुसार इनका जन्म ईस्वी सन् 1571 में तय होता है और गोस्वामी हरिराय जी की 'श्री गोवर्द्धननाथजी के प्राकट्य की वार्ता' के आधार पर ज्ञात होता है कि ये सन् 1671 तक विद्यमान थीं। अतः इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1571–1671 के मध्य ही स्वीकार करना चाहिए।

वार्ता ग्रंथ से यह भी स्पष्ट होता है कि गंगाबाई काव्य रचना भी किया करती थीं। 'उनके स्वर कृष्ण काव्यधारा में मिले हुए उस निर्झरिणी के एकान्त प्रवाह के सदृश हैं, जिसके सौंदर्य तथा संगीत का महत्व, प्रमुख धारा में लय होने वाले बृहत्तर प्रवाहों की गरिमा के समक्ष उपेक्षित रह जाता है।.....विट्ठलनाथ जी के अन्य शिष्य जहाँ अष्ट्छाप में कृष्ण के सखाओं के प्रतीक बनकर वैष्णव जगत के माध्यम से हिंदी में अमर हो गये, वहीं गंगाबाई के सरस पदों की प्रतिध्वनि एक सीमा में ही गूंजकर विलीन हो गई।[23] गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने गंगाबाई की रचनाधर्मिता के विषय में स्पष्ट किया है कि, ''सो रात्रि कों श्री गंसाईंजी याकों श्री सुबोधिनीजी श्रीभागवत कहते। सो वह सुनती। सो सुनि कै श्री गुसांईजी गंगाबाई की ऊपर बोहोत ही प्रसन्न रहतें।...और गंगाबाई ने 'श्री विट्ठल गिरिधन' की छाप के कीर्तन छंद बोहोत ही किये हैं।[24] 'श्री विट्ठल गिरिधन' की छापवाले गंगाबाई कृत अनेकानेक स्फुट पद 'बधाई पद संग्रह', 'बधाई गीत सागर', 'उत्सवन के पद', 'पुष्टिमार्गीय कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनमणिरत्नमाला' आदि में संकलित हैं। साथ ही इनका देहावसान सिहाड़ में विक्रम संवत् 1728 (सन् 1671) में बताया जाता है।

---

[21] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पुष्ठ संख्या, 78–79
[22] प्रभुदयाल मीतल, ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास, पृष्ठ संख्या, 253
[23] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 158
[24] गोस्वामी गोकुलनाथ, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ संख्या, 438

प्रवीणराय पातुर : प्रवीणराय एक विदुषी वैश्या थीं। यह ओरछा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह जी के यहाँ रहती थी। इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1593 (विक्रम संवत् 1650) अनुमान किया जाता है। इनमें 'काव्य रचने की क्षमता भी थी तथा संगीत विद्या में भी यह बहुत प्रवीण थीं। महाराजा इंद्रजीत सिंह जी के संगीत मंडल की यह प्रधान थीं। उनके संगीत, नृत्य तथा काव्य क्षेत्र में दक्षता के कारण उनकी प्रसिद्धि की सीमा अनुदित बढ़ रही थी।[25] वैसे तो राजा इंद्रजीत सिंह जी के यहाँ नवरंगराय, विचित्रनयना, रंगराय, तीन तरंग और ललितलोचना नाम की कई वैश्याएँ थीं, लेकिन उनमें से प्रवीणराय अधिक कुशल और योग्य थीं क्योंकि वह कविता करने में कुशल थीं। उन्होंने कई सवैया और छप्पै छंदों की रचना की है, किंतु कोई काव्य–संग्रह या गद्य संग्रह नहीं बनाया। प्रसिद्ध कवि केशवदास ने अपनी रचना 'कविप्रिया' में प्रवीणराय की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए लिखा है कि –

नाचत गावत हैं सबै। सबै बजावत बीन।।
तिन में करत कवित्त इक। राय प्रवीन प्रवीन।।[26]

खगनियाँ : जिला उन्नाव (उत्तरप्रदेश) रणजीत पुरवा ग्राम में खगनियाँ नाम की एक प्रतिभाशाली कवयित्री हो गई है। इसका रचनाकाल (1660 विक्रमी) ईस्वी सन् 1603 अनुमान किया जाता है। इसके पिता का नाम बासु था और जाति की तेलिन थी। यह खास पढ़ी लिखी तो नहीं थी, किंतु पहेलियां बनाने में बड़ी प्रवीण थी। इसकी पहेलियों को साधारण लोग बहुत पसंद करते थे। बहुत से लोग इसकी पहेलियां सुनकर इससे लिखवाकर ले जाते थे और उन्हें कंठस्थ कर लेते थे। आज भी कई लोगों को खगनियाँ की कई पहेलियां कंठस्थ हैं। खगनियाँ की पहेलियों की मूल भाषा अवधि है किंतु कहीं कहीं खड़ी बोली के भी एकाध क्रियापद यत्र तत्र–मिल जाते हैं। हाँ, इनकी रचनाओं में ठेठ ग्रामीण पुट अवश्य दिखाई देता है जो खगनियाँ का निजी है। इनकी कई पहेलियाँ 'कवि रत्नाकर'[27] नामक संग्रह में संकलित हैं। खगनियाँ ने अपने कुल और जाति का परिचय देते हुए लिखा है कि –

सिर पै तेल की मेटी, घूमति हौं तेलिन की बेटी।
कहौं पहेली बहले हिया, मैं हौं बासू केर खगनिया।।[28]

संसार में बहुत से तेली और तेलिन हो गयी हैं, किंतु खगनिया का नाम आज भी लोगों में जगत प्रसिद्ध है। अमीर खुसरों के बाद हम खगनिया को ही ख़ासतौर पर पहेलियों के लिए जानते हैं। साधारण जनमानस में

[25] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 140
[26] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 81
[27] वही, पृष्ठ संख्या, 04
[28] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 74

इसकी पहेलियाँ खूब प्रसिद्ध थीं। कई लोगो को इनकी पहेलियाँ कंठस्थ थीं। माना जाता है कि आज भी खगनियाँ की पहेलियाँ रणजीत पुरवा ग्राम में रची बसी हैं।

ठकुरानी काकरेची जी : ठकुरानी काकरेची जी गुजरात के अंतर्गत काकरेची प्रदेश के गाँव दियोधर के ठाकुर बाघेला अगराजी की पुत्री थीं। इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1658 अनुमान किया जाता है। इनका विवाह मारवाड़ देश के पश्चिम परगने साँचोर केसोनगरा चौहानराज बल्लू जी के पुत्र नरहरदास जी से हुआ था। बल्लू जी ईस्वी सन् 1642 में राजसिंहासन पर बैठे थे और शाहजहाँ बादशाह की सेवा में सपरिवार रहते थे। शाहजहाँ के बेटों में राज्य हेतु जो युद्ध सन् 1757–1759 के मध्य हुए उनमें की किसी लड़ाई में बल्लू जी और नरहर जी काम आ गए। काकरेची जी तीक्ष्ण बुद्धि और कविता में रूचि रखने वाली थीं। इन्होंने फुटकल दोहों की रचना की है। कोई संग्रह अब तक इनका प्रकाश में नहीं आया है।

इंद्रामती या इंद्रामती बाई : मध्यकाल के अन्य पंथ और संप्रदायों की भांति इंद्रामती बाई भी धामी पंथ और अपने पति प्राणनाथ की अनुयायी थीं। इस पंथ में हिंदू, मुस्लिम और ईसाईयों को एक घोषित किया गया है। उन्हें एक ही ईश्वर की संतान बतलाया गया है। इसका बहुत बड़ा प्रमाण नागरी प्रचारिणी सभा की द्वितीय त्रैमासिक खोज रिपोर्ट में संकलित **प्राणनाथ इंद्रामती** के कुछ पद हैं। धामी पंथ के इस वृहद ग्रंथ में छोटे बड़े 12 ग्रंथ सम्मिलित हैं। इनमें से 'किताब जंबूर', 'दूध पानी का बेवरा', 'षट ऋतु', 'षट ऋतु नो कलस', 'बारहमासी', 'किताब तोरेत', 'संनधे', 'रामत रहस्य' मुख्य हैं। इनमें बाई इंद्रामती की बाणी ही प्रमुख है। पदानुसार इंद्रामती प्राणनाथ की परिणिता थीं। 'इनके जीवन के संबंध में अनुमान किया जाता है कि 'प्राणनाथ और पन्ना नरेश छत्रसाल सम–सामयिक थे। छत्रसाल का जन्म सन् 1649 ई. और मृत्यु सन् 1726 ईस्वी को मानी जाती है।[29] अतः इसी के मध्य 1644–1645 ईस्वी के लगभग इंद्रामती का रचनाकाल या उपस्थिति काल मानना चाहिए।

शेख रंगरेजिन : शेख रंगरेजिन एक मुसलमान कवयित्री थीं। इनका विवाह आलम नाम के एक सुकवि से हुआ था। ठाकुर शिवसिंह ने 'शिवसिंह सरोज' में आलम का जन्म ईस्वी सन् 1655 (विक्रम संवत् 1712) के लगभग माना है। शेख का जन्म संवत् भी इसी के आस–पास माना जा सकता है। शेख का मूल व्यवसाय कपड़े रंगने का था, किंतु ये उच्चकोटि की काव्य मर्मज्ञा भी थीं। कवि आलम द्वारा रचित **'आलम केलि'** में शेख के 82 कवित्त सम्मिलित हैं जो इनके कृष्ण भक्त होने की पुष्टि करते हैं।

[29] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 84

छत्रकुँवरिबाई : छत्रकुँवरिबाई का जन्म रूपनगर (राजस्थान) के राजा सरदारसिंह जी के यहाँ ईस्वी सन् 1658 (वि. सं. 1715) के लगभग हुआ था। दरअसल इनका विवाह बहादुरसिंह जी ने ईस्वी सन् 1674 (बैसाख सुदि 13 संवत् 1731) में कोठड़े के गोपालसिंह जी खीची से किया था, इसलिए इनका समय ईस्वी सन् 1658 के लगभग मानना चाहिए। ये ब्रजभाषा के प्राचीन कवि नागरीदास जी की पोती थीं। ये अपने ग्रंथ 'प्रेमविनोद' में अपना परिचय इस प्रकार देती हैं–

रूपनगर नृप राजसी, निज सुत नागरिदास।
तिनके सुत सरदार सी, हौं तनया मैं तास।।
छत्रकुँवरि मम नाम है, कहिबे को जग माँहि।
प्रिया सरन दासत्व तें, हौं हित चूर सदाँहिं।।
सरन सलेमाबाद की, पायी तासु प्रताप।
आश्रय है जिन रहसि के, बरन्यो ध्यान सजाप।।[30]

ये बहुत दिनों तक अपने पति के पास रहकर फिर रूपनगर चली आयीं। एक स्थान पर यह भी लिखा मिलता है कि ये राजा सरदार सिंह की खास थीं। बाल्यकाल से ही इन्हें कृष्ण प्रेम का चस्का लग गया था। उन्हीं की गुणावली का वर्णन करने में ये अपना समय बितातीं थीं। ये अपने बाबा नागरीदास के ग्रंथों का अधिक अध्ययन किया करती थीं। इसी से इनके हृदय में कृष्ण जी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार सत्संग और प्रेम से इनके हृदय में भक्ति भाव मयी कविता करने की इच्छा पैदा हुई।[31]

अंत में इन्होंने सलेमाबाद के निम्बार्क संप्रदाय में आकर दीक्षा ले ली। इसका पता ठीक–ठीक नहीं चलता कि इनकी मृत्यु किस संवत् में हुई। इनका 'प्रेम विनोद' नामक ग्रंथ सन् 1688 (संवत् 1745 आषाढ़ सुदि 03 बृहस्पतिवार) को समाप्त हुआ। इनकी कविता सरस, कृष्ण भक्ति के रंग में रंगी हुई सुंदर है।

रानी बख्तकुँवरि (प्रियासखी) : रानी बख्तकुँवरि (प्रियासखी) दतिया राज्य की रानी थीं और कृष्ण के प्रति आपका विशेष अनुराग था। इन्होंने केवल एक ग्रंथ 'प्रियासखी की बानी' की रचना ईस्वी सन् 1677 (विक्रम संवत 1734) में की है; अर्थात् इस काल खंड में आप विद्यमान थीं, अतः आपका उपस्थिति काल 1600–1677 ईस्वी के मध्य अनुमान किया जाना चाहिए। आपने 'प्रियासखी की बानी' में राधा कृष्ण की दाम्पत्य लीला, प्रेमलीला और रास लीलाओं का हृदयग्राही वर्णन किया है।

[30] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 88
[31] वही, पृष्ठ संख्या, 88

कविरानी चौबे : कविरानी चौबे कविवर लोकनाथ चौबे की पत्नी थीं जो बूँदी के राव राजा श्री बुध सिंह जी के राजाश्रयी कवि थे। राव राजा बुध सिंह जी संवत् 1752 से संवत् 1805 तक विद्यमान थे। अतः स्पष्ट रूप से अनुमान किया जाता है कि ये संवत् 1760 या ईस्वी सन् 1703 में उपस्थित थीं। ये भी अपने पति के सत्संग से कविता करने लगी थीं और कविता भी उनके जैसी ही सुंदर, सरल और सरस करती थीं।[32] इन्होंने कई स्फुट पदों की रचना की है, किंतु इनकी कोई एकबद्ध रचना नहीं पाई जाती।

साईं (पत्नी, गिरिधर कविराय) : साईं प्रसिद्ध नीति कवि गिरिधर कविराय की स्त्री थीं। इनका जन्म ईस्वी सन् 1613 (1770 विक्रमी) के लगभग अवध में अनुमान किया जाता है क्योंकि उनकी भाषा में अधिकांश शब्द अवध के आस–पास के हैं। 'अपने पति की देखा देखी उन्हीं की छाया पर नीति व्यवहार की कुंडलियाँ बनाया करती थीं जो गिरिधर कविराय की कुंडलियों में मिली जुली हैं और साईं के शब्द से आरम्भ में आती हैं। विद्वानों का अनुमान है कि गिरिधर कविराय ने जितनी कुंडलिया बनाने का संकल्प किया था उन्हें बनाए बिना ही वे काल ग्रस्त हो गए तब उनकी पत्नी ने शेष कुंडलियों को बनाकर उनका मनोरथ पूरा किया।'[33] कुछ भी हो पर इसमें तो सब का मत एक है कि **साईं** शब्द वाली कुंडलियाँ गिरिधर जी की बनाई नहीं हैं उनकी स्त्री की बनाई हैं। साईं की कुंडलियों में नीति–व्यवहार कुशलता और विनोद की भी छटाएं देखने को मिलती हैं। इनकी कुंडलियों से मालूम होता है कि इन्हें उर्दू और फ़ारसी की भी अच्छी जानकारी थी।

प्रेमसखी : ओरछा निवासी प्रेमसखी का जन्म ईस्वी सन् 1743 (वि. संवत् 1800) तथा रचनाकाल 1783 ईस्वी के लगभग अनुमान किया जाता है। ये मूलतः रामभक्त थीं। इनके काव्य में सीताराम की युगल मूर्ति की उपासना के ही भाव नहीं मिलते, अनेक स्फुट भावनाएँ कोमल कांत पदावली में उत्कृष्ट कल्पनाओं द्वारा व्यक्त मिलती हैं। राम के विराट रूप की गरिमा तथा महिमा का अंकन भी उतना ही मार्मिक है जितना उनके सौंदर्य का सजीला व्यक्तित्व। इनके पदों को विषय के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–(1) नखशिख के पद जिनमें राम के सौंदर्य का वर्णन है (2) स्फुट विषयों पर लिखे गए पद, सवैये तथा कवित्त।

रत्नकुँवरि बीबी : बीबी रत्नकुँवरि का जन्म मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सेठ के घराने में हुआ था। इनका जीवन बड़ा आनंदमय था। इन्होंने वृद्धावस्था तक अपने पुत्र, पौत्रों के साथ अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत

[32] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 01
[33] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 112

किया। ये बड़ी पंडिता और विदुषी थीं। राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिंद' इनके पौत्र थे। इनका जन्म ईस्वी सन् 1727 (विक्रम संवत 1787) के लगभग मानना चाहिए; क्योंकि इन्होंने अपने ग्रंथ **'प्रेमरत्न'** की रचना सन् 1787 में की थी। ऐसे में यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि पुत्र–पौत्रों के साथ खेलने वाली इस विदुषी कवयित्री की उम्र अपने ग्रंथ के रचनाकाल पर लगभग 60 वर्ष तो होनी चाहिए।

जैसा कि उपर्युक्त है कि ये सुविख्यात ग्रंथकार राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिंद' की दादी थीं। राजा शिवप्रसाद जी ने सन् 1888 ईस्वी में 'प्रेमरत्न' को प्रकाशित कराया था। इस पुस्तक में, श्रीकृष्ण ब्रजचंद आनंद कन्द की लीलाओं का उल्लेख परम प्रेम और प्रचुर प्रीति से किया गया है। 'कृष्ण के किशोर रूप, बाल रूप, विराट रूप का संपूर्ण अथवा खंडरूप में प्रबंधात्मक रूप देने का प्रयास प्रायः नहीं किया जाता परंतु अपनी काव्य कला द्वारा कवयित्री ने यह कर दिखाया है। मूलतः इस ग्रंथ में भागवत के दशम स्कंध के बयासीवें अध्याय का कथा के रूप का वर्णन है।'[34] उल्लेखनीय है कि इन्होंने अपना जीवन वृद्धावस्था में अपने पुत्र–पौत्रों के साथ सुखपूर्वक व्यतीत किया था।

ब्रजदासी रानी बाँकावती : ब्रजदासी जी महारानी बाँकावती के नाम से प्रसिद्ध थीं। ब्रजदासी इनका उपनाम था। इनका असली नाम महारानी ब्रजकुँवरि बाई था। ये जयपुर राज्य में लिवाण के कछवाहा राजा आनंदराम जी की पुत्री थीं। लिवाण में महाराजा भगवानदास जी एक सुप्रसिद्ध और वीर पुरूष हो गए हैं। अकबर बादशाह ने उन्हें कई बार अपने चंगुल में फसाना चाहा, किंतु वे अकबर के चक्कर में न आए। उन्होंने दो चार स्थानों पर अकबर का अपमान भी किया था, इससे अकबर बादशाह उन्हें बाँका कहा करता था। इसी से उस वंश में जितने महाराजा हुए वे बाँकावत के नाम से प्रसिद्ध हो गए और महारानियाँ बाँकावती के नाम से पुकारी जाने लगीं। ब्रजदासी बाँकावती जी का जन्म ईस्वी सन् 1703 में हुआ अनुमान किया जाता है, क्योंकि इनका विवाह कृष्णगढ़ या किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह से ईस्वी सन् 1719 में वृंदावन में हुआ।[35] यह विवाह वृंदावन में केसी घाट पर हुआ था। स्वयं महारानी बाँकावती इसका प्रमाण देती हुई अपने ग्रंथ **सालवजुद्ध** में लिखती हैं–

वृन्दावन के मांहि जहाँ, चैन घाट की ठोर।
पानिगहन तिहिं ठो भयो, बांधि रीति सों मोर।।
पुण्य कृपा गुरू जानिबै, बहुर्‌यो पुरी प्रभाव।
पानिगहन सुभ ठौर भौ, सुभौ सबै सुभाय।।[36]

[34] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 202
[35] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 110
[36] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 125

'महारानी ब्रजदासी बाँकावती महाराजा राजसिंह की दूसरी रानी थीं। विवाह पश्चात् इनकी दो संताने हुईं। बड़े पुत्र का नाम वीरसिंह और पुत्री का नाम सुंदर कुँवरि बाई था। विवाहोपरांत इन्होंने गुरू श्रीब्रजनाथ भट्ट जी से व्यवस्थित ढंग से विभिन्न शास्त्रों का सुव्यवस्थित अध्ययन किया। इन्होंने वैष्णवी दीक्षा श्री वृन्दावन देवजू से ग्रहण की। इन्हीं के द्वारा बाँकावती जी ने श्रीमद्भागवत ग्रंथ का व्यापक एवं व्यवस्थित अध्ययन किया।[37] इनकी वैष्णवी दीक्षा के पश्चात् आगे चलकर इनका नाम 'ब्रजदासी' पड़ गया।

रानी बाँकावती का पितृकुल बड़ा ही धार्मिक था। वे लोग बौद्धिक रूप से भी अत्यधिक विकसित थे। इनके परिवार में बचपन से ही बालिकाओं की शिक्षा–दीक्षा का उचित प्रबंध किया जाता था।[38] किशनगढ़ के राजवंश में कृष्णभक्ति एवं काव्य रचना की परंपरा सदा से ही विकसित थी। इस तरह बाँकावती जी को यह संस्कार अपने पुरखों की अमूल्य धरोहर के रूप में प्राप्त हुआ। बाल्यकाल से ही ये अत्यंत कुशाग्र बुद्धि एवं साहित्यिक अभिरूचि से संपन्न थीं। धीरे धीरे कृष्णभक्ति में लिप्त रहने के कारण भक्ति काव्य सृजन की दिशा में भी अग्रसर होने लगीं। ईस्वी सन् 1771 (वि. सं. 1828 अश्विन शुक्ल 13) को 68 वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।[39]

महारानी बाँकावती काव्य प्रवीना थीं। वे जो कविता करती थीं उनमें अपना नाम ब्रजदासी रखती थीं। आपने अपनी रचनाओं में माधुर्य भाव, लोक व्यवहार, वैराग्य भाव, सत्संग महात्म्य निरूपण, गुरूभक्ति आदि भावों को उभारा है। रानी बाँकावती कृत जिन ग्रंथों की सूचना विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होती हैं, वे हैं– 'ब्रजदासी भागवत', 'विवाह विलास', 'सालवजुद्ध', 'आशीष संग्रह' और गीता 'पद्यानुवाद'। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(01) ब्रजदासी भागवतः ब्रजदासी भागवत महरानी बाँकावती की प्रमुख रचना है। 'यह विशाल ग्रंथ वेदव्यास कृत भागवत पुराण का पद्यानुवाद है। अपने गुरू से भागवत के व्यवस्थित अध्ययन के फलस्वरूप आप भगवत को विभिन्न दृष्टियों से उसके पूर्ण स्वरूप में आत्मसात कर सकीं। इसका जीवंत उदाहरण आपके द्वारा भागवत का व्यापक पद्यानुवाद है।[40]

(02) विवाह विलासः बाँकावती कृत विवाह विलास श्री कृष्ण भक्ति के व्यापक पल्लवन की दिशा में अति महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इस ग्रंथ में कवयित्री ने राधा कृष्ण के विवाह एवं तत्संबंधित विभिन्न शास्त्रीय एवं लोक प्रथाओं का विस्तृत चित्रांकन किया है।

---

[37] विष्णु चंद्र पाठक, राजस्थान के राजघरानेन की ब्रजभाषा कवयित्रिन को व्यक्तत्व अरू कृतित्व, ब्रजशतदल, पृष्ठ संख्या, 03
[38] ब्रजदासी बाँकावती, भागवत पुराण भाषा, चंद्रमहल पोथीखाना, पृष्ठ संख्या, 01
[39] विष्णु चंद्र पाठक, राजस्थान के राजघराने की ब्रजभाषा कवयित्रिन को व्यक्तत्व अरू कृतित्व, ब्रजशतदल, पृष्ठ संख्या, 02
[40] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 126

(03) सालव जुद्धः मुनि कांति सागर जी ने हस्त–लिखित ग्रंथों की अपनी खोज यात्रा के दौरान प्राप्त हुए ग्रंथों में दो ग्रंथ महारानी बाँकावती कृत बताए हैं। ये लघु ग्रंथ उन्हें कबाड़ियों के यहाँ से प्राप्त हुए हैं।[41] इनमें पहला ग्रंथ है–'सालवजुद्ध', यह ग्रंथ 173 पद्यों में रचित है।[42] इसमें महाभारत की कथा के आधार पर कवयित्री ने तद्युगीन परिस्थितियों को साकार किया है।

(04) आशिष संग्रहः मुनि कांति सागर जी को हस्त–लिखित ग्रंथों की अपनी खोज के दौरान महारानी बाँकावती का जो दूसरा ग्रंथ प्राप्त हुआ, वह है–'आशिष संग्रह'। इसमें लगभग 20 स्फुट पद मिलते हैं। 'दुर्भाग्यवश उन्हें यह ग्रंथ अपूर्ण अवस्था में प्राप्त हुआ। उनका विचार है कि 'आशिष संग्रह' ब्रजदासी की प्रथम रचना है।[43] इस ग्रंथ में विभिन्न प्रसंगों में कृष्ण को आशीष देने के उपक्रम में कवयित्री की तीव्र अनुभूति एवं गहन कृष्ण प्रेम उजागर हुआ है।

(05) गीता पद्यानुवादः महारानी बाँकावती कृत एक ग्रंथ–'गीता पद्यानुवाद' भी बताया जाता है। इस ग्रंथ में 1021 छंदों में गीता का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है।[44] इस ग्रंथ में भी गीता के काव्यात्मक भाषानुवाद से कवयित्री का भारतीय आध्यात्म परंपरा का स्पष्ट ज्ञान व अध्ययन साफ जाहिर होता है।

दयाबाई : संत कवयित्री दयाबाई का जन्म ईस्वी सन् 1718 के लगभग मेवात के डेरा नामक गाँव में हुआ था। ये महात्मा चरनदास जी की शिष्या थीं। एक अन्य संत कवयित्री सहजोबाई इनकी गुरू बहन थीं। उल्लेखनीय है कि इनके गुरू चरनदास जी का जन्म भी मेवात के डेहरा नामक गाँव में ही हुआ था। कुछ समय बाद दयाबाई अपने गुरू के साथ दिल्ली में आकर रहने लगीं और भगवद्भक्ति में अपना समय बिताकर वहीं अपने शरीर को छोड़ा। ध्यातव्य है कि 'दयाबाई का कार्य क्षेत्र प्रमुख रूप से कानपुर, बिठूर, प्रयाग आदि रहा है। कानपुर के पास रमेल नामक स्थान पर उनकी समाधि बनी हुई है। इनके शिष्यों ने कई स्थानों पर मंदिर, मठ और उपासना स्थल निर्मित किये, जिनमें बिठूर तथा उनके निकटवर्ती इलाकों में बाँके बिहारी जी का मंदिर, धर्मशाला शाह जी, शम्भू जी का मंदिर, मंदिर शंकर भगवान आदि उल्लेखनीय हैं।'[45]

दयाबाई ने अपने जीवन में **दयाबोध (1761)** और **विनयमालिका** नामक दो ग्रंथों की रचना की है। दयाबोध में साधु कवयित्री ने गुरूमहिमा, सुमिरन कौ अंग, प्रेम कौ अंग, सूर कौ अंग, बैराग कौ अंग आदि

---

[41] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 126
[42] वही, पृष्ठ संख्या, 127
[43] वही, पृष्ठ संख्या, 128
[44] विष्णु चंद्र पाठक, (ब्रजशतदल), राजस्थान के राजघराने की ब्रजभाषा कवयित्रीन को व्यक्तित्व अरू कृतित्व, पृष्ठ संख्या, 04
[45] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 104

नामों से अनेक दोहों और चौपाइयों की रचना की है और अपने गुरू की परम भक्त तथा संत होने की बात कही है। यही भक्तवत्सलता हमें उनके ग्रंथ विनयमालिका में दिखाई देती है। इसमें भी उन्होंने भगवान और गुरू को ही संसार का तारनहार बताया है। वह अपना संपूर्ण जीवन अपने गुरू को ही अप्रण कर देना चाहती हैं।

कुछ आलोचक **विनयमालिका** को दयाबाई की रचना स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि 'इस ग्रंथ के पदों में दयाबाई जी ने अपने नाम **दया, दयादास** और **दयाकुँवरि** रखे हैं। पता नहीं ये तीनों नाम दयाबाई के ही हैं या इनमें से दो और किसी के। संम्भव है किसी दयादास नामक साधु सज्जन ने अपने पद इस पुस्तक में रख दिये हों ? क्योंकि दयाबाई जी का अपनी रचना में तीन प्रकार से नाम का प्रयोग करना कुछ असंभव सा जान पड़ता है।[46] अतः यह दयाबाई की रचना न होकर किसी दयादास की रचना प्रतीत होती है। लेकिन 'इसमें संदेह की कोई बात नहीं पाई जाती क्योंकि एक तो दोनों ग्रंथों की भाषा और ढंग एक से हैं, दूसरे दोनों में महात्मा चरनदास जी ने अपने गुरू की महिमा गाई है, तीसरे दयाबोध में जो निश्चय करके पूरा–पूरा दयाबाई का रचा हुआ है एक जगह दयादास नाम करके छाप दी हुई है और चौथे चरनदासियों का भी ख्याल है कि दयादास जी कोई पृथक व्यक्ति न थीं और यह नाम दयाबाई ही का है।'[47] इसलिए विनयमालिका को दयाबाई की ही रचना मानना चाहिए, विशेषकर तब तक जब तक दयादास नामक किसी भक्त की वैसी ही कोई पूर्ण रचना प्राप्त न हो जाए। फिर भक्ति में भगवान की महिमा गाते गाते स्वयं का विसर्जन और नाम विस्मृत होना स्वाभाविक है।

<u>सुन्दर कुँवरिबाई</u> : सुंन्दर कुँवरिबाई जी रूपनगर तथा कृष्णगढ़ के राठौर क्षत्रिय वंशी महाराजा राजसिंह जी की बेटी थीं। इनका जन्म ईस्वी सन् 1734 (कार्तिक सुदी 9, संवत् 1791) को दिल्ली में हुआ था। इनकी माता का नाम महारानी बाँकावती था, जो स्वयं एक उत्कृष्ट कोटि की कवयित्री और कृष्णभक्त थीं। इनके सगे भाई का नाम वीरसिंह था। सुखसिंह जी, फ़तहसिंह जी और सावंतसिंह जी इनके अन्य भाइयों में थे।

इनके पिता महाराजा राजसिंह जी ईस्वी सन् 1706 में कृष्णगढ़ के राज सिंहासन पर बैठे थे। किसी अज्ञात कारण से सन् 1748 में उनका स्वर्गवास हो गया। राजा जी के स्वर्ग गमन के तुरंत बाद इनके घराने में राज्य संबंधी झगड़े प्रारम्भ हो गए। परिणामस्वरूप तरूणावस्था प्राप्त कर लेने के बाद भी उनका विवाह न हो सका। ऐसे समय में भी वे घरेलू झंझावातों में उलझी रहीं और अनेक बाधाओं का सामना करती रहीं जिससे उनकी उम्र 31 वर्ष की अवस्था तक पहुँच गईं।

[46] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 99
[47] दयाबाई, दयाबाई की बानी, दयाबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ संख्या, 02

खैर! एक दिन वह भी आया जब उनके भतीजे महाराज सरदार सिंह जी ने सन् 1765 में इनका विवाह राघोगढ़ के खीची महाराजा बलभद्र सिंह के कुँवर बलवंत सिंह जी से कर दिया। विवाह हो जाने के उपरांत सुंन्दर कुँवरिबाई जी राघोगढ़ चली गईं जहाँ उन्होंने सन् 1777 में अपने ग्रंथ **रसपुंज** की रचना की; किंतु ऐसा नहीं है कि उनके दुखों का अंत हो गया था। विवाह के बाद भी उन्हें अनेक दुखों का सामना करना पड़ा। पीहर में ये भाइयों के विरोध और मरहठों के आक्रमण से घोर संकट में पड़ गईं थीं। जब **कर** लेने के लिए होल्कर जी महाराज ने इन्हें युद्ध की चुनौती दी तो इन्होंने छबड़ा और गूगोर परगना देकर सुलह कर ली; किंतु बात इतने से ही नहीं थमी। सिंधिया राज्य की हिम्मत देखकर दूसरे राज्यों ने भी मनमानी मांगे करना आरंभ कर दिया। अंत में सिंधिया के सरदारों ने बलवंत सिंह को पकड़कर ग्वालियर में कैद कर दिया और राघवगढ़ का किला छीन लिया; लेकिन बलवंत सिंह जी ने जयपुर, जोधपुर और अपने कुटुंबी खीची सरदार शेरसिंह जी की सहायता से राघवगढ़ को फिर से प्राप्त कर लिया। इसी बीच बलवंत सिंह जी भी स्वर्ग सिधार गए। उनकी मृत्यु के बाद उनके कुँवर जयसिंह राघवगढ़ के राजा हुए। इस दौरान सिंधिया राज्य ने फिर से राघवगढ़ पर आक्रमण किया जिसमें महाराज जयसिंह वीरगति को प्राप्त हुए और राघवगढ़ भी उनके हाथ से जाता रहा। ऐसी स्थिति में राजा जयसिंह की रानी ने अजीत सिंह जी को गोद ले लिया। बाद में अंग्रेजी सरकार ने महाराज दौलतराय सिंधिया से कहकर राघोगढ़ कुँवर अजीतसिंह जी को दिला दिया। इन आक्रमणों और विपदाओं के समय का सुंन्दर कुँवरिबाई जी ने किस प्रकार सामना किया होगा इसकी कल्पना करना मुश्किल है। इस दौरान संभवतः वे रूपनगर या सलेमाबाद रही होंगी क्योंकि सलेमाबाद में इनके कुल का गुरूद्वारा है।

जहाँ तक उनके व्यक्तिगत जीवन का संबंध है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि उन्हें बाल्यकाल से ही कविता सुनने और पढ़ने का चाव था। जिस राजकुल में सुंदरकुँवरि बाई जी का जन्म हुआ था वह सदा से उच्च कोटि के कवियों का आश्रयदाता रहा था। 'इनके पिता राजसिंह जी, दादा मानसिंह जी, परदादा रूपसिंह जी, जिन्होंने रूपनगर बसाया है उत्तम कविता करते थे। इनके भाई नागरीदास जी, बहादुरसिंह जी, भतीजे बिड़दसिंह जी भी बड़े कवि थे। इनकी माता रानी बाँकावती जी भी कविया थीं जिनकी बनाई भाषा भागवत भगवत भक्तों में परम प्रेम से पढ़ी पढ़ाई जाती है। फिर इनकी भतीजी छत्रकुँवरि बाई भी पद योजना में कुशल थीं और तो क्या इनके घर की दासियाँ भी कविता करती थीं। फिर यह कैसे हो सकता है कि सुन्दर कुँवरि जी ऐसे उग्र कुल में जन्म लेकर काव्य कला से शून्य रह जातीं। इन्होंने तो सबसे बढ़कर भक्तिमयी ललित कविता बनाने में निपुणता प्राप्त की थी। यह बात इनकी विषद वाणी से प्रमाण रूप प्रकट हो सकती है।'[48]

[48] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 107–108

कवयित्री सुंन्दर कुँवरिबाई द्वारा रचित ग्यारह ग्रंथ पाए जाते हैं जिनमें '**नेहनिधि रचना'**, **'वृन्दावन गोपी महात्म्य'**, **'संकेत सुगल'**, **'रस पुंज'**, **'सार संग्रह'**, **'गोपी महात्म्य'**, **और 'राम रहस्य'**, प्रमुख हैं। इन ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

(क) नेह निधिः इस पुस्तक में वृन्दावन में हुई कृष्ण और राधा की विलास क्रीड़ाओं का वर्णन है। इसका रचना ईस्वी सन् 1760 (भादों सुदि 13 संवत् 1817) को रूपनगर में हुई।

(ख) वृन्दावन गोपी महात्म्यः यह ग्रंथ सन् 1766 ईस्वी (बैसाख सुदि 13 संवत् 1823) में गुरूवार को रूपनगर में रचा गया।

(ग) संकेत सुगलः इसमें राधा कृष्ण के विनोद का वर्णन है। इसकी रचना सन् 1773 ईस्वी (माह बदि 05 सोमवार को कृष्णगढ़ वि. संवत 1830) में हुई।

(घ) गोपी महात्म्यः इस ग्रंथ में गोपियों तथा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इसकी रचना स्कंद पुराण के कथानक के आधार पर हुई है। इसकी रचना सन् 1789 ईस्वी (माघ बदि 11 रविवार को संवत 1846 बैशाख सुदि 13) को रूपनगर में हुई थी।

(ड़) प्रेम संपुटः इस ग्रंथ में राधा–कुष्ण की नित्य लीलाओं का वर्णन है। इसकी रचना सन् 1788 ईस्वी (बैशाख सुदि 15 सोमवार को वि. संवत् 1845) में हुई थी।

(च) रस पुंजः इस ग्रंथ में राधा तथा कृष्ण के प्रेम तथा रस का वर्णन है। राधा–कृष्ण की सिद्धी आनंददायिनी शक्ति है। कृष्ण ब्रह्मा के प्रतीक हैं, अपनी लीलाओं का विस्तार वे प्रधान रूप से राधा तथा सहायक रूप से गोपियों के द्वारा करते हैं। इसकी रचना सन् 1777 ईस्वी (फागुण बदि 05 वि. संवत् 1834) में राघोगढ़ में हुई थी।

(छ) सार संग्रहः इस ग्रंथ में कृष्ण के अनेक रूपों की वंदना है। इसमें भक्ति के प्रेम के तत्व में ज्ञान योग इत्यादि का पुट है। इसमे कृष्ण ब्रह्मा हैं जिनकी महिमा का ज्ञान करने का सामर्थ्य वेदों में भी नहीं है। इसकी रचना सन् 1788 ईस्वी (कातिक सुदि 09 वि. संवत् 1845) में हुई थी।

(ज) रंगझरः इस ग्रंथ में भी राधा कृष्ण की दिन प्रतिदिन की लीलाओं का वर्णन है। इसकी रचना सन् 1788 ईस्वी (मगसर सुदि 10 वि. संवत 1845) में हुई थी।

(झ) भावना प्रकाशः इस ग्रंथ में कृष्ण तथा राधा की दाम्पत्य लीलाओं का मनोहारी वर्णन किया गया है। इसकी रचना सन् 1792 ईस्वी (माघ सुदि 5 संवत् 1849) में हुई।

(ञ) राम रहस्यः इस ग्रंथ का आधार राम की आदर्श लीलाओं का चित्रण है। इसकी रचना सन् 1796 ईस्वी (तिथि कार्तिक सुदि 9 संवत् 1853) है।

(ट) पद तथा फुटकर कवित्त।

बिरजूबाई : कवयित्री 'बिरजूबाई जोधपुर के महाराज श्री अभयसिंह जी की राजसभा में रहने वाले चारण करनदीन की बहन थीं। इनका रचनाकाल ईस्वी सन् 1743 के लगभग लगभग अनुमान किया जाता है। कविराज करनदीन के समान ही बिहजूबाई भी भड़कीले कवित्तों और गीतों की रचना करती थीं। लेकिन ये राजा के अंतःपुर में नहीं रहती थीं और न स्त्री होने के कारण यह किसी राजसभा में जाकर प्रशस्ति गान सुना सकती थीं।[49] कुछ फुटकल पदों के अतिरिक्त इनकी कोई संग्रहित रचना हमें प्राप्त नहीं होती।

सहजोबाई : सहजोबाई का जन्म ईस्वी सन् 1743 के लगभग राजपूताने के एक प्रसिद्ध ढूसर परिवार में हुआ। ये महात्मा चरणदास की प्रसिद्ध चेलियों में से एक थीं। हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री दयाबाई इनकी गुरू बहन थीं। ये परमभक्त थीं। सहजोबाई अपने गुरू की भाँति साधुवृत्ति से रहती थीं। आपके पिता हरिप्रसाद दिल्ली के प्रसिद्ध व्यवसायियों में से थे। आपने अपने पिता, कुल तथा गुरू का परिचय देते हुए लिखा है कि, 'हरिप्रसाद की सुता, नाम है सहजोबाई/ ढूसर कुल में जन्म, सदा गुरू चरण सहाई/ चरणदास गुरूदेव, सेव मोहिं अगम बसायो/ जोग जुगुत सो दुर्लभ, सुलभ करि दृष्टि दिखायो।।[50]

दरअसल, सहजोबाई के साथ उनके विवाह के समय एक अद्‌भुत घटना हुई जिसका उल्लेख 'भारतीय नारी संत परंपरा' में प्राप्त होता है। सहजोबाई अपनी आरंभिक शिक्षा पूरी कर चुकी थीं। माता–पिता ने 11–12 वर्ष की आयु में ही सहजो का विवाह भार्गव कुल के एक संपन्न परिवार में निश्चित किया। विवाह के अवसर पर उनके मामा के पुत्र और तब तक प्रसिद्धि पा चुके संत चरनदास आशीर्वाद देने के लिए आए और सहजो को देखकर कहा, 'सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुंदाए शीस/ मरना है रहना नहीं, जाना बिस्वे बीस।' यह सुनकर सहजोबाई की चेतना जागृत हो गई और उसने विवाह से मना कर

[49] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 33
[50] वही, पृ. सं. 51

दिया। तभी बाराती रोते हुए पहुँचे और बताया कि आतिशबाजी से अकस्मात् घोड़ी भड़ककर भागी और वृक्ष से टकरा गई जिससे वर की मृत्यु हो गई। इस घटना से शोकाकुल तथा चरनदास जी की त्रिकालज्ञता से प्रभावित होकर सहजो के पिता तथा माता अनूपीबाई अपने चारों पुत्रों एवं पुत्री सहित उनके शिष्य हो गए।

सहजोबाई ने अपने गुरू चरनदास जी का जन्मकाल सन् 1703 माना है। स्पष्ट है कि इनका जन्म चरनदास जी के बाद हुआ है। इनकी बानी कोमल, मधुर और हृदय प्रसन्न करने वाली होती है। वह कोरी कविता ही नहीं है अपितु प्रेम रसमयी सुधा धार भी है। इनकी बानी की मुख्य विशेषता है कि ये गुरू को भगवान से ज्यादा ऊँचा मानती हैं। इनका मानना था कि बिना सतगुरू की कृपा से जीव किसी प्रकार भी इस संसार से मुक्ति नहीं पा सकता। इन्होंने कई ग्रंथ भक्ति, ज्ञान, वैराग और सदुपदेश के बनाए हैं[51] जिसमें से **सहजप्रकश** अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनकी मिश्रित भाषा में ब्रज, राजस्थानी एवं खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

रसिक बिहारी बनी ठनी जी : रसिक बिहारी बनी ठनी जी महाराज नागरीदास (कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह जी का उपनाम) की शिष्या एवं संगिनी थीं। **नागर समुच्चय** और **उत्सव माला** नामक ग्रंथ में रसिक बिहारी जी के भी पद संकलित हैं, जो इनके कृष्ण भक्तिन होने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। 'कृष्ण के प्रति उनकी भावनाओं में माधुर्य का वही रूप प्रधान है जो पुरूष–नारी की रतिमूलक भावनाओं का ही पूरक होता है। इनकी मृत्यु ईस्वी सन् 1765 (विक्रम संवत् 1822) वृंदावन में हुई।'[52]

प्रताप कुँवरि बाई : हिंदी में रामकाव्य की अपनी एक सशक्त एवं व्यापक परंपरा रही है। इसमें स्त्रियों द्वारा रचित साहित्य की एक गौरवशाली भूमिका दृष्टिगत होती है। इस परंपरा में प्रताप कुँवरि बाई का नाम अग्रणी है। इनका जन्म जोधपुर के जाखण निवासी, भाटी ठाकुर गोयंददास जी के यहाँ ईस्वी सन् 1816 (वि.सं. 1873) में हुआ।[53] गोयंददास जी के चार संताने थीं। तीन पुत्र गिरिधरदास, अजब सिंह और लछमन सिंह, चौथी कन्या श्रीमती प्रताप कुँवरि बाई थीं। चंद्रवंश के यदुकुल क्षत्रियों की अनेक शाखाओं में से भाटी एक प्रबल और प्रसिद्ध शाखा है। भाटियों की कई शाखाएँ हैं। इनमें एक शाखा का नाम रावलोत है। रावलोत शाखा की भी दो शाखाएँ थीं। देरावरिया रावलोत और जैसलमेरिया रावलोत। श्रीमती प्रताप कुँवरि बाई के पिता गोयन्ददास जी देरावरिया रावलोत भाटी थे। देरावरिया रावलोतों के मूल पुरूष रावल मालदेव थे। देरावरिया के रावल अपने घर की लड़कियों का विवाह राजा महाराजों के यहाँ करते थे। क्योंकि

[51] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 101
[52] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 164–165
[53] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 158

भाटिया जाति की स्त्रियाँ सुन्दर और दृढ़ होती थीं। इसलिए गोयन्ददास जी ने अपनी पुत्री का विवाह महाराजा मानसिंह जी से किया। महाराजा मानसिंह की तेरह रानियाँ थीं। जिनमें पाँच रानियाँ भाटिया वंश की थीं। महाराजा मानसिंह जी की पाँच भाटिया रानियों में श्रीमती प्रताप कुँवरि बाई तीसरी रानी थीं।

प्रताप कुँवरि बाई जी का संपूर्ण जीवन त्याग, तपस्या, समर्पण, दया और दान का मूल है। ये बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि और विलक्षण प्रतिभा की धनी थीं। स्वयं आपके पदों के द्वारा आपके अनेक गुणों का उद्घाटन होता है। बालिका प्रताप कुँवरि बाई के इन्हीं गुणो पर मुग्ध होकर इनके पिता इनका विवाह उच्चकुलीन राजघराने में कराने के आकांक्षी थे। इसी दौरान वहाँ रामानुजी संप्रदाय के प्रसिद्ध संत पूर्णदास जी निवास करने आए। गोयन्ददास जी ने सुअवसर पाकर उनसे अपनी अभिलाषा जाहिर की। 'महंत जी ने कहा बाई के भाग बड़े हैं और संबंध भी आपका मन चाहा हो जावेगा पर बाई को विद्या और चतुराई भी सिखाना चाहिए।'[54] महंत जी की स्वीकृति पाकर 'बाई साहब ने पूर्णदास जी से शिक्षा ग्रहण करके अपने आपको भगवद्भक्ति में लीन कर लिया। महंत पूर्णदास जी की ही देखरेख में इनके काव्याभ्यास एवं भक्ति–साधना का समुचित प्रबंध किया गया। इससे इनकी दृढ़ भक्ति भावना और साहित्य रचना को गति मिली। इनकी यह साधना आजीवन जारी रही।[55]

धर्म साधना और साहित्य में निपुणता हासिल कर रहीं बाई जी का विवाह ईस्वी सन् 1832 में मारवाड़ (जोधपुर) के राजा मानसिंह से हो गया। दुर्भाग्यवश आपके कोई संतान नहीं थी; फिर ईस्वी सन् 1843 में महाराजा मानसिंह का भी देहांत हो गया जिससे इनके हृदय में असीम वैराग्य उत्पन्न हो गया और ये पहले से अधिक साधु भाव से रहने लगीं और भगवद् भक्ति में अपना समय बिताने लगीं।

प्रताप कुँवरि बाई जी को राज्य में कई बड़े–बड़े गाँव मिले थे। उसकी सारी आमदनी इन्हीं को दी जाती थी। उस आमदनी से बाई जी अपना काम चलातीं तथा धर्म पुण्य के लिए हज़ारों रूपया दान दिया करती थीं। इनकी कीर्ति इससे वहाँ बहुत हुई। 'इन्होंने मारवाड़ में गुलाब सागर तालाब पर पक्का शिखर बन्ध मंदिर सन् 1845 में बनवाया और उसमें श्री रामचंद्र जी की मूर्ति स्थापित करायी। पुष्कर में इन्होंने पक्का घाट बनवाया और अपने पतिदेव के ईष्टदेव जालन्धर जी का मंदिर सन् 1847 में बनवाया। तथ्यों ही नहीं, इन्होंने सदैव मुक्त हस्त से दान पुण्यादि में अपना रूझान दिखाया। जनश्रुतियों से यह भी ज्ञात होता है कि इन्होंने अपना सारा धन दासियों में बाँट दिया।[56] बाई जी द्वारा किये जा रहे दान–पुण्य के कारण 'इनकी प्रसिद्धि एक महान भगवद्भक्त एवं परोपकारी रानी के रूप में हो चली थी। इस प्रकार साधना पथ पर अग्रसर होते हुए, ये दीर्घकाल पर्यंत विद्यमान रहीं। सन् 1886 में 70 वर्ष की अवस्था में इनका

[54] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 41
[55] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 158
[56] ऊषा बाला, भारत की प्राचीन विदुषियाँ, पृष्ठ संख्या, 107

देहावसान हो गया।[57] हिंदी राम काव्यधारा में प्रतापकुँवरि बाई की उपस्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने राम के परंपरा प्रथित स्वरूप को कतिपय नवीन रूपाकारों के साथ लोकमनोभूमि पर अवस्थित किया। इनके काव्य में कहीं–कहीं विचारात्मकता का प्राधान्य है। इनके पदों में विनय, ईश महात्म्य, मार्मिक प्रसंगों की योजना, प्रकृति–चित्रण, सत्संग पर बल, वैराग्य भाव, हठयोगी साधना आदि के विविधोन्मुखी चित्र मिलते हैं। उक्त भावों से परिपूर्ण प्रतापकुँवरि बाई ने दोहा, चौपाई आदि छंदों में विविध ग्रंथों की रचना की। मिश्रबंधुओं ने प्रतापकुँवरि बाई द्वारा रचित छोटे–बड़े कुल मिलाकर निम्नलिखित बारह ग्रंथों का नामोल्लेख किया है–'ज्ञान सागर', 'ज्ञान प्रकाश', 'प्रताप पचीसी', 'प्रेम सागर', 'रामचंद्र नाम महिमा', 'रामगुणसागर', 'रघुवरस्नेह लीला', 'राम प्रेम सुखसागर', 'रामसुजस पचीसी', 'पत्रिका संवत् 1923 चैत्र वदी 11 की', 'रघुनाथ जी के कवित्त', 'भजनपद हरजस'। इनके अलावा परवर्ती अनुसंधाताओं ने 'प्रताप विनय', श्री हरिजस विनय और हरिजस गायन को भी प्रतापकुँवरि बाई के ग्रंथों की सूची में रखा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतापकुँवरि बाई ने राजस्थान की पृष्ठभूमि पर रामकथा को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

हरीजी रानी चावड़ा : हरीजी रानी चावड़ा जी का जन्म गुजरात प्रांत में एक प्रसिद्ध ठाकुर परिवार में हुआ था। मारवाड़ के रारधरा प्रांत के राणा की पुत्री होने के कारण उन्हें रारधरी रानी के नाम से भी पुकारा जाता है। ये जोधपुर के महाराजा श्री मानसिंह जी की दूसरी पत्नी थीं। 'ये बहुत सुघर सुजान रानी थीं महाराज इनको बहुत चाहते थे और इन्हीं से उनके इकलौते पुत्र महाराज कुमार छत्रसिंह जी का जन्म हुआ था।[58] स्वयं महाराज काव्य रसिक थे तो उनके सत्संग से रानी जी को भी कविता और गान विद्या में अच्छा अभ्यास हो गया था और ये इन बातों से गुण ग्राही महाराज को दूसरी रानियों से अधिक रिझा लिया करतीं थीं। रानी जी के कुछेक ख्याल या राग हमें प्राप्त हुए हैं, किंतु कोई संग्रह प्राप्त नहीं हुआ। मुंशी देवी प्रसाद ने अपनी महिला मृदुबाणी में इनका साल संवत 1876 स्वीकारा है जो ईस्वी सन् 1819 ठहरता है।

[57] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 57
[58] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 129–130

(ख)

साहित्य में जीवन

साहित्य में जीवन

'साहित्य में जीवन' स्त्री रचनाकारों की उन वैयक्तिक भावानुभूतियों की गहराई की पड़ताल है जो उनके साहित्य में दृष्टिगत होती हैं। सैंकड़ों वर्षों के हिंदी साहित्य में मीराँबाई के अतिरिक्त उमांबाई, झीमाचारिणी, गंगाबाई, रत्नावली, कविरानी चौबे, रसिकबिहारी बनीठनी जी, ताज़ बीबी, प्रवीणराय पातुरि और रूपमति बेगम जैसी कई रचनाकार हुई हैं जिन्होंने स्वरचित साहित्य में भक्तिभाव से अलग अथवा उसकी आड़ में अपनी वैयक्तिक अनुभूति को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है; परंतु एक हजार वर्षों के हिंदी साहित्य ने मीराँबाई के अतिरिक्त किसी और कवयित्री की पीड़ा नहीं सुनी। वह भूल गया कि एक स्त्री समाज में बेटी, बहन, बहु, बुआ, देवरानी, जिठानी, चाची, फूफी, काकी, ताई जैसे कई संबंधों का निर्वाह एक साथ कर रही होती है जिनकी अपनी कुछ कठिनाईयाँ होती हैं। उन्होंने बिसरा दिया कि कोई पति यदि अपनी धर्मपत्नी को छोड़कर चला जाए या युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो जाए तो तत्कालीन समाज के लोग उसके द्वारा त्यागी गई या उसकी विधवा पत्नी के साथ किस प्रकार का व्यवहार रखेंगे ? उसे सुध नहीं रही कि तद्युगीन समाज में यदि कोई विवाहित स्त्री, पुत्र को जन्म नहीं देती तो घर–परिवार व समाज में उसकी क्या गति होती है ? उसका (हिंदी साहित्येतिहास) ध्यान इस ओर भी नहीं गया कि एक पत्नी का स्वाभिमान अपने पति को वीरगति को प्राप्त होते हुए तो देख सकता है लेकिन यह स्वीकार नहीं कर सकता कि वह किसी और पुरूष से गठबंधन कर ले। हिंदी साहित्येतिहास की वृहत्तर परंपरा में यह तो दृष्टित होता है कि मीराँबाई जैसी कवयित्री को किसी राजपरिवार की कुलवधु होने का क्या–क्या दंड भोगना पड़ा लेकिन यह दीख नहीं पड़ता कि कोई कवयित्री अपने कुलवधुत्व को भगवान से भी दूषित नहीं होने देना चाहती। हिंदी साहित्य की तीक्ष्ण मति से यह भी बात फिसल गई कि एक प्रेमिका के जीवन में किस–किस प्रकार की समस्याएँ आ सकती हैं यदि उसका प्रेमी किसी राजा के द्वारा बंदी बना लिया जाए अथवा मार दिया जाए!

उल्लेखनीय है कि आलोच्य कालखंड में किसी रचनाकार की रचना में भक्तवृत्ति का होना उसके साहित्य की तुलना हेतु एक बहुमूल्य मापदंड माना जाता था लेकिन हिंदी साहित्येतिहासकारों ने इस बात को नज़रअंदाज कर दिया कि एक भिक्षुक को भिक्षा प्राप्त करने में किन–किन पीड़ाओं और मर्मांतक अनुभवों से गुजरना होता है ? गौरतलब है कि उपरोक्त वर्णित सभी प्रकार की समस्याओं से जिन कवयित्रियों ने लोहा लिया है उनकी अभिव्यक्ति उनके काव्य में सशक्त रूप से हुई है। हिंदी साहित्य के अनछुए पहलुओं पर न केवल उन्होंने कलम फिराई है वरन् अपनी गहरी अनुभूति से हमारे समक्ष तत्कालीन समाज व अपने जीवन के व्यवधानों का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है।

उल्लेख्य है कि हिंदी साहित्येतिहास में अबतक अनेक संत भक्त, कृष्ण भक्त और रामभक्त रचनाकार हुए हैं जिन्होंने भक्ति मार्ग में आई कई बाधाओं को सहर्ष स्वीकार कर उन्हें परीक्षा स्वरूप ग्रहण

किया है; लेकिन एक भी ऐसा भक्त कवि दिखाई नहीं देता जिसने परमसत्ता से अपनी सामाजिक दुर्दशा बयां की हो। समाज में व्याप्त भक्तों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया हो अथवा समाज द्वारा भक्तों पर किये गए अत्याचारों व उसकी संवेदनहीनता को कलमबद्ध किया हो। इस संबंध में संत **उमांबाई** एक भिन्न कोटि की संत सिद्ध हुई हैं। उन्होंने अपने काव्य में अपनी भिक्षुक स्थिति का निसंकोच वर्णन किया है। उनका 'वैयक्तिक' उनके काव्य में उभरकर सामने आ जाता है। वे बतलाती हैं कि उनके भिक्षुक नियम के अनुसार वे एक दिन में केवल पाँच घरों से भिक्षा मांग सकती हैं और उन घरों से जो मिले वही भिक्षुक का प्राप्य है। भिक्षु नियम की इस मर्यादा के अनुसार उन्हें कभी–कभी पाँच घरों से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में वे भूखी–प्यासी हाट बाज़ार में पड़ी रहती हैं लेकिन इस भावहीन संसार में उनकी चिंता करने वाला कोई दिखाई नहीं देता। तब उन्हें आभास होता है कि प्रभु के अतिरिक्त इस कठोर संसार में मेरी चिंता करने वाला कोई नहीं है। तब वे उसी परमपिता परमेश्वर से अपनी स्थिति भांपने का निवेदन करती हैं। उनके निवेदन की यह झाँकी देखिए –

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो बापुरे मोरी अवस्था लो,
जिहा जावों तिहा आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिंता लो।
हाट चौहाटा पड़ रहूँ मांग पंच घर भिच्छा,
वापुड़ लोक मोरी अवस्था कोऊ न करी मोरी चिंता लो।[59]

मध्यकाल में **मीराँबाई** एक उच्चकोटि की कृष्णभक्त हो गई हैं। वे एक ऐसे समय में उत्पन्न हुईं थी जब समाज में बाल हत्या, बाल–विवाह, बहु–विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा और घूँघट प्रथा जैसी कुवृत्तियाँ व्याप्त थीं। प्रथानुसार उनका बाल–विवाह भी सिसौदिया राजपूतों में हो गया था। दुर्भाग्यवश वे जल्द ही विधवा हो गईं, जिसके बाद उन्हें तद्युगीन समाज द्वारा प्रदत्त उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ा जो एक विधवा के लिए सुनियोजित थीं। उन्हें सिसौदिया राजपूतों के द्वारा सती होने के लिए विवश किया गया जिसका कि मीराँबाई ने पुरजोर विरोध किया। पति के अभाव में उनकी बचपन की कृष्णभक्ति अपनी चरमावस्था पर थी। उन्होंने इस बात को जड़ से अस्वीकार कर दिया कि वे एक विधवा हैं। उन्होनें गिरिधर नागर को अपना पति स्वीकार कर लिया; लेकिन सिसौदियाओं को यह केवल एक सिर्रीपन ही प्रतीत हुआ और वे मीराँबाई पर सती होने के लिए दबाव डालते रहे। अपने कुल परिवार की रोजमर्रा की कलह से आज़िज आकर उन्हें न केवल राजमहल से बहिष्कृत होना पड़ा वरन् उन्होंने समस्त जग के सामने गिरिधर नागर को अपना पति भी स्वीकार कर लिया। उनका स्पष्ट कथन था कि –

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णाँ कूयाँ।[60]

---

[59] मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ संख्या, 81
[60] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 100

गिरिधर गोपाल को अपना पति स्वीकार कर मीराँबाई तत्कालीन समाज की सती प्रथा से तो बच सकती थीं लेकिन उनके जीवित रहते सिसौदिया राजपूतों को सदा ही धन संपत्ति में बंटवारे का भय बना रहता था। दरअसल, यदि मीरां को जहर देकर या 'सती करके जलाकर मार दिया गया होता तो मेवाड़ की राजनीति में मेड़तिया राठौड़ों के हस्तक्षेप की संभावना समाप्त हो गई होती। मीराँ ने सती होने से इन्कार कर दिया था अतः जीवित मीरां मेड़तिया राठौड़ों को मेवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप का मंच उपलब्ध कर रही थी। मेड़तिया राठौड़ों की चित्तौड़ दुर्ग में उपस्थिति एवं मेवाड़ की राजनीति में उसके हस्तक्षेप के कारण राजमाता करमेती के लिए अपने पुत्र महाराणा विक्रमादित्य के नाम पर शासन का संचालन कठिन हो रहा था।[61] फिर मीराँबाई भी कृष्ण प्रेम में डूबकर और पैरों में घुँघरू बाँधकर मंदिरों में नाचा करती थीं जिससे सिसौदिया राजपूतों के स्थापित मान–सम्मान पर बट्टा लग रहा था। राणा विक्रमादित्य सिंह मीराँबाई की ऐसी संगति पसंद न करते थे। 'उन्होंने मीराबाई को बहुत समझाया और दो एक दासियों को भी इनके पास रहने का प्रबधं कर दिया। वे मीराँ को गोपाल की भक्ति तथा संतो की संगति से अलग रखने का उपचार किया करती थीं। किंतु इनके हृदय पर साधु संगति का ऐसा रंग चढ़ गया था कि लाख कोशिश करने पर भी महाराणा विक्रमादित्य सिंह इनका हृदय घर गृहस्थी की ओर न फेर सके।'[62] राणा विक्रमादित्य ने मीराँ की संगति बदलने के लिए अपनी बहन ऊदां को उसके पास भेजा। 'ऊदां ने मीरा को सलाह दी कि संतो में उठना बैठना बंद कर दो। इससे चारों ओर निंदा हो रही है। कुल की प्रतिष्ठा नष्ट हो रही है। तुम तो बड़े घराने की बहु हो तुमको यह शोभा नहीं देता।[63] मीराँ ने इस सलाह को ठुकरा दिया और कहा–

राणा ने समझाओ जाओ, मैं तो बात न मानी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, संता हाथ बिकानी।।[64]

लाख सकारात्मक प्रयासों के बाद भी जब मीराँबाई राजमहल में लौटकर नहीं आईं तब राणा विक्रमादित्य ने उन्हें जहर देकर मारने का प्रयास किया। कहा जाता है कि मीराँबाई ने वह जहर मिला कटोरा पी लिया लेकिन उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। इस घटना से गिरिधर नागर के प्रति मीराँबाई का विश्वास और दृढ़ हो गया तथा वे और अधिक विश्वास से उनकी आराधना में लीन हो गईं। अपने पदों में राणा द्वारा जहर का प्याला भेजकर मारे जाने की घटना का उल्लेख मीराँ ने बेबाकी से किया है; साथ ही राणा विक्रमादित्य को चुनौती भी दी है –

राणोजी थें जहर दियो म्हें जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराँवाणी।

[61] अरविंद सिहं तेजावत, मीरा का जीवन, पृष्ठ संख्या, 24
[62] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 60
[63] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या, 299
[64] वही, पृष्ठ संख्या, 299

लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।

अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी।[65]

उक्त घटना के पश्चात् मीराँबाई पर, राणा विक्रमादित्य का क्रोध और भड़क उठा। उसने मीराँबाई को मारने के कई और प्रयास किये, जिनमें पिटारे में साँप भेजकर मीराँ को कटवाने और कीलों की सैया पर सुलाने का प्रयत्न उल्लेखनीय है। मीराँबाई पर हुए उपरोक्त अत्याचारों का उल्लेख भी मीराँबाई ने अपने पदों में कर दिया है। उनका कथन है कि –

साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय।

न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।

x x x x x x

सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय।

साँझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।[66]

मीराँ के ऊपर होने वाले अत्याचारों का सिलसिला यहीं नहीं समाप्त होता। इसके कई सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पहलू भी हैं। मीराबाई ने अपने जीवन में कई धार्मिक स्थानों की यात्रा की और कई निर्गुणियों–सगुणियों से भी भेंट की। इसी क्रम में मीरा एक दिन मथुरा वृन्दावन की यात्रा पर निकल पड़ी। वहाँ एक दिन वे चैतन्य महाप्रभु के सात श्रेष्ठ शिष्यों में से एक जीवगोस्वामी से मिलने गईं, लेकिन जीवगोस्वामी ने कहलवाया कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते। प्रतियुत्तर में मीरा ने कहलवाया कि 'मैं समझती थी कि ब्रजभूमि में एक ही पुरूष है लेकिन आज पता चला कि नहीं, अन्य भी विद्यमान हैं।[67] मीरा के इस उत्तर से जीवगोस्वामी अभीभूत हो गए और त्वरित गति से बाहर आकर मीरा से क्षमा मांगते हुए भगवद्वार्ता की। मध्यकालीन समाज राम और कृष्ण की भक्ति में डूबा हुआ था। वल्लभाचार्य उस समय कृष्ण भक्ति के मूलाधार थे। उन्हें कृष्णभक्ति में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त थी कि उनके अनुयायियों ने उनकी पूजा करना तथा उन्हें ही आराध्य देव मान कर भजन कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया था; किंतु मीरा के गिरिधर गोपाल वल्लभाचार्य के बाल गोपाल से अलग थे। मीरा ने जिस गिरिधर की उपासना की है वह किशोर कृष्ण है जबकि वल्लभ संप्रदाय के कृष्ण अपनी बाल कलाओं के साथ भी मौजूद हैं। फिर अपने चरमोत्कर्ष पर मीरा की भक्ति में 'मूर्त्त तथा अमूर्त्त, निराकार तथा साकार और पार्थिव–अपार्थिव का अद्भुत सम्मिलन है।'[68] जबकि वल्लभ अनुयायी कभी कृष्ण के सगुण रूप से ऊपर उठ ही नहीं सके। मीराँबाई के इन्हीं वैचारिक मतभेदों के कारण उन्हें कई वैष्णवों का कोप भाजन भी बनना पड़ा और कहीं–कहीं कृष्ण की गोपी मानकर उनकी पूजा भी होने लगी। प्रसिद्ध वैष्णव नाभादास कृत 'भक्तमाल' तथा ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में

---

[65] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 107

[66] वही, पृष्ठ संख्या, 108

[67] रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 13

[68] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 126

जहाँ उन्हें भक्ति रस की प्रतीक गोपियों की अवतार माना गया है वहीं चौरासी वैष्णवन की वार्ता में उनके विषय में इस प्रकार के प्रसंगो का उल्लेख है–'एक दिन मीराबाई के श्री ठाकुरजी के आगे रामदास जी कीर्तन करते हुते, सो रामदास जी श्री आचार्य महाप्रभून के पद गावत हुते, तब मीराबाई बोली, जो दूसरो पद ठाकुरजी को गावो, तब रामदास जी ने कह्यों मीराबाईं सों, अरे **दारी**[69]! वे **रांड**[70] कौन के पद हैं। यह कहा तेरे **ख़सम को मूड़**[71] है। जा, आज से तेरे मुहणों कबहूं न देखूँगो। तब तहाँ से सब कुटुम को लेके रामदास जी उठ चले। मीराबाई ने बहुत बुलाये परि वे आये नहीं। तब घर बैठे भेंटि पठाई सोऊ फेरि दीनी और कह्यो जो **रांड** तेरी श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर ममत्व नहीं, तो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है।[72] इसी प्रकार का अपमान मीराँबाई को भक्त कृष्णदास और गोविंददास से सहना पड़ा। मीरा के जीवन की ये घटनाएँ इस प्रकार है–

'सो वे कृष्णदास एक बेर द्वारिका गये हुते, सो श्री रणछोर जी के दर्शन करिके तहाँ ते चले सो आपन मीराबाई के गाँव आये, सो वे कृष्णदास मीराबाई के घर गये तहाँ हरिवंश, व्यास आदि वैष्णव हुते। मीराबाई ने कहो जो बैठो तब कितनेक मोहर श्रीनाथ जी के देन लागी, सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं, सो ऐसे कहि के कृष्णदास उहाँ ते उठि चले।[73]

दूसरी घटना के अनुसार 'एक समय गोविंद दुबे मीराबाई के घर हुते, तहाँ मीराबाई सो भगवत वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीराबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं तब श्री गोसाईं जी ने एक श्लोक लिखि पठायो। सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायो। जब वह ब्रजवासी चल्यो सो वहाँ जाय पहुँचो ता समय गोविन्द दुबे तत्काल उठे तब मीराबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविन्द दुबे ने फिर पीछे न देखो।[74]

मीराँबाई के जीवन में घटित उक्त घटनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका जीवन एक स्त्री होने के साथ–साथ गिरिधर भक्त होने के कारण सामान्य नहीं रहा। उन्हें तत्कालीन समाज की धार्मिक शक्तियों के साथ–साथ सांस्कृतिक ताकतों से भी लोहा लेना पड़ा। संभवतः चित्तौड़ छोड़ने से पूर्व ही उन्हें इसका अनुमान हो गया था इसलिए वे उन सभी संस्कारों का विरोध करती हैं, जो स्त्री के जीवन को नरक बना देते हैं। उन्होंने उन तमाम बंधनों को नकार दिया, जो उनके जीवन को अपनी तरह चलाना चाहते थे।

---

[69] **दारी** एक प्रकार की भद्दी गाली है जो आमतौर पर उत्तर प्रदेश के पश्मिांचल में विशेषकर विवाहित स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होती है।

[70] **रांड** एक प्रकार की निंदनीय गाली है, जिसका प्रयोग उत्तर भारत में आमतौर पर उन स्त्रियों के लिए होता है जिनके पति की मृत्यु हो चुकी होती है।

[71] **ख़सम को मूड़** एक प्रकार की कहावत है जिसका प्रयोग ज्यादातर उत्तर प्रदेश के पश्मिांचल में होता है और जिसका अर्थ होता है 'किसी का सर्वस्व होना'

[72] गोस्वामी गोकुलनाथ, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ संख्या, 121

[73] वही, पृष्ठ संख्या, 137

[74] वही, पृष्ठ. संख्या. 158

'मीरा ने आज्ञाकारी बनने से इनकार किया, पिता का घर छोड़ा, ससुराल छोड़, राजपाट छोड़ा और संत बनना पसंद किया। यह एक तरह से समूचे सामंती परिवेश का परित्याग था। सामंती परिवेश आज्ञाकारिता पर टिका होता है। और आज्ञाकारिता को ही मीरा ने ठुकरा दिया।'[75] बाद में यह विरोध मीराबाई के संस्कार में ऐसे शामिल हो गया जैसे अपने समाज के तत्कालीन मूल्यों से वे आने वाले भविष्य तक परिचित हो गईं हों। यही संस्कार मीरा की कविता में उतर आया और उन्होंने काव्य के माध्यम से स्त्री पर अंकुश लगाने वाले सभी मापदण्डों को सिरे से खारिज कर दिया। इसलिए लाज–शर्म जिसे तत्कालीन समाज में स्त्री का गहना माना जाता था वह मीरा के स्वतंत्र जीवन और गिरिधरोपासना में बाधा उत्पन्न करती है (सखी री लाज बैरिन भई) इसलिए वह लोक लाज को तिनके के समान तोड़ फेंकना चाहती है (लोक लाज तिनका ज्यूँ तोर्‌यो)। उसका स्पष्ट पूछना है कि 'नयन लागे तब घूँघट कैसा। ऐसे समाज में जहाँ स्त्री को प्रश्न पूछने तक की अनुमति नहीं थी वहाँ मीरा का प्रश्न पूछना तात्कालिक व्यवस्था को खुली चुनौती ही दृष्टित होता है। वह निर्भय और निडर होकर कहती है कि 'साध संग मोहिं प्यारा लागै, लाज गई घूँघट की। उसके नैनों को गिरिधर महिमा की बान पड़ गई है। उसे ज्ञात है कि समाज इसे कभी स्वीकार नहीं करेगा। वह जानती है कि इस पर समाज उसकी अवहेलना करता है लेकिन मीरा को उसका भय नहीं है। वह कहती है कि, 'मीरा गिरधर हाथ बिकानी लोग कहैं बिगरी। और अंत में वह हमें अपनी स्वतंत्रता की खुली घोषणा करती हुई दिखाई देती है, जैसे, 'बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ या तेरा कोई नहीं रोकनहार मगन होय मीरा चली। वास्तव में 'स्त्री को लोकनिंदा या पारिवारिक कटुता या पुरूष वर्चस्व के दबावों के आगे घुटने नहीं टेकने चाहिए।...कविता गाना या भजन गाना या सत्संग में जाना मीरा के बौद्धिक या सांस्कृतिक संघर्ष का अंग है। इसी के कारण राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात आदि प्रांतो में वह बेहद लोकप्रिय हुई।[76]

मीराँबाई की भांति **बीबी ताज** भी एक श्रेष्ठ कोटि की कृष्णभक्त हो गई हैं। उनकी ख्याति इस बात में है कि एक मुस्लिम होते हुए भी उन्होंने कृष्ण की आराधना की। धर्मांतरण के उस युग में किसी स्त्री का कलमा और कुरान त्यागकर कृष्ण को अपना प्रेमी स्वीकार कर लेना किसी चुनौती से कम नहीं था। ऐसे में कृष्ण को 'दिलजानी' कहकर अपने प्रेम की निद्वन्द्व घोषणा करना ताज़ को उच्चतम पद प्रदान करता है। उनके प्रेम की बेबाक उद्‌घोषणा देखिए –

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं।।

[75] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या, 295
[76] वही, पृष्ठ संख्या, 293

श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
हूँ तो तुरकानी हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं।।[77]

हिंदी साहित्य में 16वीं शती का मध्याह्न **गंगाबाई** जैसी कवयित्री को लेकर आता है। यह वह कालखंड है जिसमें जनमानस के भीतर 'पुत्र प्राप्ति' की चाह प्रबलता से स्थापित होती है। प्रत्येक परिवार अपना वंश आगे बढ़ाने के लिए अपनी बहु से पुत्र की ही कामना करता था। बहु या स्त्री को वंश बढ़ाने में प्रतिनिधि न मानकर सहायक माना जाता था। चूँकि राजपरिवारों में सैनिक पदों पर भी पुत्रियों की नियुक्ति नहीं होती थी इसलिए राजवंशों को भी अपनी शक्ति संपन्नता हेतु पुत्रों की ही आवश्यकता होती थी। गौरतलब है कि पुरूष वर्चस्ववादी समाज ने लड़कियों के लिए शिक्षा के द्वार पहले ही बंद कर दिये गए थे, ऐसे में राजमहलों में राजनीतिज्ञों, नीतिशास्त्रियों, ज्योतिषाचार्यों के पदों पर भी पुरूषों की ही नियुक्ति होती थी। तद्युगीन समाज का अत्यंत निम्नवर्गीय किसान परिवार भी खेती में हाथ बटाने के लिए पुत्र की ही इच्छा रखता था; खेती जैसे भारी–भरकम और श्रमजीवी कार्य के लिए पुत्रियों को अनुपयुक्त माना जाता था। भारतीय संस्कारों में भी लड़कियों के साथ भेदभाव किया जाता था। जन्म से लेकर मृत्यु तक (गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूणाकर्म, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केसान्त, समावर्तन, विवाह, अन्त्येष्टि) के सभी संस्कार पुत्र जन्म को ध्यान में रखकर बनाए गए थे। जिन घरों में पुत्र का जन्म होता था उन घरों में उत्सव का माहौल होता था। पुत्र जन्म पर बधाई गीत गाए जाते थे, नामकरण और जनेयू संस्कार होता था। पिता अपने सगे–संबंधियों को दावत या भोज दिया करता था, जबकि पुत्री के जन्म पर उपरोक्त कुछ भी नहीं होता था।

पुत्र जन्म को लेकर एक व्याधि स्त्री समाज में भी व्याप्त थी। पुत्रों को लेकर स्त्रियों के मध्य भी ईर्ष्या–द्वेष उत्पन्न हो जाया करते थे। जिस स्त्री के पुत्र होता था उसे स्त्री समाज में बड़ी मान–मर्यादा प्राप्त थी। उसे सबका प्यार, लाड़ व दुलार सहज प्राप्त था और उसे सौभाग्यशाली समझा जाता था। पुत्र जन्म को लेकर स्त्रियों के मध्य उत्पन्न द्वेष इस स्तर तक बढ़ जाया करता था कि एक पुत्रहीना स्त्री के साथ दूसरी स्त्री उठना, बैठना व वार्तालाप करना पसंद नहीं करती थी। ऐसे में मध्ययुगीन जनमानस किसी बाँझ स्त्री के साथ किस प्रकार का व्यवहार करता होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। स्त्री विरोधी उक्त स्थितियों ने समाज में 'दूधपीती' जैसी कुप्रथाओं को जन्म दिया जिसमें बेटियों को जनमते ही मार दिया जाता था। स्वयं माताएँ ऐसे समय पर मूक, बधिर बन जाया करती थीं या यूँ कहें कि उनके सभी अधिकार पुरूष समाज द्वारा निरस्त कर दिये जाते थे। कुल मिलाकर पुत्र प्राप्ति की यह कुमार्गी चाह

[77] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 72

स्त्री व पुरूष समाज के लिए एक ग्रंथि बन गई थी जिसका एक परोक्ष उदाहरण हम कवयित्री गंगाबाई के काव्य में पाते हैं।

कवयित्री गंगाबाई पुत्र जन्म के बाद अत्यंत आनंदित हैं; लेकिन यह आनंद केवल पुत्र–प्राप्ति का नहीं है वरन् इस बात का है कि अब वे अपनी सखियों के तानों से बच सकेंगी। अब उन्हें किसी के कटु वचनों को सहना नहीं पड़ेगा तथा निश्चिंत होकर वे अपने सहज जीवन में लौट सकेंगी। उन्हें इस बात की भी खुशी है कि उन्होंने अपनी सखियों से 'पुत्र–प्राप्ति' की जो शर्त रखी थी उसे जीतने में वे सफल हुईं। अब वे भी अपना उदित सौभाग्य लेकर समाज में मान–सम्मान की अधिकारिणी होंगी। गंगाबाई की यह स्त्रीजन्य स्वीकृति देखिए –

रानी जू सुख पायो सुत जाय
बड़े गोप वधून की रानी हंसि–हंसि लागत पाय।।
बैठी महरि गोद लिये ढोटा आछी सेज बिछाय।
बोलि लिये ब्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखी आय।।
जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु चुकाइ।
ताते लहु चौगुनी हम पै कहत जाइ मुसकाइ।।
हम तो मुदित भये सुख पायो चिरजीवो दोउ भाइ।
श्री विट्ठल गिरधरन कहत ये बाबा तुम माइ।।[78]

उल्लेख्य है कि हिंदी साहित्य में अब तक कोई ऐसा रचनाकार दृष्टित नहीं होता जिसने अपने मित्र की पीड़ा से व्यथित होकर किसी काव्य की रचना की हो; लेकिन अपवाद स्वरूप स्त्री रचनाकारों में अवश्य दो मित्रों की कथा प्राप्त होती है जिसमें एक की भावानुभूति दूसरे की अनुभूति बन जाती है तथा एक की पीड़ा, दूसरे के दर्द का कारण साबित होती है। स्त्री लेखन में कवयित्री झीमाचारिणी और रानी उमादे का संबंध मित्रता की इसी पराकाष्ठा पर विचरण करता है।

दरअसल, **झीमाचारिणी** एक उच्चकोटि की वीणा वादक थीं। उन्होंने एक दिन अपनी वीणा का चमत्कार कोटा राज्य के राजा अचलदास के समक्ष प्रस्तुत किया। झीमा की वीणा का स्वर सुनकर राजा अचलदास मंत्रमुग्ध हो गए। उन्होंने झीमा चारिणी से मन चाही वस्तु मांगने के लिए कहा। इस पर झीमा ने अपने लिए राज्याश्रय और अपनी बालसखी उमादे के लिए राजा अचलदास से विवाह मांगा। राजा ने निसंकोच दोनों इच्छाओं को सहर्ष स्वीकार कर लिया। विवाह पश्चात् रानी उमादे को यह देखकर बड़ा दुख हुआ कि उनके पति तो सदा अपनी पहली रानी लालादे (चित्तोड़ के राणा मोकल जी की बेटी) के वश में रहते हैं और उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं। परिणामस्वरूप रानी उमादे ने कई वर्ष बड़े शोक संताप

[78] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 159

से काटे। अपनी सखी की यह दशा देखकर झीमा का मन भी बिलखने लगा। एक दिन जब दुख का पारावार न रहा तब हिम्मत जुटाकर उमादे ने सखी झीमा को उलाहना देते हुए कहा कि 'बाई तुम कोई उपाय क्यों नहीं करती हो! तुम्हारी बीन सुनकर तो जंगल के भागते हुए हरिण भी खड़े रह जाते थे! राव जी को क्यों नहीं सुनाकर मेरे बस में कर देती हो ?'[79] यह सुनकर झीमा का स्वाभिमान हिलोंरें मारने लगा। भला वह अपनी वीणा की शक्ति को निष्प्रभावी कैसे स्वीकार कर सकती थी। उसने राजा को उमादे से मिलाने के लिए तुरंत एक काल्पनिक कथा का गठन किया और अपनी सेविकाओं के द्वारा नगर में यह बात फैला दी कि 'रानी उमादे के पास रत्नों का एक ऐसा उत्तम हार है कि वैसा लालादे के पास न होगा'[80] यह समाचार जब रानी लालादे के पास पहुँचा तो नारी सुलभ चांचल्य के कारण उसने उमादे से वह हार मांगा। लेकिन उमादे ने यह शर्त रखी कि यदि रानी लालादे राव राजा अचलदास को एक रात मेरे भवन मे रहने दें तो मैं वह हार लालादे को दे दूंगी। रानी लालादे ने उमादे की यह बात स्वीकार कर हार ले लिया और एक दिन राव साहब के कानो में यह बात बाँधकर उमादे के भवन में भेजा कि 'आप कल रात को सांखली के महल में जाना परंतु यौं हीं बैठकर चले आना, कमर मत खोलना (अर्थात् सैनिक वेश परिवर्तित मत करना)।'[81] हुआ भी कुछ ऐसा ही। एक दिन राजा राव अचलदास रानी उमादे के विलास भवन में आए। उन्हें देखकर उमादे की खुशी की सीमा न रही। उमादे ने भावातिरेक में राव राजा से पूरे दिन अपने मन की बातें कीं। जब आधी रात हुई तो राजा जी कमर बाँधे ही शयन सैय्या पर लेट गए। जब उमादे राव राजा के चरण दबाकर अपने विवाह सुख की प्राप्ति कर रही थी तभी झीमा ने अपनी सखी के सुख से खुश होकर 'असावरी राग' में यह वीणा गायन किया–

धिन उमादे सांखली, तै पिय लियो मुलाय।
सात बरसरो बांछड़यो, तो किम रैन बिहाय।।
किरती माथे ढल गई, हिरणी लूबाँ खाय।
हार सटे पिय आणियों, हँसे न सामो थाय।।
चनण काठरो टोलियो। किस्तूरियाँ अवास।
धण जागे पिय पौढ़यो। बालू औ घरबास।।
अचल एराक्या न चढ़े, रोढा रो असवार।
लाला लाल मेवाड़िया, उमा तीज बल भार।।[82]

[79] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 29
[80] वही. पृष्ठ संख्या, 29
[81] वही, पृष्ठ संख्या, 29
[82] वही, पृष्ठ संख्या, 30

(अर्थात्, हे सखी उमादे तू धन्य है जो तूने आज प्रियतम को क्रय कर लिया। सात बरस लंबा यह वियोग काल तूने कैसे व्यतीत किया है! इन सात वर्षों में तेरे माथे की कृतिका ढल गई है, मृगशिरा उदित है। तुम्हें हार के बदले तुम्हारा प्रिय प्राप्त हुआ है पर अभी तुम दोनों के बीच हास परिहास नहीं फूटा है। राजा जी हेतु तेरे भवन में चंदन से सुसज्जित पलंग लगा हुआ है और कस्तूरी की गंध चारों ओर फैली हुई है। तेरा तो भाग्य जागा हुआ है जो तेरा प्रिय तेरे समीप लेटा हुआ है। लालादे मेवाड़ की रत्न है पर उमा के सौंदर्य का बल उससे तिगुना है)।[83] आश्चर्य है कि श्रृंगार से ओत–प्रोत असावरी राग सुनकर भी राव राजा ने अपनी कमर नहीं खोली। जब सुबह हो गई तो लालादे की सेविका राव राजा को ले जाने आ खड़ी हुई। इस पर झीमा को बहुत रोष हुआ और उसने राव राजा पर बिगड़कर कहा कि 'बड़े ठाकुर तुम को तो लालाजी ने बेच दिया है और हमने एक हार में मोल लिया है। अब हमारा हार भी गया और तुम भी गए तो हमारा क्या काम निकला।'[84] तब अचलदास जी ने रोष करके पूछा कि क्या हमको लाला मेवाड़ी ने बेच दिया है ? इस पर झीमा ने हाँ कहते हुए अपने दोहों और गायन शैली के माध्यम से वह सब सौदा कह सुनाया जो उमादे और लालादे के बीच हुआ था।

लाला मेवाड़ी करे, बीजे करे न काय।
गायो झीमा चारणी, ऊमा लियो मुलाय।।[85]

राव राजा अचलदास को यह बात बहुत अखरी की एक हार हेतु लालादे ने उन्हें उमादे के हाथों बेच दिया है। इस पर वे लालादे पर बिगड़कर उमादे से बोले यदि तुम कहो तो अब मैं लालादे के भवन में नहीं जाऊँगा, लेकिन उमादे ने उन्हें उनका वचन याद दिलाते हुए ऐसा न करने को कहा और उनसे यह वचन ले लिया कि जब भी मेरी सेविका आपको बुलाने आएगी बस आप तब कृपा कर आ जाना। राव राजा उमादे को यह वचन देकर चले गए। इस तरह हिंदी साहित्येतिहास के पन्नों पर दो मित्रों की आत्मानुभूति एक ही कलम के द्वारा और एक ही प्रकार के शब्दों से एक साथ उकेरी गई। हिंदी साहित्य में ऐसा काव्य लेखन दुर्लभ है।

विशेष्य है कि ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक कि अधिकांश कवयित्रियों ने संत भक्तों की भांति पतिव्रता स्त्री को ही श्रेष्ठ माना है। कबीरदास सहित लगभग सभी पुरूषों संतो ने स्त्री के पवित्रता पर अधिक जोर दिया है। उनके लिए सभी नायिकाओं में स्वकीया नायिका और सभी स्त्रियों में पतिव्रता स्त्री श्रेष्ठ है। नारी में पतिव्रता का गुण होने पर वे उसके रूप, रंग, चाल–ढाल को भी नज़रअंदाज करने के लिए तैयार हैं। उनका कथन है कि 'पतिव्रता सोई भली, काली कुचित कुरूप/ पतिव्रता के नाम पर, वारूँ

[83] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 29
[84] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 31
[85] वही. पृष्ठ संख्या, 31

कोटि सरूप।[86] कबीरदास की दृष्टि में पतिसेवा ही स्त्री का जीवन धर्म है। यदि कोई स्त्री अपने पतिधर्म का पालन नहीं करती तो उसका जीवन व्यर्थ है।

तद्युगीन समाज में पतिव्रता स्त्री का बोलबाला होने के कारण हिंदी साहित्य की लेखिकाओं के लेखन में भी हम पतिधर्म का पालन करने वाली स्त्री को श्रेष्ठ पाते हैं। स्वयं लेखिकाएं भी ऐसी हुई हैं, जिन्होंने अपने पत्नीधर्म का पालन बड़ी पवित्रता से किया है। इनमें प्रसिद्ध कवि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली, प्रतापकुँवरिबाई और लोकनाथ चौबे की पत्नी कविरानी चौबे का उल्लेख किया जा सकता है।

कवयित्री रत्नावली ने अपने काव्य में नवविवाहिता स्त्री की उस मर्मांतक पीड़ा को लेखनी प्रदान की है जिसके अंतर्गत पति के त्यागे जाने के बाद एक स्त्री का जीवन शमशान के समान हो जाता है। दरअसल, रत्नावली का विवाह सुप्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास के साथ हुआ था। विवाहोपरांत दंपतिगण बड़े हर्षोल्लास से जीवन व्यतीत कर रहे थे; लेकिन एक दिन तुलसीदास की अनुपस्थिति में वे अपने भाई के साथ अपने मायके (सोंरो) लौट आईं। जब तुलसी घर लौटे और उन्हें ये वाक्या विदित हुआ तो वे सभी चराचर वस्तुओं की उपेक्षा कर रत्नावली के पास दौड़ गए। कहा जाता है कि वे, घनघोर बरसाती काली रात में यमुना नदी के किनारे पहुँचे। उफनती यमुना नदी में बह कर आ रही एक लाश को इन्होंने लकड़ी का लट्ठा समझा और उसपर बैठकर नदी पार की। तदोपरांत रत्नावली के घर के पास एक पेड़ से एक साँप लटका हुआ था जिसे उन्होंने रस्सी समझा। उस रस्सी रूपी सर्प को पकड़कर वे रत्नावली के शयन कक्ष में पहुँचे। तुलसीदास की इस बेहयाई और असमयी आतुरता को देखकर उन्होंने उन्हें निम्नांकित शब्दों में खूब धिक्कारा –

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक–धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहहूं मैं नाथ।
अस्थि चर्ममय देह मम, तामे ऐसी प्रीती।
ऐसी जो श्रीराम महम, होती न भवभीती।।

अपनी स्त्री की ऐसी फटकार सुनकर तुलसी का वर्चस्ववादी मन जाग उठा और उन्होंने सदा के लिए पत्नी का परित्याग कर दिया। फिर उन्होंने अपना समग्र ध्यान रामभक्ति में लगा दिया। इस घटना के बाद मछली के समान फड़फड़ाती रत्नावली आर्तनाद करने लगी। वह क्षण–प्रतिक्षण, दिन–प्रतिदिन और साल दर साल पति की प्रतीक्षा में आँखें बिछाए रहती लेकिन उनका दूर–दूर तक कुछ पता न चलता। ऐसे में वे अपने भाग्य पर रोती हुई कहती हैं –

दीनबंधु के घर पली, दीन बंधु कर छांह।
तऊ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बांह।।[87]

---

[86] श्यामसुन्दर दास (संपा.), कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 63

उल्लेखनीय है कि उनके पिता का नाम दीनबंधु था। नामानुसार उनकी पुत्री के वे सबसे बड़े बंधु हुए; तब उनकी पुत्री को किसी प्रकार की दयनीयता का सामना नहीं करना चाहिए! परंतु सब दीनो के बंधु दीनबंधु पाठक की पुत्री की स्थिति ही आज अति दीन–हीन बनी हुई है।

मध्यकालीन समाज में पति अपनी पत्नी का स्वाभिमान होता था। पत्नी का साज–श्रृंगार, सजना–सँवरना सब, पति के लिए ही होता था; लेकिन रत्नावली की स्थिति किसी विधवा सरीखी हो गई है। उन्हें पति प्रेम के अभाव में सभी प्रकार के प्रसाधन निरर्थक प्रतीत हो रहे हैं और अपना जीवित शरीर भी भार रूप प्रतीत हो रहा है। उनक कथ्य है –

असन बसन भूषन भवन, पिय बिन कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन छिन जिय अकुलाय।।[88]

पति द्वारा त्यागी जाने के बाद रत्नावली को रह–रहकर ग्लानिबोध होता है कि उसने क्यों असमय आए पति की उपेक्षा की ? क्यों उपालंभ भरी वाणी में उनके हृदय को क्षत–विक्षत किया। अपनी उस भूल पर पछताते हुए वह अपने प्रिय से कहना चाहती है –

नाथ! रहौंगी मौन हो धारहु पिय जिय तोस।
कबहूँ न दऊँ उराहनो, दऊँ न कबहूँ दोष।।[89]

मध्यकालीन लेखिकाओं में **प्रतापकुँवरिबाई** भी उच्चकोटि की पतिभक्त हो गई हैं। इनका विवाह मारवाड़ के महाराज मानसिंह से हुआ था। गौरतलब है कि राव मानसिंह की कुल तेरह रानियाँ थीं जिनमें पाँच भाटी रानियाँ थीं। कवयित्री प्रतापकुँवरि तीसरे नंबर की भाटी रानी थी। उस समय 'भाटी स्त्रियाँ अपने सौंदर्य तथा स्वास्थ्य के लिए प्रसिद्ध थीं; इसी आकर्षण ने साधारण भाटी वंश की पाँच कन्याओं के मस्तक पर एक ही सुहाग रेखा खींची थी।[90] राजा मानसिंह जैसा वीर योद्धा व आकर्षक पुरूष पाकर कवयित्री प्रतापकुँवर का भाग्य जागृत हो गया। अपने पति की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए वह कहती हैं –

मान महीपत हम पति पाए। कारज सरे सरब मन भाए।
ईस स्वरूप जान पति साचा। सेवा कीनी मनसा वाचा।।[91]

मध्यकालीन नारी का जीवन कंकरीली, पथरीली राहों और कांटेदार झाड़ झंकारों से भरा हुआ था। आलोच्य कवयित्री को भी उन्हीं मार्गों से होकर गुजरना था। नतीजतन महाराजा मानसिंह की असमय मृत्यु हो गई और लेखिका गहरे शोक में डूब गई। शोक में डूबी हुई प्रतापकुँवरिबाई को वे दिन याद आते हैं जब कोई

---

[87] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 181
[88] वही, पृष्ठ संख्या, 181
[89] वही, पृष्ठ संख्या, 181
[90] वही, पृष्ठ संख्या, 227
[91] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 47

विपदा पड़ने पर उनके पति मानसिंह उन्हें धीरज बंधाते थे; लेकिन आज उनके लिए समग्र संसार व्यर्थ हो गया है। पति बिछोह में उनकी आँखों से निरंतर अश्रुपात हो रहा है। यथा –

पति बियोग दुख भयो अपारा। सूनो लगत सकल संसारा।।
कछु न सुहाय नैन बहै नीरा। पति बिन कोन बँधावे धीरा।।[92]

पतिभक्तों में एक अन्य नाम कवयित्री **कविरानी चौबे** का आता है। ये सच्ची हिंदू महिला थीं। विवाह पूर्व इन्होंने अपने पति के साथ शिव–पार्वती जैसा जीवन व्यतीत करने के स्वप्न देखे थे; लेकिन उनका यह स्वप्न तब बिखरने लगा जब इनके पति राव राजा बुध सिंह जी के साथ युद्ध में शामिल होने दिल्ली जाने लगे। उस समय दिल्ली पर मुगलिया सल्तनत का झण्डा बुलंद था और राजगद्दी को लेकर परस्पर युद्ध छिड़े हुए थे; साथ ही विवशतावश धर्मांतरण का भय भी जनमानस में व्याप्त था। ऐसे में अपने पति लोकनाथ चौबे के दिल्ली जाने की ख़बर पाकर कवयित्री चौबे आश्चर्यचकित हो गईं। उन्हें पति बिछोह के साथ–साथ उनके मुस्लिम हो जाने का भय भी सताने लगा। अपने इस भय और शंका की अभिव्यक्ति उन्होंने लोकनाथ चौबे को लिखे गये इस पद्य में की है। यथा –

मैं तो यह जानी ही कि लोकनाथ पाय पति,
संगही रहौगी अरधंग जैसे गिरिजा।।
एते पै विलक्षन ह्वै उत्तर गमन कीनो,
कैसे कै मिटत ये बियोग बिधि सिरिजा।।
अब तो जरूर तुम्हें अरज करेही बनै,
वेहु द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरि जा।।
जोपै तुम स्वामी आज अटक उल्लंघ जैहो,
पाती मांहि कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरिजा।।[93]

उक्त सवैया में एक पत्नी की कोमल भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति हुई है। पतिधर्म का सख्ती से पालन करने वाली कवयित्री ने बड़े ही विनम्र भाव से कहा है कि 'अब तो जरूर तुम्हें अरज करेही बनै' और अत्यंत कातर भाव से अपने भय का प्रकटीकरण किया है, 'जोपै तुम स्वामी आज अटक उल्लंघ जैहो पाती मांहि कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरिजा'। कविरानी चौबे के उक्त भावों में गहरी पतिभक्ति की छाप सहज लक्षित होती है।

पतिभक्ति में एक बड़ा नाम **ठकुरानी काकरेची** जी का आता है। वे एक समझदार व साहसी पतिभक्त थीं। उनकी बुद्धिमता और चतुराई का प्रमाण उनके पति की मृत्यु की घटना से लग जाता है। दरअसल, इनके ससुर चौहानराव बल्लू जी सुपुत्र नरहरिदास सहित बादशाह शाहजहाँ की सेवा में रहते थे।

[92] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 48
[93] वही, पृष्ठ संख्या, 01

शाहजहाँ के पुत्रो के बीच राज्य हेतु ईस्वी सन् 1714 से 1716 के मध्य कई लड़ाईयाँ लड़ी गईं जिनमें की किसी लड़ाई में युद्ध करते नरहरिदास जी वीरगति को प्राप्त हो गए थे। अपने पति की मृत्यु की सूचना पाकर ये शोक में डूब गईं थीं; किंतु उसी समय एक नाई जिसकी सूरत इनके पति से मेल खाती थी इनके घर पर आकर इनके पति होने का दावा करने लगा। वह कहने लगा कि मेरे मरने की बात झूठी उड़ाई गई है। मैं जीवित हूँ और तुम लोगों का शोक निवारण करने के लिए बिना छुट्टी लिए अकेला आया हूँ। काकरेची जी के पिता अगराजी जी बड़े भोले से मानुष थे। पुत्र को अपनी आँखों के आगे जीता पाकर उफनती हुई भावना को रोक न सके। उन्होंने तुरंत ही उसका कहना मान लिया और अपनी पुत्री को कहने लगे कि नरहरिदास जी लौट आए हैं, तुम अपना भेष बदल डालो। मरे की बात बैरियों ने झूठी ही उड़ा दी थी। पिता की इस बात पर और नकली नरहरिदास की वेशभूषा पर काकरेची जी ने विश्वास नहीं किया। उन्हें अपने पति की शूरवीरता पर पूर्ण विश्वास था। वे यह मान ही नहीं सकती थीं कि उनके पति युद्ध में जीते बगैर, बिना सैन्य दल के लौट सकते हैं। जब पिता ने जोर देकर कहा तो उन्होंने चिक़ में से देखकर उस नकली नरहरिदास को यह दोहा कहा–

धर काली का कर धरा, अध काला अगरेस।
नरहर नेजाँ बाजिया, क्यों पलटाऊँ बेस।।[94]

अर्थात् मेरे पति युद्ध में शाहजहाँ के पुत्रों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। इसलिए मैं अपना वेश नहीं बदलूँगी। यह सुनकर नकली नरहरिदास चला गया और काकरेची जी ने अपनी काव्य कुशलता से अपने और अपने परिवार को भावी आपदा से बचा लिया।

व्याख्येय कालखंड में कवयित्री **रसिकबिहारी बनीठनी** जी उन गिनी–चुनी कवयित्रियों में से हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से मध्ययुगीन समाज में नारी की परवशता को प्रकट किया है। तत्कालीन समाज में यदि किसी नारी के साथ कोई घटना घट जाती थी तो प्रत्येक परिस्थिति में नारी को ही जिम्मेदार ठहराया जाता था। बड़े–बड़े राजवंशों की मान–मर्यादा को बचाने का दारोमदार स्त्री पर ही था। समाज में स्त्री की हानि उसके कुल या वंश की हानि मानी जाती थी। ऐसे में राजवंशों की कुलवधुओं का जीवन अति दुष्कर था। किसी भी आपत्तिजनक घटना की कीमत उन्हें अपने जीवन को नष्ट कर या राज्य से बहिष्कृत होकर चुकानी पड़ सकती थी। कवयित्री रसिकबिहारी बनीठनी जी कृष्ण काव्य के माध्यम से वर्चस्ववादी समाज में कुलवधु के दुष्कर जीवन की एक झांकी प्रस्तुत की है। देखिए –

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ।
होरी खेलत नंद लाडिलो क्यों कर निबहन पाऊँ।।
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल–वधु कहाऊँ।

[94] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृ. सं. 02

जो छुवें अंचर 'रसिकविहारी' धरती फार समाऊँ।[95]

गौरतलब है कि जब कोई कवयित्री अपने पूज्य कृष्ण को आधार बनाकर 'धरती फार समाऊँ' जैसी बात कह सकती है तो आलोच्य काल में स्त्रियों की दुर्दशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

अपने प्रेम की स्वच्छंद स्वीकृति करने वालों में कवयित्री **प्रवीणराय पातुरि** का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। वे ओरछा नरेश इन्द्रजीतसिंह से अगाध प्रेम करती थीं; स्वयं राजा इंद्रजीतसिंह भी प्रवीणराय से प्रगाढ़ प्रीत रखते थे। कवयित्री के प्रेम की पराकाष्ठा कवयित्री द्वारा राजा इंद्रजीतसिंह पर अकबर द्वारा लगाए गए अर्थदण्ड को माफ़ कराने से पता चलती है। दरअसल, प्रवीणराय पातुरि साहित्य सृजन और वीणा वादन में सिद्धहस्त थीं। उनकी काव्य साधना और वीणा वादन के सुर की प्रसिद्धि यहाँ तक फैल गई थी कि अकबर बादशाह को भी प्रवीणराय को देखने सुनने का लोभ हो आया। उन्होंने राजा इन्द्रजीत सिंह के पास संदेश भेजकर प्रवीणराय को उनके दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया। इस हुक्मनामे से सारा दरबार सक्ते में आ गया। हारकर प्रवीणराय ने निम्न सवैया कहा और संपूर्ण सभा से राय मांगी –

आई हों बूझन मंत्र तुम्हैं निज स्वासन सौं सिगरी मति गोई।
देह तजों कि तजों कुल कानि हिये न लजों लजिहैं सब कोई।।
हाथ रहै परमारथ स्वारथ चित्त विचारि कहौ पुनि सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभु की प्रभुता अरू मोर पतिव्रत भंग न होई।।[96]

प्रवीणराय के उक्त प्रश्नों को सुनकर किसी ने भी संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। तब भावावेश में आकर राजा इंद्रजीतसिंह ने अकबर की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया। नतीजतन बादशाह अकबर ने ओरछा नरेश की इस धृष्टता के लिए उनपर एक करोड़ मूल्य का अर्थदंड लगाया और प्रवीणराय को भी भेजने के लिए कहा। हारकर इंद्रजीत सिंह को अपनी प्रेयसी को भेजना ही पड़ा। उन्होंने प्रवीणराय के साथ कवि शिरोमणि केशवदास को भेजा और कहा कि इसे छोड़कर मत आना और बादशाह को अप्रसन्न मत होने देना। आगरा पहुँचकर जब कवि शिरोमणि साथ आए मंत्रियों से सलाह मशविरा कर रहे थे तो प्रवीणराय ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि आप परिश्रम न कीजिए मुझे ही भेज दीजिए मैं मुजरे के साथ ही बिदा होने का प्रबंध भी कर लूँगी।

दरबार में बादशाह अकबर प्रवीणराय की नृत्यकला और काव्यकला से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसने प्रवीणराय को अपने ही दरबार में शरण देने की बात कही। इसपर कवयित्री ने तत्क्षण अकबर बादशाह को इन पंक्तियों में निवेदन किया–

बिनती रायप्रवीन की, सुनिए साह सुजान।
झूँठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान।।[97]

---

[95] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 106
[96] मुंशी देवीप्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 82

(अर्थात् हे साह सुजान मैं पहले ही ओरछा नरेश से अपने मन का आदान प्रदान कर चुकी हूँ ऐसे में यहाँ रहकर किसी अन्य से मन का लेन–देन असंभव है, फिर झूठा खाने की परंपरा बारी, बायस और स्वान की होती है, बादशाह अकबर को यह शोभा नहीं देता।) बादशाह कवयित्री की इस विनम्रता से प्रसन्न हुआ और उसने यह सुनते ही प्रवीणराय को ओरछा लौटने की अनुमति दे दी। बाद में केशवदास ने बीरबल आदि की सहायता से राजा इंद्रजीत सिंह पर लगा हुआ अर्थदंड भी क्षमा करा लिया।

अपनी प्रेमानुभूतियों की गहराई से ओत–प्रोत एक कवयित्री **रूपमति बेगम** भी हो गई हैं, जिन्होंने मालवा नरेश बाज़बहादुर से गहरा प्रेम किया था। बाजबहादुर भी रूपमति को अपनी बेगम स्वीकारते थे। अकबर के साथ एक युद्ध में मालवा नरेश बाजबहादुर वीरगति को प्राप्त हो गए। उनकी मृत्यु पश्चात् बेगम रूपमति का जीवन घोर अंधकार से आच्छादित हो गया। उनके वियोग में उन्हें अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगा। अपने जीवन का कुछ प्राप्य न पाकर उन्होंने एक दिन निम्नांकित दोहा कहकर मृत्यु का वरण कर लिया और अपनी आत्मा को अपने प्रिय की आत्मा में विलीन कर दिया। यथा –

रूपवती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज।
सो अब जियरा तजत है, यहाँ नहीं कुछ काज।।[98]

गौरतलब है कि आलोच्यकाल की शेष कवयित्रियों में उच्चकोटि की कृष्णभक्ति, रामभक्ति, शिवभक्ति और राधा भक्ति तो दृष्टित होती है लेकिन उल्लिखित कवयित्रियों जैसी आत्मानुभूति, स्वयं के जीवन के गहरे अनुभव और गहरी संवेदना के अंश कम ही दिखाई देते हैं; इसलिए यहाँ मुक्ताबाई, पार्वतीबाई, चंपादे रानी, राड़जी रानी, खगनियाँ, केशवपुत्रवधु, पद्माचारिणी, साँई, छत्रकुँवरिबाई जैसी कवयित्रियों का उल्लेख नहीं किया गया है। आख़िरकार इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जब कोई रचनाकार अपने 'स्व' को जी लेता है तभी वह 'पर' की भी गहराई माप सकता है।

---

[97] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ, संख्या, 82
[98] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248

अध्याय # 4

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन

अंतर्वस्तु का मूल्यांकन

(क) गुरू की महत्ता

(ख) निर्गुण की वंदना

(ग) सगुण भक्ति का स्वरूप

(घ) प्रेम का स्वरूप

(घ) प्रकृति चित्रण

(ड़) पतिव्रता स्त्री

(च) मध्ययुगीन समाज और स्त्री

(छ) युद्ध वर्णन

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन

स्त्री इस संसार की शाश्वत रचयिता है। वह अपने साथ–साथ पुरूष समाज की भी रचना करती है। समस्त संसार, गहरी अनुभूति, कोमलता, मानसिक दृढ़ता और कलात्मकता के रूप में उसके भीतर विद्यमान रहता है। आश्चर्य यह है कि उसके द्वारा निर्मित और अनुभूत पुरूष समाज ने कभी भी उसकी रचनाधर्मिता को समझने का प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत सत्ताधारी समाज ने सदा ही उसे केंद्र से वंचित रखने का कुत्सित प्रयास किया है। नतीजतन साहित्य कला, संगीत कला, चित्रकला और ललित कला जैसी विधाओं पर पुरूष समाज ने अपना ही वर्चस्व बनाए रखा है, जबकि उक्त विधाओं में श्रेष्ठ; 'साहित्य रचना के लिए आवश्यक सृजन और निर्माण शक्ति की विभूति ले नारी पुरूष की तुलना में काव्य के अधिक निकट आती है।[1] लेकिन पुरूष समाज के संकुचित दृष्टिकोण ने स्त्री को उसका रचनाकौशल दिखाने का अवसर ही प्रदान नहीं किया। एक हज़ार वर्षों का हिंदी साहित्य इस बात का प्रमाण है कि पुरूष साहित्यकारों ने स्त्री रचनाकारों को हाशिये पर रखने का भरसक प्रयास किया है।

उल्लेखनीय है कि ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक के वृहत्त कालखंड में 'हिंदी साहित्य' का अर्थ 'पुरूष साहित्य' ही समझा जाता था। यह आशा ही नहीं की जाती थी कि नाथों–सिंद्धों की भांति उमांबा, मुक्ताबाई, पार्वतीबाई, सहजोबाई और दयाबाई सरीखी स्त्री संत भी हो सकती हैं, जो किसी सिद्ध संत को अपना गुरू बनाकर निर्गुण मत में दीक्षित हो सकती हैं और पुरूष संतो द्वारा प्रस्तुत उनके कनक–कामिनी रूप का खंडन कर सकती हैं। यह आशा ही नहीं की जाती थी कि झीमाचारिणी और पद्माचारिणी जैसी चारण कवयित्रियाँ भी हो सकती हैं, जो प्रयाण करती हुई सेना की प्रत्येक गतिविधि का ओजस्वी वर्णन कर सकती हैं। गंगाबाई, शेखरंगरेजिन, ताज़, रसिकबिहारी बनीठनी और बाँकावती जैसी कृष्णभक्त लेखिकाएँ और प्रेमसखी तथा प्रतापकुँवरि बाई जैसी रामभक्त रचनाकार हो सकती हैं, जो वात्सल्य, संयोग और वियोग के हृदयग्राही चित्र उकेर सकती हैं। प्रवीणराय पातुरि और रूपमति बेग़म सरीखी रचनाकार हो सकती हैं, जो श्रृंगार की मादकता और मांसलता का तथा प्रेम के शुद्ध समर्पण और त्याग का अनुभूतिगम्य चित्रांकन कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त शिवभक्ति, मंदिर भक्ति तथा सामाजिक सरोकारों को अभिव्यक्त करने वाली रचनाकार हो सकती हैं जिनकी महत्ता युद्धों से त्रस्त सामंती समाज में अमूल्य है, लेकिन आशाओं के विपरीत उक्त 657 वर्ष के कालखंड में कई ऐसी लेखिकाएँ हुई हैं जिन्होंने अपने समय और समाज को अपनी कलम के माध्यम से वाणी प्रदान की है। हिंदी साहित्य के इस स्त्रीदोष को दूर करते हुए 'महिला मृदुबाणी' के लेखक मुंशी देवी प्रसाद ने लिखा है कि 'भारतवर्ष की पुण्य भूमि में अकेले पुरूष ही चौदह विद्या निधान नहीं हुए हैं वरन् स्त्रियाँ भी समय–समय में ऐसी होती रही हैं जो सोने चाँदी और रत्न जड़ित

[1] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 01

आभूषणों के अतिरिक्त विद्या, बुद्धि और काव्यकला के दिव्यभूषणों से भी भूषित थीं और अब भी हैं।[2] मुंशी जी की सोच को सही साबित करते हुए आलोचक जगदीश्वर चतुर्वेदी ने लिखा है कि, 'हिंदी साहित्य के इतिहास का जिन लोगों ने अध्ययन किया है उन्हें भली–भाँति ज्ञात है कि पुरूष कवियों की भाँति स्त्री कवियों ने भी भाषा के भंडार की पूर्ति करने में वास्तविक और बहुत कुछ प्रयत्न किया है। तुलसी, बिहारी, देव, पद्माकर आदि का नाम प्राचीन साहित्य के उद्धारकों में लिया जाता है मीराँबाई, सहजोबाई, दयाबाई, सुंदरिकुँवरिबाई आदि ने उसके उद्धार का कम प्रयत्न नहीं किया।[3] उक्त विद्वानों के अथक परिश्रम और घनघोर जिजीविषा के परिणामस्वरूप आज यह ज्ञात होता है कि ईस्वी सन् 1200 से 1857 के मध्य अनेकों विदुषियाँ हुई हैं जिन्होंने अपनी बहुमूल्य लेखनी से हिंदी जगत को कृतकृत्य किया है। यद्यपि सामंती समाज ने उन्हें छिपाने का बहुत प्रयास किया किंतु जिस प्रकार बहुत रोकने पर भी पानी का तेज बहाव एक दिन दीवारें फाँदता हुआ अपना मार्ग बना लेता है उसी प्रकार आदिकालीन और मध्यकालीन महिला लेखन ने भी वर्चस्ववादी दीवारें फाँदते हुए अपना मार्ग प्रशस्त किया। मुक्तिबोध ने एक स्थान पर लिखा है कि 'किसी साहित्य का ठीक–ठीक विश्लेषण तब तक नहीं हो सकता जब तक हम उस युग की मूल गतिमान सामाजिक शक्तियों से बनने वाले सांस्कृतिक इतिहास को ठीक–ठीक न जान लें।[4] तब प्रश्न उठता है कि वे कौन से सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक कारण थे जिनके आधार पर स्त्री समाज का निरंतर ह्रास होता गया और उनके ऊपर पुरूष समाज का वर्चस्ववादी शिकंजा कसता गया; जबकि वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा, शास्त्रार्थ, साहित्य सृजन आदि के समान अधिकार प्राप्त थे। इनकी शिक्षा हेतु विभिन्न पाठशालाएँ निर्मित कराई गयीं थीं। 'पाणिनि ने भी छात्राओं की शालाओं का उल्लेख 'छात्र्यादयः शालायाम्' में किया है। उस युग में छात्राओं को 'सद्योवधू' व 'ब्रह्मवादिनी' नामक दो श्रेणियों में रखा जाता था। 'सद्योवधू' वे छात्राएँ थीं जो अध्ययन पूर्ण कर ग्रहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हो जाया करती थीं। इन्हें नियमानुसार नौ वर्षों तक वेद, व्याकरण, संगीत, छंद, ज्योतिष आदि की शिक्षा दी जाती थी। 'ब्रह्मवादिनी' वे छात्राएँ थीं जो बिना किसी अवरोध के आजीवन ब्रह्म चिंतन, धर्म चिंतन, अध्यात्म चिंतन तथा दार्शनिक चिंतन करती थीं।[5] 'काशकृत्स्नी', 'मैत्रेयी' और 'गार्गी' जैसी विदुषियाँ इसके सशक्त उदाहरण हैं।

वैदिकयुगीन समाज में स्त्रियाँ स्वतंत्र रूप से सामाजिक विचरण कर सकती थीं तथा आकर्षक वेशभूषा और अलंकार धारण कर सामाजिक समारोहों में सम्मिलित हो सकती थीं। कई स्त्रियाँ तो अपने पतियों के साथ युद्ध क्षेत्र मे भी जाया करती थीं। 'रामायण' में राजा दशरथ की पत्नी कैकेयी का देवासुर संग्राम मे अपने पति के साथ जाना और उनके प्राणों की रक्षा करना सर्वविदित है; किंतु ब्राह्मण युग

[2] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, भूमिका, अनुच्छेद, प्रथम
[3] जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श (स्त्री साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएँ), पृष्ठ संख्या, 13
[4] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या, 299
[5] रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, पृष्ठ संख्या, 223

आते–आते स्त्रियों की वर्णनीय स्वतंत्रता एवं अधिकार पर बट्टा लग गया। उनकी शिक्षा की आयु पुरूष समाज द्वारा निर्धारित की जाने लगी। उनसे उनका यज्ञ का अधिकार छीन लिया गया। उनका उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया और उन पर पुत्रों को तवज्जो दी जाने लगी। उन्हें पिता, पति व पुत्र द्वारा नज़रबंद कर दिया गया। अब इनकी अनुमति के बगैर वे कोई कार्य नहीं कर सकतीं थीं। 'अथर्वसंहिंता', 'शतपथ ब्राह्मण', 'शाङ्खायनब्राह्मण' एवं 'भागवत पुराण' स्त्री की परतंत्रता के जीवंत उदाहरण हैं। दुर्भाग्य यह है कि आलोच्य कालखंड के नीति निर्देशकों ने भी ब्राह्मण युग की इन्हीं स्त्री–विरोधी नीतियों से शिक्षा ग्रहण की; फलस्वरूप स्त्री–समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण और कटु हो गया।

राजनीतिक दृष्टिकोण से भी यह युग स्त्री के विपक्ष में ही रहा। ईस्वी सन् 1200 के लगभग इस्लाम का भारत में आना प्रारंभ हो चुका था। '1197 ई. में शहाबुद्दीन गौरी के सेनापति बख़्तियार खिलजी ने मगध का नाश कर दिया। बंगाल, दिल्ली, अजमेर, पंजाब, कश्मीर, सिंध, सभी प्रदेश विदेशियों के आक्रमण से आक्रांत होकर सदैव के लिए विदेशी राजाओं के नाम हो गये।[6] नतीजतन तुर्की मुसलमानों ने उत्तरभारत में कोहराम मचा दिया। खिलजी वंश के प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन खिलजी ने 1292 ई. में मालवा पर आक्रमण कर दिया और भिलसा के नगर को जीतकर अपार धन एवं बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ लूटकर लाया। 3 अक्टूबर 1296 ई. को वह इब्राहिम के सैनिकों के फ़रेब के कारण दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ। 1299 ई. में उसने गुजरात पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। उल्लेख्य है कि गुजरात की जीत के बाद जब उसकी सेना लौट रही थी तब लूट के सामान के बँटवारे को लेकर कुछ सेनानायकों ने विद्रोह कर दिया और अलाउद्दीन के एक भतीजे एवं नसरत खाँ के भाई को मौत के घाट उतार दिया। 'अलाउद्दीन ने जब यह सुना तो उसने विद्रोहियों के दिल्ली में रह रहे परिवार की स्त्रियों तथा बच्चों का कत्ल करवाकर अपने भाई एवं पुत्र की मौत का बदला लिया।[7] 1301 ई. में अलाउद्दीन ने राजस्थान के रणथंभौर पर आक्रमण किया और हमीर देव के सेनापति रनमल की सहायता से विजय प्राप्त की। इसी प्रकार उसने 1303 ई. में चित्तौड़ के शासक राणा रतन सिंह को हराया, 1305 ई. में जालौर के राजा कनेरदेव और 1308 ई. में मारवाड़ के शासक शीतल देव को पराजित किया तथा संपूर्ण उत्तरभारत में खिलजी वंश का झण्डा बुलंद किया। उत्तरभारत पर अपना कब्जा करने के साथ–साथ वह दक्षिण की ओर बढ़ा और उसने 1294 ई. में एलिचपुर, 1303 ई. में तेलंगाना, 1308 ई. में वारंगल तथा 1309–10 ई. में देवगिरी पर विजय प्राप्त की। इस दौरान अलाउद्दीन की सेना ने पराजित राज्यों की स्त्रियों को न केवल लूटा, गुलाम बनाया बल्कि अपने हरमों की शान बढ़ाने के लिए उन्हें साथ ले आए। ध्यातव्य है कि अलाउद्दीन के हृदय में स्त्री समाज के लिए वो रहम नहीं था जो हम अकबर के दिल में पाते हैं। वह केवल अपने जीत के लिए आश्वस्त होना

[6] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 23
[7] अर्चना भटनागर, चौदहवी–पंद्रहवी शताब्दी के हिंदी साहित्य में चित्रित भारतीय स्त्रियों की दशा, पृष्ठ संख्या, 13

चाहता था और इसके लिए बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने के लिए तैयार था। परिणामस्वरूप उसके शासन काल में स्त्रियों की दशा अति शोचनीय हो गई थी। गौरतलब है कि उत्तरभारत पर हो रहे निरंतर आक्रमणों में मंगोल शासक भी पीछे नहीं थे। ये एक अलग मसला है कि खिलजियों के शासन काल में उन्हें कोई बड़ी सफलता हाथ नहीं लगी लेकिन उत्तरभारत को युद्ध के धुंधलके से आच्छादित करने में उन्होंने भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। 1296 ई. से लेकर 1308 ई. तक वे लगातार अपनी जीत के लिए प्रयास करते रहे और उत्तर भारत का खूनी इतिहास लिखते रहे।

अलाउद्दीन के बाद भारत पर कई बादशाहों का शासन रहा जिसमें गियासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, मुहम्मद शाह, बहलोल लोदी, सिकंदर लोदी, इब्राहीम लोदी जैसे बड़े बादशाह शामिल थे। इनके पश्चात् भारत में जिस मुगल शासन की स्थापना बाबर ने की, उसका सूर्य अट्ठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध तक आकाश में चमकता रहा। मुगलों ने भारतीय राजाओं के मध्य फूट, ईर्ष्या, द्वेष, घमंड, वर्णव्यवस्था, जातिवाद आदि का लाभ उठाकर अपने साम्राज्य की नींव रखी। '15वीं. शताब्दी तक आते–आते इस्लाम धर्म अपूर्व जीवन शक्ति और महत्वकांक्षाओं के साथ उदित हुआ। मुसलमानों ने हिंदू जातिय व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने की कोशिश की। बलात् धर्म परिवर्तन होने लगे और स्त्रियों पर अत्याचार हुए।[8] साथ ही मुगलिया प्रभाव के कारण प्रचलित 'पर्दा प्रथा, बहुविवाह प्रथा ने स्त्रियों का दर्जा और अधिक घटा दिया। नारी केवल उपभोग की वस्तु बनकर रह गई। हिंदुओं के संस्कारों तथा परंपराओं का स्थान रूढ़ियाँ लेने लगीं एवं दिखावे की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। मुसलमानों की देखादेखी बहुविवाह प्रथा ने जोर पकड़ा।[9] परिणामस्वरूप विधवाओं की संख्या में वृद्धि होने लगी। 'पति के मरने के बाद इनको परिवार में भार रूप में माना जाता था। संपत्ति में उनका कोई अधिकार न होने से उनको जीवन के कटु अनुभवों का सामना करना पड़ता था। उत्सवों के अवसरों पर या प्रयाण काल में विधवा का मिलना अच्छा नहीं समझा जाता था।[10] दरअसल तत्कालीन समाज में 'सामाजिक–आर्थिक तौर पर स्त्री की अधिकारहीन स्थिति ने उसे ज्यादा से ज्यादा पुरूष की निर्भरता पर जीने के लिए मजबूर किया।.....वह गुलामी की अवस्था में धकेल दी गई। इस युग में ही उसे भोग की सामग्री के रूप में शरीर को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा। वह तो विलास सामग्री थी या फिर दासी या नौकरानी।[11] पति के अभाव में सामाजिक और मानवीय अधिकारों से च्युत स्त्रियाँ मानसिक यातना के डर से सती हो जाया करतीं थीं और जो नहीं होती थीं उन्हें इसके लिए विवश किया जाता था। जब सती प्रथा का दौर कुछ कम हुआ तो इसे 'एक धार्मिक प्रथा के रूप में माना जाता था; परन्तु आगे चलकर ज्यों–ज्यों बहु–विवाह प्रथा ने बल पकड़ा तो सती होना भी एक आवश्यक प्रक्रिया

[8] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 04
[9] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 07
[10] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 07
[11] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, (जगदीश्वर चतुर्वेदी, भक्ति आंदोलन और स्त्री काव्य) पृष्ठ संख्या, 286

हो गई।.....मरने वाले पुरूष के लिए उसकी प्रतिष्ठा उसके शव के साथ जलने वाली पत्नियों की संख्या से आंकी जाने लगी। सती होने के समय रानियाँ घोड़े पर बैठकर सती होने के लिए प्रस्थान करतीं थीं। शमशान में पहुँचकर गाजे बाजे की घोर ध्वनि के साथ वे चिता में प्रवेश कर भस्म हो जाती थीं। प्रत्येक राजा के साथ इस प्रकार अनेक पत्नियाँ, उपपत्नियाँ, खवासनें और दासियाँ सती होती थीं।[12] हिंदू धर्म प्रणेताओं ने दूसरे देशों के समक्ष भारतीय स्त्रियों के त्याग और बलिदान का ढिंढोरा पीटते हुए इस प्रथा को न्यायोचित बतलाया है, पर हँसते–हँसते पति के शव के साथ जल जाने वाली स्त्रियों के मानसिक बल का भेद, दाह के पहले पिलाये गए धतूरे और भंग खोल देते हैं। 'मद में चूर कभी हँसती, कभी रोती, अर्द्ध चेतन नारी सोलह श्रृंगार से सजी, ढोल और अन्य वाद्यों के रव के बीच चिता में प्रवेश करती थी। करूण चीत्कारों को वादनों के तुमुल नाद में छिपा दिया जाता था। दृश्य की वीभत्सता को छिपाने के लिए राल इत्यादि धुआँ देने वाली वस्तुएँ डाल दी जाती थीं।[13]

आश्चर्य है कि पुरूष के लिए सर्वस्व समर्पण कर देने के बाद भी स्त्री को वह गौरव और सम्मान प्राप्त नहीं हो सका जिसकी वह अधिकारिणी थी। अब वह तत्कालीन समाज में व्याप्त युद्धों के हेतु रूप में सामने आई। तद्युगीन राजनीति ने उन्हें अपनी नीतियों का मोहरा बना लिया फलतः पारस्परिक संधि, सीमा विस्तार, संबंध निर्वाह इत्यादि में शहज़ादियों व राजकुमारियों का प्रयोग संपत्तिस्वरूप होने लगा। यदि कोई राजा अपने प्रतिपक्षी राजा की कन्या का हरण कर लेता था या युद्ध में जीत लेता था तो उसके राज्य में उसका द्रव्य और अधिक बढ़ जाता था। 'परमाल रासो' का कवि जगनिक इन हालातों को बखूबी बयाँ करता है। वह कहता है–

जिहि घर देखि सुंदर बिटिया,
तिहि घर जाय धरि तलवार।[14]

ऐसी परिस्थितियों का लाभ उठाकर तत्कालीन राजाओं ने अपनी पुत्रियों का इस्तेमाल गुलदस्तों की तरह किया। अपने राज्य की सीमारक्षा हेतु वे अपने से अधिक बलशाली राजा या उसके पुत्र से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया करते थे जिसमें लड़की की मनसा का कोई मोल नहीं था।

गौरतलब है कि युद्धाभिशप्त सैनिकों को नारी तथा कन्या अपहरण द्वारा चित तृषित कामनाओं की अभिव्यक्ति का साधन प्राप्त होता था। अतः 'अराजकतापूर्ण तथा उच्चश्रृंखल राजनीति तथा शासन से स्त्रियों की रक्षा के लिए और उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए आवश्यक था कि उसे घर की दीवारों में बंदी बनाकर रखा जाता, इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियाँ नारी के जीवन क्षेत्र को संकुचित बनाने में

[12] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 07
[13] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 44–45
[14] पृथ्वीराज चौहान, आल्हाखंड असलीः 52 गढ़ की मारका, पृष्ठ संख्या, 97

प्रधान कारण बनीं।[15] नतीजतन 'भारतीय जीवन व्यवस्था में जिस प्रकार पौरूष बल के समक्ष नारीत्व की सरलता लुप्त हो गई, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी पुरूषों द्वारा रचित साहित्य की विशालता तथा गहनता में नारी द्वारा रचित साहित्य उपेक्षित ही नहीं, प्रत्युत् लुप्त हो गया।[16] परंतु मुंशी देवी प्रसाद, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', सावित्री सिन्हा और सुमन राजे जैसे शोध कत्ताओं के अथक परिश्रम द्वारा आदिकालीन और मध्यकालीन स्त्री साहित्य को नया जीवन प्राप्त हुआ। डॉ. रामप्रसाद मिश्र भी स्त्री साहित्य की इस परंपरा से सहमति जताते हुए लिखते हैं कि, 'हिन्दी कवयित्रियों की परंपरा का समारंभ संक्रांतिकाल (आदिकाल) से ही हो जाता है जिसमें हिंदी के राष्ट्रभाषा रूप के अनुरूप उमांबा एवं मुक्ताबाई जैसी महाराष्ट्र की संत कवयित्रियों ने काव्य रचना की। तदनंतर, हिंदी की बहुसंख्यक कवयित्रियाँ राजस्थान में हुईं। गुजरात और पंजाब ने भी इस दिशा में योगदान किया है। उत्तर प्रदेश तो हिंदी का प्राण प्रदेश रहा ही है, किंतु मध्यप्रेदश भी इस दिशा में नगण्य नहीं रहा।[17]

स्पष्ट है कि हिंदी की स्त्री रचनाकारों की आहटें हमें ईस्वी सन् 1200 से सुनाई देने लगती हैं। यह वह युग था जब हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्ति की बयार धीरे–धीरे बहने लगी थी और भक्तिकाल आते–आते कई प्रकार के भक्ति संप्रदायों का उदय होने लगा था जिसमें रामानंद द्वारा निर्मित 'श्री संप्रदाय', वल्लभाचार्य द्वारा प्रशस्त 'वल्लभ संप्रदाय', निम्बार्काचार्य द्वारा विकसित 'निम्बार्क संप्रदाय' और स्वामी मध्वाचार्य द्वारा स्थापित 'द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय' प्रमुख हैं। इससे इतर भी कई छोटे–बड़े संप्रदाय हुए हैं जिनमें 'निरंजनी संप्रदाय', 'चरणदासी संप्रदाय', 'रामसनेही संप्रदाय', 'ऋषि संप्रदाय' आदि विशेष रूप से नामांकित करने योग्य हैं। गौरतलब है कि उपर्युक्त संप्रदायों के गुरूओं से एवं इससे इत्तर शिक्षा प्राप्त कर रहीं स्त्री रचनाकारों ने मुक्तकंठ से गुरू की वंदना की है; साथ ही 'निर्गुण भक्ति', 'काल का महत्व', 'बहु–विवाह', 'पुत्र–प्राप्ति', 'पति सेवा', 'पारिवारिक संबंध', 'मित्र संबंध', 'नैंनों की गहराई, 'युद्ध कौशल', 'कृष्ण भक्ति', 'बाँसुरी लीला' आदि महत्वपूर्ण विषयों पर कलम फिराई है जिसका विश्लेषण निम्नलिखित है–

<u>गुरू की महत्ता</u> : उल्लेख्य है कि आदिकाल और भक्तिकाल के लगभग सभी संप्रदायों ने एक सुर में गुरू की महत्ता का बखान किया है। इनके लिए गुरू सर्वशक्तिमान है। उसमें ही यह शक्ति है कि वह जीव को भक्ति और ज्ञान के द्वारा इस भवसागर से पार उतार सकता है। हरि के दर्शन करा सकता है तथा भटके हुए को उचित दिशा प्रदान कर सकता है। गुरू के इन गुणों का वर्णन इन संप्रदायों में दीक्षित होने वाली संत कवयित्रियाँ भी करती हैं; जिनमें मुक्ताबाई, पार्वतीबाई, दयाबाई, सहजोबाई आदि मुख्य हैं। इनकी गणना उच्चकोटि की गुरूभक्तिनों में की जाती है। चरणदास शिष्या सहजोबाई अपने गुरू को

[15] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 44
[16] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 296
[17] रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 07 (भूमिका)

कोटि–कोटि नमन करती हैं और आजीवन उनकी वंदना में विलीन रहना चाहती हैं। वे गुरू को देवाधिदेव, परात्मावासी, त्रिभुवन स्वामी, अंतर्यामी, पातकहारा, ब्रह्मस्वरूप, निर्गुण से न्यारा, भक्ति–ज्ञान–योग के स्वामी स्वीकार करती हैं। इन्हीं संदर्भों में वे गुरूओं के चार प्रकार बतलाती हैं। उनका कथ्य है कि–

गुरू हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरू पारस, गुरू दीपक, मलयागिरि गुरू भृंग।।[18]

गुरू पारस है, जो अपने शिष्य की लौह भावनाओं का स्पर्श करके उन्हें कंचन रूप प्रदान करता है। गुरू दीपक है, जो अपने शिष्य के मन और मस्तिष्क पर छाए हुए अज्ञानरूपी अंधकार को अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से दूर करता है। गुरू मलयागिरि है, जो अपने सौरभ से शिष्यरूपी पलाश को भी चंदन के समान सुरभित कर देता है। शिष्य, गुरू के समक्ष कीट पतंगे की भांति तुच्छ अस्तित्व लेकर आता है; लेकिन गुरू भृंग उसे अपनी ज्ञान गरिमा से ऐसा ज्ञान संम्पन्न बनाता है जिससे कि सांसारिक विषय वासनाएँ उसके मन–मंदिर में प्रवेश नहीं कर पातीं।

सहजोबाई की गुरूबहन दयाबाई भी गुरू चरणों में सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहती हैं। उनकी दृष्टि में भी गुरू दीन दयाल और करूणा के सागर हैं, जो अपने शिष्यों के सांसारिक संशयों को मिटाकर तथा ईश भक्ति में उनका ध्यान लगवाकर उन्हें वास्तविक ज्ञान के दर्शन कराते हैं। सच्चे मन से गुरू की शरण में आया हुआ अज्ञानी भी ज्ञान प्राप्त कर काग से हंस हो जाता है और इस प्रकार सांसारिक आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। चरणदास शिष्या दयाबाई की यह गुरूवाणी देखिए –

गुरू बिन ज्ञान ध्यान नहिं हौवै। गुरू बिन चौरासी मग जोवै।।
गुरू बिन राम भक्ति नहिं जागै। गुरू बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै।।
गुरूही दीन–दयाल गोसाईं। गुरू सरनै जो कोई जाई।।
पलटैं करैं काग सूँ हंसा। मन को मेटत हैं सब संसा।।
करूना–सागर कृपा–निधाना। गुरू हैं ब्रह्म रूप भगवाना।।[19]

भक्तिकालीन संतों ने कई स्थानों पर गुरू को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है। 'गोबिंद' के स्थान पर गुरू को महत्वपूर्ण मानने वाले संत कबीर की भांति सहजोबाई भी अपने गुरू 'चरणदास' को हरि से अधिक महत्व देती हैं। इन्हीं अर्थों में वे तद्युगीन सामंती समाज में स्त्री की सच्ची हितैषी बनकर उभरती हैं। उन्होनें 'स्त्री की दुर्दशा के लिए ईश्वर की तीखी आलोचना की। गुरू को त्यागने की बजाए ईश्वर को त्यागने, ईश्वर की दी हुई चीजों को त्यागने पर जोर दिया। ईश्वर की आलोचना के माध्यम से स्त्री के इर्द

[18] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 05
[19] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 04

गिर्द विकसित हो चुकी बंधनो की दीवारों को तोड़ने पर जोर दिया।[20] उनकी स्वीकृति है कि हरि ने जन्म दिया, पंचभूत दिये, कुटुंब जाल में गेरा, कर्म–भ्रम की रचना की किंतु गुरू ने ज्ञान और योगशक्ति से जीवात्मा को आवागमन से मुक्ति प्रदान की, सांसारिक ममता के बंधन काटे, आत्मारूप परमेश्वर के दर्शन कराये तथा कर्म–भ्रम से मुक्ति प्रदान की; इसलिए यदि समस्त पर्वतमाला को समुद्र में घोलकर, उसकी स्याही बनाकर धरती रूपी कागद पर गुरू की महिमा लिखी जाय तो भी उनकी कृपा का सर्वस्व नहीं लिखा जा सकता। गुरू का गुरूत्व असीम, अकल्पनीय, अगाध और अविस्मरणीय होता है। इसलिए वे बेखटके कह देती हैं कि –

राम तजूँ पै गुरू न बिसारूँ। गुरू के सम हरि कूँ न निहारूँ।।
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरू ने आवागमन छुटाहीं।।
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरू ने लई छुटाय अनाथा।।
हरि ने कुटुँब जाल में गेरी। गुरू ने काटी ममता बेरी।
x x x x x x x
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरू न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ।।[21]

सहजोबाई गुरू के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं। वे उनके चरणों की वंदना करती हैं, उनकी हरेक आज्ञा का पालन करती हैं। उनका कथन है कि भगवान मुक्ति प्रदाता हैं लेकिन उनका निवास स्थान गुरू कुटिया ही है। वे कहती हैं कि गुरू प्रताप से ही उस अलौकिक ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है; इसलिए गुरू का स्थान ईश्वर से बड़ा है। दोहा देखिए –

सहजो कारज जगत के, गुरू बिन पूरे नाहिं।।
हरि जो गुरू बिन क्यों मिलै, समझ देख मन माहिं।।
परमेसर सूँ गुरू बड़े, गावत बेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरू के घर भगवान।।[22]

गुरू भक्तिनों में एक नाम महाराष्ट्र की आदि कवयित्री मुक्ताबाई का भी लिया जाता है। वे मूलतः मराठी भाषा की रचनाकार हैं, किंतु उन्होंने गुरूभक्ति में डूबकर कई पद हिंदी भाषा में भी लिखे हैं। उन्होंने अपने गुरू के लिए 'साहबजी' सरीखे आदरसूचक शब्द का प्रयोग किया है। अपने गुरू के प्रति वे इतनी समर्पित हैं कि गुरू चेलीरूप हो गए हैं और चेली गुरूरूप हो गई हैं। दोनों में कोई भेद नहीं रहा। मुक्ताबाई का एक पद्यांश देखिए –

वाह वाह साहबजी सद्गुरू लाल गुसाईंजी,

[20] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श (जगदीश्वर चतुर्वेदी, भक्ति आंदोलन और स्त्री काव्य), पृष्ठ संख्या, 320
[21] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 06
[22] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 11

सतगुरू चेले एक बराबर एक दसा मों भाई।
एक से ऐसे दरसन पाए, महाराज मुक्ताबाई।[23]

महाराष्ट्र की गुरूभक्तिनों में पार्वतीबाई का नाम भी उल्लेखनीय है। वे एक ऐसे गुरू की शिष्या हैं जो निस्वादी है, सांसारिक विषयों से परे है, जिसे जगत की मोह–माया अपनी ओर आकर्षित नहीं करती। उदाहरण देखिए –

निसप्रेही निहस्वादी कामदग्धी दिने दिने,
तासु शिष्याँ देवी पार्वती।[24]

उल्लेख्य है कि पार्वतीबाई के गुरू का निवास स्थान सांसारिक घर–द्वार न होकर लंबी–चौड़ी पर्वतश्रेणियों में निर्मित गुफाएँ हैं जिनमें वे धन, यौवन व कामवृत्ति से कोसो दूर रहते हैं। उनकी अनुपस्थिति में शिष्या पार्वती का आत्मारूपी जीव उदास हो जाता है। उसे तभी शांति प्राप्त होती है जब उनके गुरू उनके घर आकर भोजन करते हैं और पार्वतीबाई उनकी सेवा का प्रसाद ग्रहण कर पाती हैं। यथा –

रूक्ख बंस गिरी कन्दर बास।
निरधन कंथा रहै उदास।।
शिष्या भोजन सहज में किए।
ताकी सेवा पारवती करे।।[25]

गौरतलब है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की परतंत्रता एक सामाजिक मूल्य हो चला था। उसे केवल गृहलक्ष्मी के बतौर ही व्यवहृत किया जाता था। ऐसे में संत 'कवयित्रियों का घर त्यागकर संतों या गुरू के साथ रहना, उनके पक्ष में उपदेश देना और कविताएँ करना तत्कालीन व्यवस्था को दी गई चुनौती थी। यह स्त्री के प्रति भेदभाव का विरोध ही है।[26] उक्त गुरूभक्तिनों के अतिरिक्त ब्रजदासी रानी बाँकावती और रत्नकुँवरिबीबी का नाम उल्लेखनीय शिष्याओं में आता है। रानी ब्रजदासी जहाँ किसी भी कार्य के सुभारम्भ से पूर्व गुरू चरणों की वंदना की अभिलाषी हैं, वहीं बीबी रत्नकुँवरि गुरूकृपा को ही स्वरचित ग्रंथ 'प्रेमरत्न' की रचना का मूलाधार स्वीकारती हैं। ध्यातव्य है कि गुरू को अधिकाधिक महत्त्व देने के पश्चात् भी रानी बाँकावती और बीबी रत्नकुँवरि की गणना सहजोबाई, दयाबाई और मुक्ताबाई जैसी उच्चकोटि की शिष्याओं में नहीं हो सकती क्योंकि इनके काव्य में गुरू से पूर्व 'परमसत्ता' और उनके अलौकिक भक्तों को अधिक महत्व दिया गया है।

---

[23] रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 09
[24] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 49–50
[25] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 49–50
[26] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, (जगदीश्वर चतुर्वेदी, भक्ति आंदोलन और स्त्री काव्य) पृष्ठ संख्या, 305

निर्गुण की वंदना : उल्लेख्य है कि आलोच्य काल की लेखिकाओ ने निर्गुण ईश्वर की वंदना भी की है; इसलिए उमांबा, सहजोबाई, दयाबाई, मुक्ताबाई और पार्वतीबाई का नाम श्रेष्ठ कोटि की निर्गुणोपासकों में भी आता है। उन्होंने अपनी 'अलख–निरंजन' भक्ति द्वारा 'जीवन के रहस्य', 'काल का महत्व', 'संत दर्शन', 'अहंकार का क्षमन', 'संसार की निस्सारता', 'साधुवृत्ति का स्वरूप', जैसे विषयों पर व्यापक प्रकाश डाला है। उनके अनुसार 'काल' अगम–अगोचर है, उसकी गति अलक्षित है, उसे केवल अनुभूत किया जा सकता है या उसके कृत्यों को देखा जा सकता है। उसका उदर इतना व्यापक है कि राजा–राणा–बादशाह, भाई–बंधु, नाते–रिश्तेदार, कीट–पतंगा; कोई भी चराचर प्राणी उसके मुख का ग्रास बनने से नहीं बच सका। शिष्या दयाबाई काल की इस प्रचंडता को पहचानती हैं और उसकी भक्षण क्षमता को चारों ओर देख रही हैं। उनका एक दोहा देखिए –

तीन लोक नौ खंड के लिये जीव सब हेर।
'दया' काल परचंड है मारै सब कूँ घेर।।
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्र–पति सब कूँ लीले जाय।।[27]

चूँकि काल का उदर बहुत बड़ा है और वह एक–एक कर सब जीवों को लील रहा है; ऐसे मे संसार के अस्तित्व पर स्वयं ही प्रश्न खड़े हो जाते हैं। यह संसार स्थिर गति वाला नहीं है, अपितु इसका अस्तित्व पानी के बुलबुलों के समान है। 'प्राणी जगत' के लिए ये सराय की भांति है जहाँ कुछ दिन निवास करके उसे फिर अपने मूल निवास पर लौट जाना है; इसलिए दयाबाई 'संसार की निस्सारता' की ओर इंगित करते हुए इसे ओस के मोती के समान मानती हैं। दोहा देखिए –

जैसो मोती ओस को तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में 'दया' प्रभु उर धार।।[28]

संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान संत कवयित्री मीराँबाई को भी है; इसलिए वे उस 'अबिनासी' ब्रह्म की उपासना करती हैं जो धरणी और गगन के बीच समान रूप से विचरण करता है। वे काशी जाकर गंगा में डुबकी लगाने, तीरथ–व्रत करने और भगवा वस्त्र पहनने का उपदेश देने वाले मिथ्याचारी साधुओं और योगियों के ढोंग–आडंबरो का विरोध करती हैं और उन्हें शिक्षा देती हैं कि किसी को भी अपने सद्कर्मों का अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि यह जीवन क्षणभंगुर है जिसे एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। वे कहती हैं कि हे संतो! ये संसार 'चहर की बाज़ी' के समान हैं जहाँ विषय–वासनाओं की चंचलता इतनी अधिक है कि प्रत्येक वस्तु आपको अपनी ओर आकर्षित करती है। जिसके मोह में फँसकर जीव चकर–घन्नी के समान बार–बार इस संसार में आना–जाना चाहता है। मीराँबाई का कथ्य है कि सच्चे योगी को ही इस

[27] दयाबाई, दयाबाई की बानी (बैराग का अंग), पृष्ठ संख्या, 09
[28] दयाबाई, दयाबाई की बानी (बैराग का अंग), पृष्ठ संख्या, 08

रहस्य का बोध होता है। अतः वे जगत के माया–मोह में न पड़कर उस अलख–अबिनासी की उपासना कर जीवन के इस आवागमन से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है। इस संबंध में मीराँबाई का 'राग छाया' देखिए –

भज मण चरण कँवल अविणासी।।टेक।।
जेताई दीसाँ धरण गगन माँ, तेताई उठि जासी।
तीरथ बरताँ ग्याँण कथंता, कहा लयाँ करवत कासी।।
यो देही रो गरब णा करणा, माटी माँ मिल जासी।
यो संसार चहर राँ बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।।
कहा भयाँ था भगवा पहर्याँ, घर तज लयाँ संन्यासी।
जोगी होयाँ जुगत णाँ जाणाँ, उलट जणम राँ फाँसी।
अरज कराँ अबला कर जोर्याँ, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, काटयाँ म्हारो गाँसी।।[29]

उक्तरोक्त पद में 'स्याम' शब्द से कठिनाई नहीं होनी चाहिए; क्योंकि जिस प्रकार कबीर के 'राम' दशरथ पुत्र 'राम' नहीं है उसी प्रकार उक्त पद में 'स्याम' देवकी या यशोदा पुत्र स्याम नहीं हैं। ध्यातव्य है कि जब मनुष्य गूढ़ श्रद्धा, समर्पण और करूणा की स्थिति में पहुँच जाता है तब उसके लिए निर्गुण और सगुण का भेद मिट जाता है। ऐसे समय में उसके सगुण संबल ही निर्गुण हो जाते हैं और निर्गुण आधार ही सगुण की भांति कार्य करने लगते हैं। अपनी वाणी में सहजोबाई ने निर्गुण–सगुण के खाँचों का खंडन करते हुए लिखा है कि 'नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप। सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप।[30] उपरोक्त पद में भी मीराँबाई ने कृष्ण की आराधना करते हुए साधना की सहजावस्था को प्राप्त कर लिया है जहाँ सगुण–निर्गुण का भेद समाप्त हो गया है। यहाँ मीराँबाई सच्चे मायने में एक 'संत' भक्त प्रतीत होती हैं।

गौरतलब है कि हज़ार वर्षों के हिंदी साहित्य ने केवल स्त्री रचनाकारों के साथ ही अन्याय नहीं किया अपितु उनकी मौलिक दृष्टि के साथ भी पक्षपात किया है। उसने 'मीराँबाई' सरीखी उत्कृष्ट रचनाकार को समाज के सम्मुख केवल 'कृष्णभक्त लेखिका' के रूप में प्रस्तुत किया है जबकि उन्होंने अपने काव्य में निर्गुण प्रभु की अर्चना, उपासना भी की है। 'उनके पदों में निर्गुण भक्ति के अनेक संकेत मिलते हैं। अनादि अनन्त ब्रह्म, जिनकी सेज गगन मण्डल पर बिछी रहती है तथा उनकी त्रिकुटी में ध्यानावस्था, सुन्न महल में सैया बिछाने की आतुरता निर्गुण प्रभाव से खाली नहीं है।[31] फिर इस तथ्य को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है कि कोई भी मनुष्य सदा एक ही रस में नहीं 'जी' सकता और न ही एक दर्शन में। प्रतिदिन

[29] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 152–153
[30] सहजोबाई, सहजोबाई की बाणी, पृष्ठ संख्या, 41
[31] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 55

उसके जीवन में अनेक रस और दर्शन स्थान पाते हैं जिन्हें स्थिर प्रज्ञय मानुष ही अनुभूत कर सकता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि हमारी आँखें जिसे देखती हैं वह वस्तु भी हमें देखती है। हमारी दृष्टि और उस वस्तु के मध्य जो कोण निर्मित होता है वह भी एक दर्शन है। इस प्रकार प्रत्येक जीव–निर्जीव के साथ हमारा एक दर्शन बनता है जिसे हम उसी कोण के अंतर्गत समझ सकते हैं। उस दृष्टिकोण के बाहर वह वस्तु भी बदल जाती है और वह दृष्टि भी; नतीजतन हमारा दर्शन बदल जाता है। ऐसे में इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि जब मीराँबाई कौमार्य, दाम्पत्य और वैधव्य के सोपानों से होकर गुजर गई हैं तो उनके काव्य में इन तीनों सोपानों की अनुगूँज होना स्वाभाविक ही है। यदि आजतक उन्हें केवल एक कृष्णभक्त कवयित्री के रूप में ही देखा जाता रहा है तब उन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हस्तक्षेपों का पता लगाना और भी अनिवार्य हो जाता है जिनके कारण मीराँबाई की लेखनी के साथ छेड़खानी की गई है।

निर्गुण संत कबीरदास ने भी संसार की निस्सारता का अनुभव कर लिया था। वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि जन्म और मृत्यु रूपी काल के दो पाटों के मध्य प्राणी जगत आजीवन संघर्षरत रहता है और एक दिन काल का ग्रास बन जाता है। उनका कथ्य है कि, चलती चाकी देखि कै/दिया कबीरा रोय/दो पाटन के बीच में/जीवित बचा न कोय।[32] उल्लेखनीय है कि काल जितना क्रूर और दयाहीन है उतना ही न्यायप्रिय भी है। यह संभव है कि 'जीवन' प्राणी जगत के साथ ऊँच–नीच का भेदभाव करे किंतु काल किसी भी चराचर प्राणी के साथ अन्याय नहीं करता। वह राजा को भी उसी समानता से भकता है जिस समानता से रंक का भक्षण करता है। वह सभी को पूर्ण श्रद्धा, सम्मान, समर्पण और न्याय के साथ ग्रसता है। संभवतः काल की समान प्रियता ही वह शक्ति है जिसने मध्यकालीन कवयित्रियों को स्त्री–विरोधी वातावरण में अपनी बात रखने का संबल प्रदान किया तथा सामंती समाज के बने बनाए ढाँचों पर परोक्ष–अपरोक्ष रूप से सवाल खड़े किये जिसमें स्त्रियों का कार्य केवल चहारदीवारी में रहकर अपने सामंत की आज्ञा का पालन करना था।

निर्गुणपंथियों की एक विशेषता यह है कि उनका जीवन सदा मृत्यु और जीवन के मध्य, संतुलन का द्योतक रहा है। वे प्रकृति से उतनी ही वायु, अग्नि और नीर ग्रहण करते हैं जितनी उनको आवश्यकता है। वे उतना ही खाते हैं जितना जीवन यापन के लिए जरूरी है तथा उतना ही सोते हैं जितना पंचभूतों के संतुलन के लिए अपरिहार्य है। उनका जीवन योग, हठयोग, समाधि, कुंडली जागरण, सामाजिक भ्रमण, भिक्षा ग्रहण, प्रवचन–उपेदश इत्यादि में व्यतीत होता है। गौरतलब है कि उपर्युक्त सभी कार्य किसी सामान्य संत या योगी के लिए असंभव हैं। इन्हें कोई स्थिर प्रज्ञय व्यक्ति या कोई सच्चा साधु ही कर सकता है; क्योंकि साधु मानुष ही पंकधरा पर कमल के पुष्प की भांति होता है। उसकी इंद्रियाँ उसके नियंत्रण में होती हैं, वे

[32] श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 105

वैसा ही कार्य करती हैं जैसी उन्हें बान डाली जाती है; इसलिए साधु संगत का प्रभाव जीवन पर्यंत बना रहता है। रहीम की भांति (रहिमन संगति साधु की/ ज्यों गंधि की बास/जो कछु गंधि दै नहिं/ तो भी बास सुबास।[33]) सहजोबाई भी जान गई हैं कि साधु संगति से अज्ञानी कागा भी हंस के समान हो जाता है और माया–मोह के संसार से केवल सद्वृत्तियों के मोती चुनकर खाता है। अतः वास्तविक साधु को पहचानना समस्या का सबसे प्रधान पहलू है, क्योंकि बाह्याडम्बरों के आधार पर ही साधु की संज्ञा देना असंगत है।[34] इसलिए सहजोबाई सदा अपने गुरू–भगवान, साधु चरणदास के चरणों में रहना चाहती हैं। उनका निम्नलिखित दोहा देखिए –

सहजो संगत साधु की, काग हंस है जाय।
तजि के भच्छ अभच्छ कूँ, मोती चुगि चुगि खाय।।[35]

संत कवयित्री मुक्ताबाई भी ख्यातिलब्ध निर्गुणभक्त और साधुवृत्ति की महिला रही हैं। उनके काव्य पर नाथों–सिद्धों की बाणियों का प्रभाव दृष्टितगत होता है। फिर वे ज्ञानदेव, सोपानदेव और निवृत्तिनाथ की अनुजा थी अतः ऐसा होना स्वाभविक है। उनके काव्य में आए उन्मनी, भ्रमर, गुंफा, रस, झूलनवाला इत्यादि शब्द हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली से आबद्ध हैं, जो उन्हें निर्गुणियाँ वृत्ति की संत घोषित करते हैं। साधुवृत्ति के संबंध में उनकी सहज स्वीकृति है कि 'जहाँ तहाँ साधु दसवा, आपहि आप बिकाना।'

संत शिष्याओं की एक अन्य विशेषता 'अलख–निरंजन से प्रेम' करना है। उनका 'राम' कबीर, दादू, धन्ना, पीपा जैसे संतों के समान लौकिक न होकर अलौकिक है। जगत में न बसकर मन में बसता है। संसार के कर्म चक्र से उसका कोई सरोकार नहीं है; परंतु संत कवयित्री उमाबाई अपने राम के साथ समकालीन संतों से एक कदम आगे निकल गई हैं। उन्हें अपने उपासक 'राम' के साथ प्रेम हो गया है। वे उसके वियोग में तड़पती हैं, बिलखती हैं, उसे मनाती हैं किंतु उनके राम का 'मान' इतना अडिग है कि वह माने नहीं मानता, पुकारे नहीं सुनता। ऐसी स्थिति में उनके मन की व्याकुलता और बढ़ जाती है और वे स्वतः ही अपने राम से अपनी बेबसी को प्रकट करती हुई कहती हैं कि, 'राम तमारा मान मै को/रैण–दिवस तलफाय।[36]

भक्तिकालीन काव्य में कृष्ण और गोपियों के होरी खेलने के अनेकों आकर्षक चित्र उकेरे गए हैं; किंतु शायद ही किसी सगुण या निर्गुण पुरूष भक्त ने संसारेत्तर सत्ता संग रंग खेलने की इच्छा प्रकट की होगी। उमाबाई उन्हीं कुछेक लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने घट–घटवासी ईश्वर के साथ फाग खेलने की इच्छा प्रकट की है। इसके लिए उन्होंने पूर्ण तैयारी कर रखी है। उन्होंने शरीर के पाँचों तत्वों (वायु, अग्नि,

[33] विद्यानिवास मिश्र/गोविंद रजनीश, रहीम ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 174
[34] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 57
[35] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 15
[36] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 47

जल, पृथ्वी, नभ) को मिश्रित कर एक बगीचा बनाया है जहाँ ज्ञान के गुलाल और प्रेम की पिचकारी से फाग खेलने की तैयारी है। 'रामसनेही संप्रदाय' के प्रवर्तक स्वामी रामचरणदास के शिष्य रामजन की शिष्या उमाबाई की यह अनोखी कल्पना देखिए जो समग्र हिंदी साहित्य में विलक्षण बन पड़ी है –

पंच तत को बन्यो है बाग।
जा में सामन्त सहेली रमत फाग।।
जहं राम झरोखे बैठे आय।
प्रेम पसारी प्यारी लगाय।।
जहाँ सब जन को बन्यो है, ज्ञान गुलाल लियो हाथ।
केसर गारो जाय।।[37]

अपनी गुम्फित भक्ति के द्वारा उमाबाई अपने गूढ़ प्रभु को साकार करते हुए उनसे अपनी दीनता, तुच्छता की ओर ध्यान देने की प्रार्थना करती हैं। उनके सैंया करूणानंद हैं इसलिए उन्हें आशा है कि जिस प्रकार उन्होंने अन्य संतो का उद्धार किया उसी तरह वे उनके कामी, कपटी, लोभी मन को इस मायावी जीवमंडल से मुक्ति प्रदान करेंगे। उनकी प्रार्थना की यह बानगी देखिए –

सैयां हो मेरी सब ही न बोरी हों गुनो।
करूणानन्द सामी अरज सुनो।।
कामी, कपटी, क्रोधी मन बसु लालच में अति लीन!
अधम उधारन विरद तुम्हारो सो क्यों होवेगा दीन ?
जो तुम तारी सन्तन का हो मेरी समारत नाहिं।।
अधम उधारन नाम सुना हो, खुसी रहुं मन माहिं।।[38]

संत कवयित्रियों में कई जगह 'रहस्यवाद' की वृत्ति भी लक्षित होती है। वे जिस पूज्य की वंदना करती हैं उसका कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। वह 'बिनु पग चलहिं/ सुनहिं बिनु काना/कर बिनु कर्म/करहि बिधि नाना[39] जैसी वृत्तियों से संचालित है। वह न जन्मता है न मरता है; उसका न कोई रूप है न रंग है, न जाति है न वर्ग है; न नातेदार हैं न रिश्तेदार हैं, उसे न शीत लगता है न ऊष्णता सुखाती है। रचनाकारों की इस रहस्यवादी वृत्ति के संदर्भ में पंडित परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि 'रहस्यवाद.....लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वव्यापक सत्ता की प्रत्यक्ष, गंभीर एवं तीव्र अनुभूति

[37] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 47
[38] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 48
[39] तुलसीदास, रामचरितमानस, (अयोध्याकांड), पृष्ठ संख्या, 127

के साथ संबंध रखती है।[40] ऐसे ही तीव्र अनुभूतिगम्य जगपालक की अर्चना कवयित्री दयाबाई और सहजोबाई करती हैं। उनका यह 'दोहा' देखिए –

रूप बरन वाके नहीं, सहजो रंग न देह।
मीत ईष्ट वाके नहि, जाति, पाँति नहिं गेह।।[41]

एक अन्य 'सोरठा छंद' में दयाबाई भी उस अलौकिक सत्ता के मुख को हज़ार हज़ार सूर्यों के प्रकाश वाला बता रही हैं। उनका कथन है कि वह अगम–अगोचर ईश्वर मनको में डोर के समान है। संसार के प्रत्येक जीव में वही निवास करता है परंतु उसका कोई सांसारिक निवास स्थान नहीं है। 'सोरठा' देखिए –

वही एक व्यापक सकल, ज्यों मनिका में डोर।
थिर चर कीट पतंग में, 'दया' न दूजो और।।[42]

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 'गुरूभक्ति', 'निर्गुणभक्ति', 'साधु महिमा' और 'रहस्यवाद' का जो प्रभाव हमें पुरूष साहित्य के भक्तिकाल में ईस्वी सन् 1318 से दृष्टिगत होता है स्त्री रचनाकारों पर उसका प्रभाव ईस्वी सन् 1200 के लगभग ही पड़ने लगा था। महाराष्ट्र की संत कवयित्री मुक्ताबाई के यहाँ हठयोग की शब्दावली 13वीं शती के उत्तरार्द्ध में ही मिलने लगती है। इससे 'वारकरी संप्रदाय' पर नाथपंथियों का प्रभाव सिद्ध होता है। साथ ही यह विश्वास होता है कि हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन के प्रथम बिंदु के रूप में स्त्री साहित्य को अवश्य देखना चाहिए जिसे आजतक हाशिये का साहित्य मानकर मुख्यधारा से बाहर रखा गया है। संभव है कि हठयोगियों की भांति इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, नाड़ियों और कुंडली जागरण का ज्ञान इन स्त्री रचनाकारों को कम रहा हो लेकिन संसार की वायवीयता और व्यर्थता का बोध उन्हें पर्याप्त था। इसलिए वे अपने स्फुट लेखन में अहंकार लोप, शांति की प्राप्ति, साधु संगति, गुरूभक्ति और अविनाशी ईश्वर की वंदना पर अधिक बल देती हैं। इससे उनके मन की व्यापकता, कोमलता और गहराई का अनुमान स्वतः ही लग जाता है।

सगुण भक्ति का स्वरूप : निर्गुण भक्ति से अलग व्याख्येय कालखंड की लेखिकाओं ने राधाभक्ति, कृष्णभक्ति, रामभक्ति और शिवभक्ति भी की है। राधाभक्ति इसमें एक महत्वपूर्ण बिंदु है। यह स्त्रियों की अपनी दृष्टि के साथ–साथ उनके अस्तित्व का भी परिचायक है। ध्यातव्य है कि अबतक लिखित भक्ति और रीति साहित्य में यशोदानंदन की छवि प्रमुख रही है तथा उनका चरित्र तत्कालीन समाज की सामंती वृत्ति का प्रतिनिधि रहा हैं। आलोच्य कालखंड में कृष्ण का वात्सल्य वर्णन, रास लीला, बाँसुरी लीला, प्रेम प्रसंग आदि के अनेक चित्र उकेरे गए हैं और लगभग सभी स्थानों पर राधा को कृष्ण की संगिनी रूप में ही

[40] पंडित परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्यधारा, पृष्ठ संख्या, 38
[41] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 39
[42] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 13

चित्रित किया गया है। संभवतः भक्तिकालीन कवियों की श्रद्धा कृष्ण के प्रति अधिक थी और रीतिकालीन कवियों को भक्ति से अलग काव्य की रसमयता अधिक आकृष्ट करती थी; इसलिए भिखारीदास की कालजयी उद्घोषणा थी कि 'आगे के कवि रीझिहै तौ कबिताई, न तौ राधिका कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ है' अर्थात् स्त्रियों की जो छवि प्राच्य समाज में थी साहित्य में भी कमोबेश वही रही।

मध्यकालीन कवयित्रियों ने आलोच्य काल के कृष्ण क्रम को उलटते हुए 'राधा' को उनका योग्य स्थान प्रदान किया है। उन्होंने वृषभानुनंदिनी को कृष्ण की भांति ही ईश्वरीय रूप में पूजा है। इसकी सशक्त अनुगूँज हम कवयित्री रसिकबिहारी बनीठनी जी के काव्य में देखते हैं। स्त्री के सम्मान और संघर्ष का मान रखते हुए उन्होंने 'पुत्र प्राप्ति' की उस पुरूष ग्रंथि का खंडन किया है जिसने तद्युगीन स्त्री समाज के लिए नारकीय स्थिति बना दी थी। उन्होंने राधा के जन्म पर बधाई गाने की प्रथा का काव्यांतरण किया है। उल्लेख्य है कि तत्कालीन समाज में बेटियों के जन्म पर ऐसी किसी प्रथा का निर्वाह नहीं किया जाता था। इस प्रथा का क्रियान्वयन मूलतः पुत्र जन्म पर होता था। ऐसे में राधा के जन्म पर बधाई बजाने व मोतिन–चौक पूजने की रीति का पालन करना, न केवल उपमहाद्वीपीय वर्जनाओं को तोड़ता है बल्कि स्त्री को उसके सामाजिक अधिकारों से भी परिचित कराता है। रसिकबिहारी जी का यह पद देखिए –

आज बरसाने मंगल माई।
कुँवर लली को जनम भयो है। घर घर बजत बधाई।।
मोतिन चौक पुरावो, देहु असीस सुहाई।
'रसिक बिहारी' की यह जीवनि, प्रगट भई सुखदाई।।[43]

कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई राधा के माध्यम से स्त्री समाज की महत्ता स्थापित करने की प्रक्रिया में उमांबा और मुक्ताबाई से भी आगे निकल गई हैं। वे अपनी आराध्य देवी को अपने जीवन की संजीवनी बूटी मानती हैं। उनका नित्य पूजन उन्हें प्राण वायु प्रदान करता है; इसलिए उन्होंने बेखटके राधा को अपनी 'स्वामिनी' मान लिया है। अट्ठारहवीं शती की राधाभक्त कवयित्री के लिए 'राधा की उपासना कृष्ण से अधिक महत्वपूर्ण है। राधा का रूप वर्णन, प्रेम प्रसंगों में राधा की विजय, किशोर क्रिडाओं में राधा की महत्ता स्थापित करने का उन्होंने सतत प्रयत्न किया है।[44] उन्होंने अपनी आराध्य देवी के बालचित्र भी खींचे हैं। उन्हें अपनी बाल राधा के छोटे–छोटे पग बहुत आकर्षित करते हैं जिनसे वह ठुमक–ठुमक कर चलती हैं। उसका सुधामयी मुखमंडल देखने के लिए वे अत्यंत व्यग्र हो रही हैं। उनकी इच्छा है कि बालकुमारी अपनी पियूषवर्षिणी वाणी से उन्हें आनंदित कर उनके हृदय की व्यग्रता और उद्वेलन को शांत करे। वात्सल्य रस से परिपूर्ण सुंदरिकुँवरिबाई का यह पद देखिए –

मेरी प्रान–सजीवन राधा।

[43] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 131, पद संख्या, 22
[44] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 178

कब तो बदन सुधाधर दरसै यों अंखियन हरै बाधा।।
ठमकि ठमकि लरिकौहीं चालत आव सामुहे मेरे।
रस के बचन पियूष पोष के कर गहि बैठहु मेरे।।
रहसि रंग की भरी उमंगनि ले चल संग लगाय।
निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख दरसाय।।
मन मंजरी जु कीन्हों किंकरि अपनावहु किन बेग।
सुन्दरकुँवरि स्वामिनी राधा हिय की हरौ उदेग।।[45]

मध्यकाल की एक अन्य कवयित्री ब्रजदासी रानी बाँकावती ने 'बार बार बंदन करौं। श्री वृषभान कुँवारि'[46] कहकर स्त्री को हिंदी साहित्य में प्रथम बार वंदनीय बनाया है। इससे पूर्व उसे केवल 'कामदग्धा', 'मृगनयनी', 'करि की चाल', 'सिंह की कमर', 'इंदुमुखी', 'कीर की नासिका' वाली, जैसे उपमानो से उपमित किया जाता था; अर्थात् उसे नितांत भौतिक प्रतिमानों पर कसकर केवल 'शीलमणि' के ही रूप में देखा गया था और अलौकिक वंदनीयता का पद स्वयं पुरूषों ने अपने लिए सुरक्षित रखा था। लेकिन बाँकावती जी ने पारलौकिक वंदनीयता के माध्यम से स्त्री को लौकिक सम्मान प्रदान किया है।

अट्ठारहवीं शती की कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई राधाभक्ति में रसिकबिहारी और बाँकावती से भी दो कदम आगे निकल गई हैं। उन्होंने राधा के निर्गुण रूप की भी वंदना की है। सूफी साहित्य के पश्चात् यह प्रथम प्रयास है जब किसी स्त्री को ईश्वर रूप में पूजा गया है। कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई पूज्य राधा को अपने ह्रदय की हरेक पीड़ा से अवगत कराती हैं। वह कहती हैं कि इस संसार रूपी सागर में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की भयावह लहरे उठ रही हैं जिनमें मेरा जन्म जहाज डूब रहा है। मेरे जीवन की नाव पुरानी हो चुकी है जो न जाने कब साथ छोड़ देगी। ऐसी अवस्था में हे राधे! मुझे तेरे अतिरिक्त किसी अन्य का आसरा नहीं है। इसलिए हे स्वामिनी अब तू ही मेरे जीवन रूपी जहाज को इस भवसागर से पार उतार कर मुझे मुक्ति प्रदान कर। उदाहरणार्थ –

मन–मलाह के परी भरोसे बूड़त जन्म जहाज।।
उदधि अथाह थाह नहिं पइयत प्रबल पवन की सोप।
काम, क्रोध, मद, लोभ, भयानक लहरन को अति कोप।।
ग्रसन पसारि रहे सुख तामहिं कोटि ग्राह से जेते।
बीच धार तहँ नाव पुरानी तामहिं धोखे केते।।
x x x x x x
याको कछु उपचार न लागत हिय हीनत है मेरो।।

[45] ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल, स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 146
[46] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 95

सुन्दरिकुँवरि बाँह गहि स्वामिनि एक भरोसो तेरो।।[47]

आलोच्य कालखंड की सामंती व्यवस्था में पुरूष प्रधान समाज के प्रतिनिधि कृष्ण के द्वारा राधा को अपनी 'आन' स्वीकार कर लेना सामंती समाज के विधान को उलटकर देखने के साथ–साथ उसे चुनौती प्रस्तुत करना भी है; क्योंकि सामंती समाज में स्त्री का 'स्थान केवल एक कठपुतली की तरह रह गया था और उसके जीवन की सार्थकता उसका नारीत्व बना दिया गया था। पति को आत्म समर्पण कर उसे जीविका प्राप्त होती थी अथवा वारांगना बन अपने रूप और यौवन का खुला क्रय करके, तीसरा मार्ग उसके लिए था ही नहीं।[48] ऐसे में राधा को प्रमुखता प्रदान कर श्रीकृष्ण को उनका अनुगामी बतलाना निश्चित रूप से निर्भीक लेखन का प्रमाण है। एक अन्य दृष्टि से देखने पर लग सकता है कि 'प्रेम' में कोई छोटा–बड़ा नहीं होता; लेकिन तत्कालीन समाज स्त्रियों को 'प्रेम' करने की कितनी स्वतंत्रता देता था इसका अनुमान स्वतः ही लगाया जा सकता है। ऐसे में किसी प्रेमी द्वारा अपनी प्रेयसी को प्राणों से भी अधिक महत्व देना तद्युगीन विधि–विधान को चुनौती देना ही समझना चाहिए। उदाहरण देखिए –

कहत श्याम मेरे नहीं तुम बिन कोऊ आन।
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हौ मान।।
काहि करत हौ मान चलहु पिय संग बिहारौ।
राधा राधा मन्त्र नाम वे रटत तिहारौ।।[49]

कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई ने अपने काव्य में राधा के प्रेम प्रसंगों एवं उनके रूप सौंदर्य का वर्णन भी किया है। कहीं–कही ठाकुर, बोधा और घनानंद को छोड़कर पुरूष जनित भक्तिकाल एवं रीतिकाल में कृष्ण के 'मान' की चिंता राधा सहित सभी गोपियाँ करती थीं लेकिन स्त्री लेखिकाओं द्वारा रचित काव्य में कृष्ण को राधा के 'मान' की चिंता हो रही है। राधा ने रूष्ट होकर कृष्ण से मिलना बंद कर दिया है। धीरोदत्त कृष्ण की व्याकुलता बढ़ती जा रही है। निसि–बासर उन्हें राधा का ध्यान घेरे हुए है। अपनी प्रिया को मनाने के लिए वे बगिया में बैठकर विभिन्न कुसुमों से सुसज्जित एक माला बना रहे हैं। कृष्ण का यह चित्रांकन देखिए –

उतै अकेले कुंज में बैठे नन्दकिसोर।
तेरे हित सज्जा रचत विविध कुसुम दल जोर।।
विविध कुसुम दल–जोर तलप निज हाथ बनावत।
करि करि तेरो ध्यान कठिन सों छिनन बिहावत।।
जाके सब आधीन सुतो आधीनौ तेरे।

[47] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कविता–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 146
[48] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 243
[49] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या. 141

जिहिं मुख लखि ब्रज जियत वहै तो मुख रूख हेरे।।[50]

राधाभक्तों की श्रेणी में एक नाम कवयित्री शेख रंगरेजिन का भी आता है। उन्होंने कृष्ण की उस अवस्था का वर्णन किया है जिसमें बारंबार प्रार्थना करने पर भी राधा, कृष्ण से भेंट हेतु नहीं आती। बिछोह की पीड़ा से अचेत होकर कृष्ण मुरली बजाना, गाय चराना और मोरमुकुट धारण करना बिसर गए हैं तथा कालिंदी के तीर पर बैठकर अश्रुपात कर रहे हैं। मध्यकालीन समाज में किसी नायक के द्वारा अपनी नायिका के लिए अश्रुपात करना असंभव सा प्रतीत होता है; लेकिन विरह ज्वार से पीड़ित कृष्ण को राधा के वियोग में बिलखता दिखाकर शेख ने न केवल मनुष्यता के मानकों को पुनर्निर्मित किया है वरन् मध्यकालीन जड़ता पर भी कुठाराघात किया है। राधा के वियोग में मुरली मनोहर की निम्नांकित छवि हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। शेख का यह कवित्तांश देखिए –

कहूँ भूल्यो बेनु कहूँ धाई गयी धेनु कहूँ,
आये चित चैनु कहूँ मोरपंख परे हैं।
X X X X X
याते जानियति है जू वेऊ नदी नारे नीर
कान्ह बर विफल बियोग रोय भरे हैं।।५।।[51]

इस तरह हम देखते हैं कि बरसाने की राधा को आधार बनाकर रचना करने वालों में रसिकबिहारी बनीठनी जी, रानी बाँकावती, सुंदरिकुँवरिबाई और शेख रंगरेजिन का नाम मुख्य है। यदि स्त्री–विमर्श की दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी साहित्य में विद्यापति और सूरदास के यहाँ कई ऐसे पद प्राप्त होते हैं जिनमें राधा की ग्रीवा, गति, उर, कटि, दृग, चाल, नख, शिख, बैन, बेनी इत्यादि का लुभावना व सलोना वर्णन हुआ है। राधातर साहित्य में भी जहाँ स्त्री का सौंदर्य वर्णन हुआ है वहाँ भी उक्त प्रतिमानों का ही संबल ग्रहण किया गया है। आश्चर्य है कि हिंदी साहित्य में जहाँ–जहाँ कृष्ण की आँखों, भौंहों, कटि, बैना आदि का वर्णन है वहाँ भी स्त्री के उक्त उपादानो का ही प्रयोग सिद्ध है। ऐसे में यह क्यों न मान लिया जाए कि स्त्री के सौंदर्य उपादानों ने हिंदी साहित्य में वर्णित कृष्ण को गरिमा प्रदान की है और उनका स्त्रीमय रूप संसार के समक्ष रखा है। बहरहाल, यह स्वीकार करना चाहिए कि विख्यात लेखकों की 'राधा भक्ति' की कमियों को पूरा करते हुए उक्त लेखिकाओं ने 'राधा' नाम को कृष्ण और राम के समकक्ष लाकर रख दिया है अन्यथा संपूर्ण भक्तिकाल में मिलने वाली एकमात्र लेखिका मीराँबाई के द्वारा कृष्णभक्ति के अनूठे मापदंड स्थापित करने के पश्चात् भी हिंदी साहित्य में राधा की उपासना करना एक दूर की कौड़ी है। यहाँ हमें सही मायने में एक स्त्री की सोच परिलक्षित होती है जो स्त्री के पक्ष में खड़े होकर अपने को अपनी ही आँखों से देखने की वकालत करती है।

---

[50] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कविता–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 142
[51] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, कवित्त संख्या, 80

मध्यकालीन लेखिकाओं ने 'राधाभक्ति' के अतिरिक्त कृष्णभक्ति, रामभक्ति, शिवभक्ति और मंदिर भक्ति पर भी अपनी कलम फेरी है। फिर यह उस युग की मूल साहित्यिक वृत्तियों में से एक थी। इससे अलग होकर लिखना आलोच्य काल की प्रत्येक लेखिका के लिए मुश्किल ही नहीं अपितु असंभव था; इसलिए हम मीराँबाई, ताज, शेख रंगरेजिन, श्रीप्रताप बाला, गंगाबाई और बीराँ के काव्य में कृष्ण भक्ति की विभिन्न छटाएँ देखते हैं। यदि कवयित्री श्रीप्रताप बाला कृष्ण के चतुर्भज रूप की वंदना करती हैं तो शेख उनके दीनबंधु रूप की आराधना करती हैं। प्रतापबाला के मन में कृष्णभक्ति की ज्योति ऐसी प्रज्वलित हुई है कि वह किसी अन्य का नाम ही नहीं ले रहीं। उनका मानना है कि जिस प्रकार ब्रजेश्वर ने मीराँ, करमा और कुबरी नामक भक्तों को तार दिया उसी प्रकार वह जामसुता को भी इस भव सागर से पार उतार देंगे। अतः कवयित्री बगैर कोई क्षण व्यर्थ गँवाए चतुर्भुज श्याम का स्मरण करना चाहती हैं। उदाहरण देखिए –

लगन म्हाँरी लागी चतुरभुज राम !

x x x x x

हरि सुमिरन तें सब दुख जाये मन पाये बिसराम।

तन मन धन न्यौछावर कीजै कहत दुलारी जाम।।[52]

लेखिका शेख रंगरेजिन कृष्ण के दीनबंधु दीनानाथ रूप की उपासिका हैं। उनके लिए दुष्टों का संहार कर संतो की रक्षा करने वाले वृन्दावन स्वामी अधिक पूजनीय हैं। वे गरीब निवाज़, पतितों के उद्धारक और स्त्रियों के रक्षक हैं। उनके यहाँ हाथी की चिंघाड़ बाद में पहुँचती है; चींटी की पुकार पहले सुनी जाती है इसलिए; सबल भक्ति वाला मानुष ही वहाँ अडिग रह सकता है। यथा –

पैंड़ों सम सूधो बड़ों कठिन किंवार द्वार

द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।

सेख मनि तहाँ मेरे त्रिभुवन राय हैं जू,

दीन बन्धु स्वामी सुरपतिन को पति है।।

x x x x x

हाथी को हँकार पल पाछे पहुँचन पावे

चीटीं को चिंघार पहिले ही पहुँचति है।।[53]

मीराँबाई ने शेख से भिन्न हरि चरणों की वंदना करने पर अधिक बल दिया है। हरि चरणों के प्रताप से भक्त ध्रुव और भक्त प्रहलाद का उद्धार हुआ, हरि चरणों ने कालिया नाग पर विजय प्राप्त की, गोबर्धन पर्वत धारण किया; मीराँबाई का विश्वास है कि हरि चरणों की वंदना करने से उनका भी उद्धार होगा। उनका 'राग तिलग' देखिए –

मण थें परस हरि रे चरण।।

---

[52] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 161

[53] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, कवित्त संख्या, 250

सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।

जिण चरण प्रहलाद परस्याँ, इन्द्र पदवी धरण।

x x x x x

जिण चरण गोबरधन धार्याँ गरब मघवा हरण।

दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण।।[54]

हिंदी साहित्य के इतिहास में संभवतः कोई ऐसा रचनाकार हुआ हो जिसने कृष्ण के कुरूक्षेत्रिए रूप की वंदना की हो और कुरूक्षेत्र को कृष्ण मिलन हेतु शुभ स्थान घोषित किया हो ? अबतक हिंदी साहित्यकार ब्रजकुँज, कालिंदी का तीर, ब्रज की गलियाँ इत्यादि को ही माधव मिलन का उपयुक्त स्थान बताते आए हैं। फिर हिंदी साहित्य की श्रृंगार भावना से अलग कोई युद्धभूमि जो लहुलुहान व मृत जनों से आच्छादित हो प्रभु के दर्शन हेतु शुभ कैसे हो सकती है! परंतु कवयित्री रत्नकुँवरि बीबी ने 'कुरूक्षेत्र शुभथान। ब्रजबासी हरि को मिलन[55] कहकर कृष्णभक्ति के बने बनाए ढाँचे से भिन्न एक नया ढाँचा तैयार किया है जो थोड़ा अटपटा लग सकता है परंतु कवयित्री की एक अलग छवि सामने रखता है।

कृष्णभक्ति की उक्त छटाओं के अतिरिक्त आलोच्यकाल की लेखिकाओं ने वात्सल्य के महीन और मनोहारी दृश्य खींचे हैं। इनमें रसिकबिहारी बनीठनी, गंगाबाई, शेख रंगरेजिन और मीराँबाई का नाम मुख्य हैं। बनीठनी जी ने रात के उनींदे, अलसाते, पलकें मूँदे और मुसकाते बालकृष्ण की ऐसी छवियाँ उकेरी हैं जिसपर मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता। वत्सलता से परिपूर्ण बनीठनी जी का यह 'राग तिताल' देखिए –

हो कान्ह जी राति रा उणींदा रंग राता।

निस रैं ध्यान ए मुँदी पलकैं आवैं, ललक मदन मद मांता।

अलक माहि अणवट प्यारी रौं, ल्याता थे उलझाता।

'रसिक बिहारी' लागौ छौ प्यारा, मुसक्याता अलसाता।।[56]

गंगाबाई के कृष्ण नींद से उठकर अपने सखाओं के साथ खेल खेलने लगते हैं और माखन चखने हेतु दूध–दही बेचने आईं ग्वालिनों का मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं; लेकिन जब ग्वालिनें उन्हें माखन नहीं चखाती तब वे उनका आँचल पकड़ अपनी तुतलाती भाषा में हठ करने लगते हैं और जब तक उनकी कही पूरी नहीं हो जाती तब तब वे उनका आँचल और मार्ग नहीं छोड़ते। नतीजतन ग्वालिनों को उन्हें माखन चखाना पड़ता है। गंगाबाई का यह रसमय राग देखिए –

लाल! तुम पकरी कैसी बान ?

जब ही हम आवत दधि बेचन तब ही रोकत आन।।

---

[54] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 95

[55] मुंशी देवी प्रसाद 'मुंशिफ', महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 74

[56] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 234, पद संख्या, 32

मन आनंद कहत मुँह की सी, नंद नंदन सो बात।
घूँघट की ओझल ह्वै देखन, मन मोहन करि घात।।
हँसि लाल गह्यो तब अंचरा, बदन दही जु चखाई।
श्री विट्ठल गिरधरन लाल ने खाई के दियो लुटाई।।[57]

उल्लेख्य है कि बालकृष्ण की उपरोक्त लीलाएँ और उनके सुरख काले बाल दूध–दही बेचने आईं ग्वालिनों की सुध–बुध बिसरा देते हैं। बालक कृष्ण की अठखेलियाँ उनका मन मोह लेती हैं। परिणामस्वरूप ग्वालिनें इतनी प्रसन्न रहती हैं कि वे रोज उनके दर्शन करना चाहती हैं और जिस दिन उन्हें बाल कृष्ण के दर्शन नहीं होते उस दिन दूध–दही बेचने में उनका मन नहीं रमता। यदि विवशतावश बेचती भी हैं तो उनका शब्द स्फुटन हो जाता है और वे दूध–दही के स्थान पर 'श्याम मनोहर' को बेचने लगती हैं। कृष्ण छवि की झलक न मिलने से ग्वालिनों की मादक स्थिति का यह पद देखिए –

कोई स्याम मनोहर ल्योरी सिर धरे मटकिया डोलै।
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो हरिल्यो' बोलै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई विण मोलै।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालिन, औरहि औरे बोलै।।[58]

शेख रंगरेजिन के कृष्ण रसिकबिहारी, गंगाबाई और मीराँबाई से जरा भिन्न हैं। वे अपनी माता जशोदा और गाँव की ग्वालिनों को न केवल जानबूझकर तंग करते हैं अपितु अपने समकक्षियों से गारियाँ भी सीख कर आते हैं। निम्नांकित उदाहरण देखिए जिसमें बालक कृष्ण अपनी बंसी खो जाने पर किसी गोपी के पास जाकर बंसी मांगते हैं और न मिलने पर उसे गारियाँ देते हैं। कृष्ण के इस बालहठ से दुखी होकर वह ग्वालिन अपने कई कार्य मझधार में ही छोड़कर बीसियों बार जशोदा के घर उसकी शिकायत करने आती है। ग्वालिन की शिकायत का यह आकर्षक छंद देखिए –

बीस बिधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,
याही काज वाही घर बाँसनि की बारी है।
नेकु फिरि ऐहैं कैहैं दै री दै जसोदा मोहिं,
मो पै हठि माँगैं बंसी और कहूँ डारी है।।
'सेख' कहै तुम सिखवो न कछु राम याहि,
भारी गरिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।
संग लाइ भैया नेकु न्यारो न कन्हैया कीजै,
बलन बलैया लैकै मैया बलिहारी है।।[59]

[57] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 161
[58] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 148

कृष्ण की बाँसुरी उनकी जीवन संगिनी है। 'जब भी वे उस सप्तशिरोमणि का वादन करते हैं तो गोकुल के सभी चराचर प्राणी उसकी स्वर व्यंजना सुनने के लिए अपने–अपने स्थान पर जड़ हो जाते हैं। मीराँबाई की ग्वालिनें बाँसुरी की धुन सुन बावरी हो जाती हैं, उनकी सुध–बुध खो जाती है और वे नेम–धरम का पालन करना भूल जाती हैं। कुल और कुलवधुत्व को भूलकर वे अनायास ही बाँसुरी की धुन में बँधकर उस ओर दौड़ी चली जाती हैं जिस ओर मुरली मनोहर मुरलीवादन कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बाँसुरी के स्वर गोपियों के लिए हृदय की साँस न होकर हृदय की फाँस हो गए हैं।[60] शेख द्वारा वर्णित कृष्ण की सखियाँ भी मुरली का स्वर सुनकर घर में ही द्विचित्त हो जाती हैं।[61] कवयित्री बीराँ का मन कृष्ण की बाँसुरी में इतना रम जाता है कि वे अंतर्मुखी हो जाती हैं और अपने अंतर्मुखत्व का आनंद ग्रहण करने लगती हैं। उन्हें अपने भीतर जीवन जगत और ब्रह्म के सच्चे दर्शन होने लगते हैं; इसलिए वे अपने पूज्य से पुनः बँसी बजाने को कहती हैं। यथा –

धुनि सुनि कान भई मतवारी अन्तर लग गयो ध्यान।
बीरां कहे तुम बहुरि बजाओ नंद के लाल सुजान।।[62]

गौरतलब है कि 'कृष्ण काव्यधारा की लेखिकाओं में गंगाबाई ने ही वात्सल्य भाव को प्रधान रूप में ग्रहण किया है। अधिकांश स्त्रियों ने कृष्ण के प्रति श्रृंगारिक माधुर्य भावनाओं का ही उन्नयन किया है। मातृहृदय के उल्लास की अभिव्यक्ति कृष्ण के बालरूप में करने वाली केवल गंगाबाई ही हैं।[63]

मध्यकालीन लेखिकाओं में रामभक्ति की इतनी पैठ नहीं है जितनी कृष्णभक्ति की है; क्योंकि 'स्त्रीभक्तों के लिए वंदनीय राम श्रद्धा के केन्द्रबिंदु तो अवश्य बने पर उनके संयमित आदर्श रूप के साथ समत्व की स्थापना कठिन थी। मानवीय लीलाओं से सम्पुष्ट भावनाओं के माध्यम से कृष्णकाव्य की रचना तो सरल थी किन्तु राम के गम्भीर दायित्वपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति साधनापरक अनुभूति की गहनता नारी की अभिव्यंजना क्षमता के लिए सहज न थी। समाज में राम का आदर्श रूप सामान्य मानव से अधिक सर्वशक्तिमान के रूप मे स्थापित था। 'राम के महान व्यक्तित्व के समक्ष भक्त कवयित्रियाँ अत्यंत दीन भाव से आत्मसमप्रण तो कर सकती थी पर उन्हें कृष्ण की भांति अपना आलंबन बनाकर साधारणीकृत नहीं हो

---

[59] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कविता–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 79

[60] भई हो बावरी सुन के बाँसुरी, हरि बिनु कछु न सुहाये हे माई।
स्रवण सुनत म्हारी सुध बुध बिसरी लगी रहत तामें मन की गाँसु री।
नेम धरम कोण कीनी मुरलिया कोण तिहारे पासु री ?
मीराँ के प्रभु बस कर लीने सप्त ताननि की फाँसु री।
(परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 144)

[61] जो लौं कहूँ मुरली की घोर सुनी कान 'सेख',
घरी ही मे देहली दुहेली भई घर तें।
परी तिहि काज हुती पीरी बाल जनु,
सीरी भई सुनि छुटि बीरी गई कर तें।।
विद्यानिवास मिश्र (संपा.), आलम ग्रंथावली (शेख के कवित्त), पृष्ठ संख्या, 113

[62] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य सांधना, पृष्ठ संख्या, 124

[63] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 159

सकीं थीं। भगवान कृष्ण की बाल–लीलाओं और किशोर लीलाओं आदि में रम जाने के लिए नारी हृदय के सम्मुख अनेक प्रसंग थे लेकिन राम के प्रति तो आस्था का आरंभ ही उनके नारायणत्व से होता था। अतः ऐसी स्थिति में राम स्त्रियों के लिए जीवन के समभागी न बनकर एक नैसर्गिक महिमामय व्यक्तित्व बन गये। यह कहा जा सकता है कि राम के अलौकिक आलोक के समक्ष अपनी दुर्बलताओं को खोलकर रख देने का साहस नारी नहीं कर सकती थी। यही कारण है कि कृष्णभक्त कवयित्रियों की तुलना में रामभक्त कवयित्रियाँ बहुत कम हुई हैं।[64] फिर भी प्रेमसखी और प्रतापकुँवरिबाई जैसी कुछेक रामभक्त रचनाकार हो गई हैं जिन्होंने 'राम' को अपना उपास्यदेव और 'रामभक्ति' को अपने जीवन का मूलाधार स्वीकार किया है। प्रतापकुँवरिबाई जी ने 'रामचंद्र नाम महिमा', 'रामगुणसागर', 'रघुवरस्नेह लीला', 'राम प्रेम सुखसागर', 'रामसुजस पचीसी' नामक भक्ति ग्रंथों की रचना की है। वे अपने उक्त ग्रंथों का मूल रघुवर कृपा को ही स्वीकार करती हैं इसलिए अपने ग्रंथ 'रामचंद्र नाम महिमा' के आरंभ में ही कहती हैं –

अब सुनिए चित धार सुजाना। रघुवर किरपा कहूँ बखाना।।
राम रूप हिरदे धर सुन्दर। पीरणूँ ग्रन्थ हरन दुख दुन्दर।।[65]

कवयित्री प्रतापकुँवरि अपने आराध्य राम के प्रति पूर्णतः समर्पण दिख पड़ती हैं। वे सदा धनुर्धर राम का ध्यान कर उनका 'नाम स्मरण' करने को कहती हैं। उनका मानना है कि राम का ध्यान धर कर यदि पुण्य कर्म किये जायें तो मनुष्य इस भवसागर से पार उतर सकता है। वे राम के चरण कमलों की वंदना करते हुए कुकर्मों से बचने और डरने की सलाह देती हैं। यथा –

धर ध्यान रटो रघुवीर सदा, धनु धारि को ध्यान हिये धर रे।
पर पीर में जाय के बेग परो, कर तें सुभ सुकृत को कर रे।।
तर रे भवसागर को भजि के, लजि के अघ औगुण ते डर रे।
परताप कुँवर कहै पद पंकज, पाव धरी मत वीसर रे।।[66]

अट्ठारहवीं शती की रामभक्त लेखिका प्रेमसखी का कालखंड सामाजिक विषमताओं से भरा हुआ था। 'कामिनी रूप के अतिरिक्त नारी के अन्य रूपों पर तो उस युग के कवियों की दृष्टि ही नहीं गई है। उनके हृदय की समस्त भावनाएँ, उनके जीवन का संपूर्ण ध्येय, केवल श्रृंगारिक भावनाओं की उलझनों तथा समाधानों में ही सीमित थीं। नारी के पत्नी, भगिनी, मातृ, सहचरि इत्यादि रूपों पर उनकी दृष्टि भी नहीं गई है।[67] ऐसे में लेखिका प्रेमसखी भगवान राम की आराधना करती हैं। उनका मानना है कि जिनके चरणों की

[64] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 118
[65] मुंशी देवी प्रसद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 46
[66] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 125
[67] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 236

सेवा करने से स्वयं देवी लक्ष्मी की इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है ऐसे आराध्य देव श्रीरामचंद्र उनकी भी भवबाधा दूर करेंगे क्योंकि वे सिद्धिदायक, कल्पतरू, कामधेनु के समान हैं। यथा –

कल्पलता के सिद्धिदायक कल्पतरू
कामधेनु कामना के पूरन करन हैं।
तीन लोक चाहत कृपाकटाक्ष कमला की,
कमला सदाई जाको सेवत सरन हैं।[68]

प्रेमसखी ने राम और लक्षमण के सुकुमार अंगों व चरणों की लुणाई का लुभावना चित्रण किया है। पुष्पवाटिका में फूल चुनने आए दोनों भाईयों की शारीरिक गंध व कोमलता के साथ पुष्पों की लताओं, वायु, जल, तृण की स्निग्धता का सामंजस्य बिठाना चित्ताकर्षक बन पड़ा है। राम लक्षमण के प्रति उनकी चिंता की कोमलता मन को हर लेती है। उनका यह अद्भुत पद देखिए –

कौशल कुमार सुकुमार अति भारह ते, आली घिर आई तिन्हें सोभा त्रिभुवन की।
फूल फुलबाई में चुनत दोऊ भाई प्रेम, सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की।।
चरन लुनाई दृग देखे बन आई जिन, जीती कोमलाई और ललाई पदुमन की।
चलत सुभाइ मेरौ हियरा डराई आय, गड़ि मति जाय पांव पांखुरी सुमन की।।[69]

मध्यकालीन लेखिकाओं में किसी ने भी राम–लक्षमण के पैर में फूल की पंखुरी गढ़ने के डर का इतनी निश्छलता से वर्णन नहीं किया होगा जितनी निश्छलता से प्रेमसखी ने किया है।

अबतक रचित हिंदी साहित्य में शिवभक्ति और मंदिर निर्माण के प्रति घोर अनुराग दृष्टित नहीं होता। संभवतः यह भागवत धर्म के प्रचार और प्रसार का प्रभाव हो जिसके कारण हिंदी साहित्य में भक्ति विषयक ग्रंथों की बाढ़ सी आ गई थी। यह भावना इतनी प्रबल थी कि 'शैव शाक्त आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन संप्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सके।[70] संभव है कि प्रतापकुँवरिबाई भी उसी भागवत धर्म के प्रवाह में बह गई हों क्योंकि उनके मन में अंकुरित शिवभक्ति का बीज राम भक्ति के तत्व लेकर ही पल्लवित हो रहा है। उन्हें प्रभु श्रीराम के द्वारा ही स्वप्न में यह कहा गया है कि मेरे मंदिर में शिव की स्थापना कीजिए और स्वयं भगवान राम, कैलाशपति से जाकर निवेदन करते हैं कि वे कवयित्री द्वारा निर्मित मंदिर में निवास करें। यथा –

एक समै प्रभु मन इम आई। महादेव कूँ लिए बुलाई।।
सुनौ सदाशिव बचन हमारा। तुम हो मेरे प्राण पियारा।।
यह मन्दिर कैलाश समाना। तुमरे लायक कृपा निधाना।।

---

[68] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 224
[69] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 224
[70] नगेंद्र (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी), हिंदी साहित्य का इतिहास (भक्तिकालः पूर्वपीठिका), पृष्ठ संख्या, 87

प्रताप कुअँर पर किरपा कीजै। इन मन्दिर में आप रहीजै।।[71]

कवयित्री प्रतापकुँवरि बाई उन गिनती की साहित्यकारों में हैं जिन्होंने भगवद् भक्ति के अतिरिक्त मंदिर निर्माण में भी रूचि प्रकट की है। उन्होंने अपने काव्य में मंदिर के मध्य का चौक, चारों दिशाओं में चौसाला, बड़े–बड़े फाटक, दोनो दिशाओं में खड़े हाथी और झुके हुए झरोखों का रूचिकर वर्णन किया है। ध्यातव्य है कि सन् एक हज़ार ईस्वी के आसपास महमूद गजनवी ने मथुरा, थानेश्वर और सोमनाथ मंदिर से करोड़ों की लूट की थी। तत्पश्चात् अलाउद्दीन खिलजी ने न केवल यहाँ के राजाओं को हराया बल्कि उनके मंदिर भी ध्वस्त कर दिये थे; रही सही कसर औरंगजेब ने राजपूतों के मंदिर ध्वस्त करके पूरी कर दी थी; इसलिए हम प्रतापकुँवरि बाई की निम्नलिखित चौपाईयों को तोड़े गए मंदिरों की क्षतिपूर्ति के रूप में भी देख सकते हैं। सौंदर्य वर्णन के ऐसे दृश्य हिंदी साहित्य में दुर्लभ हैं –

वीच विराजत चौक बिसाला। च्यांरू दिसा चारू चौसाला।।
ऊँची पौल किवार सुहाय। ता बाहिर तोरण छबि छाए।।
दोनूँ दिसा दोय गज कीना। परखत गज जिम परत न चीना।।
सनमुख पौल चलत बजारा। तापर झुके झरोखा सारा।।[72]

गौरतलब है कि लेखिका प्रतापकुँवरिबाई के मन में मंदिर निर्माण और उसमें शिव की स्थापना की रूचि 'स्वप्न कल्पना' के माध्यम से जागृत हुई है। उनके प्रथम आराध्य श्री रामचंद्र जी उन्हें स्वप्न में आकर स्वयं हेतु एक नवीन मंदिर के निर्माण के लिए कहते हैं और साथ ही आराध्य शिव की स्थापना अपने मंदिर में करने के लिए कहते हैं। यथा –

फिर सपने रघुबीर पधारे। सुनिए बाई बचन हमारे।।
इन मंदिर में शिव पधराओ। हमरे मंदिर और बनावो।।[73]

उल्लेख्य है कि हिंदी साहित्य के अंतर्गत केवल आदिकालीन प्रबंध काव्यों और कुछेक भक्तिकालीन प्रबंध काव्यों में ही स्वप्न कल्पना का काव्यमयी प्रयोग हुआ है जिसके अंतर्गत श्रृंगारिक भाव भंगिमाओं का वर्णन ही अधिक हुआ है; लेकिन प्रताकुँवरि जी के यहाँ 'स्वप्न कल्नपा' भक्ति का विषय बनकर आई है। संभवतः ये उत्तर और दक्षिण भारत की भक्ति पद्धतियों के मध्य सामंजस्य बिठाने का प्रयास हो। बहरहाल, प्रतापकुँवरिबाई के काव्य में इस तरह का प्रयोग भक्ति साहित्य में ही नहीं हिंदी साहित्य में भी बड़ा अनूठा बन पड़ा है।

उपरोक्त भक्ति पद्धतियों से अलग धर्मधूसरित उस काल में 'धामी पंथ' नाम का एक ऐसा धर्म संप्रदाय मौजूद था जिसका दृष्टिकोण समन्वयकारी था। जिसकी दृष्टि में सभी धर्म समान थे और सभी

[71] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 49
[72] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 50
[73] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 49

धर्मावलंबियों का सम्मान था। इस पंथ के भीतर किसी भी धर्म के अनुयायी आकर शरण ले सकते थे। संत प्राणनाथ की पत्नी इंद्रामतिबाई इसकी सक्रिय प्रचारक होने के साथ–साथ उच्चकोटि की भक्त भी थीं। उन्होंने जनमानस में धर्म के सही दृष्टिकोण के प्रति जागृति फैलाने में मुख्य भूमिका निभाई है। ऐसे युग में जहाँ हिंदु–मुसलमानों के मध्य मनभेद और मतभेद की खाई बढ़ती जा रही थी वहाँ इंद्रामतिबाई का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। उनका एक फुटकर गद्यांश देखिए –

श्री किताब कुरान श्री सन्नध।
असराफी लेखुस आवाज से कुरान को गाया है।
अपनी सुरत पर जाहिर हुई मैं।।

मध्यकालीन वातावरण में किसी हिंदू महिला के द्वारा कुरान की वंदना करना उतना ही चुनौतीपूर्ण कार्य है जितना कि ताज़ जैसी मुस्लिम महिला के द्वारा कृष्ण को अपना 'दिलजानी या साहिब' स्वीकार करना। सामाजिक कल्याण की इस मुहिम में निसंदेह इंद्रामतिबाई जी का कद मीराँबाई जैसी कवयित्री से कहीं ऊँचा बैठता है।

गौरतलब है कि सगुण भक्ति के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि व्याख्येय लेखिकाओं ने राधाजन्म, स्वामिनी राधा, कृष्ण जन्म, श्याम वंदना, चरण वंदना, नाम स्मरण, वात्सल्य वर्णन, वाटिका भ्रमण, रामभक्ति, शिवभक्ति, मंदिर भक्ति जैसे बिंदुओं के द्वारा सगुणभक्ति की गहरी भावनुभूतियों को न केवल छुआ है वरन् भक्ति के जितने आयाम हो सकते हैं उनके भाव प्रकाश में भी वे सफल कही जा सकती हैं। उन्होंने भक्ति के पोर–पोर को जीने का प्रयास किया है।

<u>प्रेम का स्वरूप</u> : मध्यकालीन कवयित्रियों ने कृष्ण के बाल रूप से अलग उनके प्रेमी रूप के साथ–साथ स्वतंत्र प्रेम का भी मनोहारी चित्रण किया है। उन्होंने भक्ति के अंदर निर्मित प्रेम के स्फुलिंगों पर तो कलम चलाई ही है, साथ ही राजा–राणाओं से अगाध प्रेम करती वैश्याओं का दर्द भी समझने का प्रयास किया है। उनकी लेखनी की पीड़ा अनुभूत कर ये समझा जा सकता है कि उन्होंने मानव समाज से इत्तर प्रेम की एक अलग दुनिया का निर्माण करने का प्रयास किया है।

मीराँबाई के कृष्ण मुरारी जो जमुना में नहाती गोपियों के वस्त्र चुराकर ले जाते थे अब उनके स्वप्नों में आकर उनसे अठखेलियाँ करते हैं। कृष्ण को स्वप्न में देखने के कारण मीराँबाई का अंतर्मन बहुत प्रसन्न है और वे अपनी सखी को बतलाती हैं कि 'वस्त एक जब प्रेम की पकरी। आज भए सखी मन के भाए।[74] ध्यातव्य है कि तत्कालीन समाज में व्यस्क हो जाने के पश्चात् लड़का–लड़की का परस्पर मिलना अधार्मिक व असामाजिक माना जाता था। एक ही कुनबे के दो सदस्यों के मध्य प्रेम तो हो सकता था किन्तु उनका

[74] मुँशी देवी प्रसाद मुंशिफ, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 60

विवाह होना असंभव था। यदि कोई सदस्य कुल और गोत्र विरूद्ध कार्य करता था तो उसे गाँव की सीमा से बहिष्कृत कर दिया जाता था अथवा मृत्यु दंड दे दिया जाता था। ऐसी स्थिति में तत्कालीन नायक–नायिका की भेंट या तो साहित्य में संभव थी या फिर स्वप्न में हो सकती थी। इसके अतिरिक्त हिंदी साहित्य में राधा–कृष्ण की कई भेंटे जमुना किनारे दृष्टिगत होती हैं; संभवतः कालिंदी जैसी बड़ी नदी पर सामान्यतः कोई ग्रामीण विचरण करते हुए नहीं आता होगा। ढोर–डंगर को पानी पिलाने हेतु छोटे–बड़े तालाब या पोखर गाँव की ड्योढ़ी में ही बने होते थे इसलिए राधा–कृष्ण की भेंट हेतु जमुना से अधिक उपयुक्त स्थान और क्या हो सकता था! फिर नायक–नायिका की सखा–सखी इस बात का ध्यान रखते थे कि यदि कोई परिचित सज्जन भेंट स्थान के आसपास भी दृष्टिगत हो तो इसकी सूचना तुरंत प्रेमी युगल को दे दी जाए।

आधुनिक काल में जहाँ जनमानस तकनीकी रूप से बहुत सशक्त हो गया है वहाँ भी कोई वैद्य, ज्योतिष, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, कंप्युटर इंजीनियर या कंप्यूटर प्रेम की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दे सकता। आधुनिक युग में जहाँ तकनीकी क्षेत्र में प्रत्येक कार्य हेतु नित नए सॉफ्टवेयर विकसित हो रहे हैं वहाँ भी कोई ऐसा सॉफ्टवेयर नहीं बना। संभवतः आदिकाल से आधुनिक काल तक यह तथ्य सत्य है कि प्रेम की मूल प्रकृति वही दो जीव महसूस कर सकते हैं जो अपनी प्रीत के वृत्त में ही विचरण करते हैं। यहाँ प्रेम की प्रकृति को भाषा में अभिव्यक्त करने की बात इसलिए नहीं की जा सकती क्योंकि 'प्रेम' में कभी कभी भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति में असमर्थ सिद्ध हो जाती है। फिर प्रेम में नित नए प्रतिमान बनते और बिगड़ते हैं। नव–निर्मित इन्हीं प्रतिमानों के द्वारा प्रेम की अपनी एक भाषा बनती है जिसे वही प्रेमी युगल समझ सकता है जो उस वृत्त में है। इसलिए मीराँबाई का कथ्य सत्य सिद्ध होता है कि 'घायल री गत घायल जाण्याँ, हियड़ो अगण संजोय।[75]

व्याख्येय युगीन सामाजिक वर्जनाओं के मध्य हिंदी साहित्य में 'ताज़' नाम की एक ऐसी लेखिका हो गई हैं जिन्हें उक्त सामाजिक प्रतिबंधों का तनिक भी भय नहीं था। अकबरयुगीन साम्राज्य में जहाँ एक पति और एक पत्नी का उसूल लागू था; जहाँ स्त्रियों के लिए धर्म परिवर्तन की कोई व्यवस्था नहीं थी क्योंकि पति का धर्म ही उनका धर्म समझा जाता था; जहाँ किसी मुसलमान स्त्री के द्वारा कलमा और कुरान त्यागकर देव पूजा करने की बात कहना स्वयं मुत्यु का वरण करना था; वहाँ ताज़ द्वारा कृष्ण को अपना 'दिलजानी' और 'साहिब' स्वीकार करना निसंदेह साहस और अदम्य मानसिक शक्ति का परिचायक है। यहाँ ताज़ मीराँबाई से भी दो कदम आगे निकल गई हैं। प्रेम के आगे सामाजिक रूढ़ियों, नियम–कानूनों को धता बताता और प्रेम का परचम लहराता हुआ ताज़ का वह कवित्त निम्नांकित है –

सुनो दिल जानी मेरे दिलदी कहानी तुम,

[75] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 116

दस्तही बिकानी बदनामी ही सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज़ हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान साडे गुनन गहूँगी मैं।
श्यामला, सलोना सिरताज सिर कुले दिए,
तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नंद के कुमार कुरबान तांडी सूरत पे,
तांड नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं।।[76]

'धर्म तथा जाति की सीमा तोड़कर कृष्ण के चरणों में सर्वस्व समर्पण द्वारा, ताज ने कृष्ण रूप के प्रति नारी के सहज आकर्षण का प्रमाण दिया है।[77] वे 'भारत की राबिया है। उनकी कविता के मुकाबले में कोरा निर्गुणियाँ सूफियाना अंदाज वायवीय लगता है तथा कोरा आशिकाना अंदाज मांसल। ताज का प्रेम भक्ति की पावनता से ऊभचूभ है, उनकी भक्ति प्रेम की जीवंतता से सराबोर। संसार की श्रेष्ठ कवयित्रियों में ताज बेगम का भी एक निश्चित स्थान स्वीकार किया जाना चाहिए।[78]

'स्त्री का मन भक्तिकाल की स्त्री कवयित्रियों में गायब है ऐसी बात नहीं है। प्रेम की लड़ाई दुहरी है। एक मोर्चे पर समाज है दूसरे पर प्रेमी। प्रेमी वाले मार्चे पर कवयित्रियाँ प्रतिरोध हीन दिखाई देती हैं, समर्पणशील हैं, वहीं समाज के मोर्चे पर झुकती नहीं दिखाई देती।[79] दरअसल समाज और सामाजिकों से प्रेमभक्तों का कोई सरोकार नहीं होता। अधिकांशतः समाज और प्रेमियों के मध्य ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो एक–दूसरे के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। जो कार्य समाज हित में है वह प्रेमियों के हित में नहीं होता और जो प्रेमियों के हित में है वह समाज के हित में नहीं होता। सामाजिक संदर्भों में प्रेम की इस उलट रीति को कवयित्री मीराँबाई ने इस प्रकार स्वीकार किया है –

आली री म्हारे णेणाँ बाण पड़ी।।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिबड़ा अणी गड़ी।
x x x x x
अटक्याँ प्राण साँवरो प्यारो, जीवन मूर जड़ी।
मीराँ गिरिधर हाथ बिकाणी, लोग कह्याँ बिगड़ी।।[80]

मध्यकालीन स्त्रियों की सामाजिक छवि पुरूष वर्चस्व के नीचे दबी हुई थी। उनकी मनेच्छाओं का कोई मोल नहीं था। एक ही राज्य में रह रहा लगभग प्रत्येक पुरूष राज्य की परोक्ष–अपरोक्ष सेवा करने के लिए बाध्य था। कई महिलाओं के पति तो सीधे–सीधे राज्य की सेना में सम्मिलित होते थे। हज़ारों की सेना जब

[76] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 34
[77] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 185.187
[78] रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 31
[79] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या, 367
[80] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 98

प्रयाण करते हुए युद्ध क्षेत्र की ओर निकल जाती थी और महीनों–महीनों घर नहीं लौटती थी, तो ऐसे में एक स्त्री का मन कितना व्याकुल, व्यग्र, उद्वेलित, आलोढ़ित, भयग्रस्त और निष्पलक होता होगा इसका अनुमान लगाना कठिन है! ऐसे में कृष्ण चरित्र के अतिरिक्त और कोई नहीं था जो तत्कालीन महिलाओं के मानसिक और शारीरिक ज्वर को शांत कर सकता हो; किंतु यह शांत होना भी अशांत होने जैसा ही था क्योंकि कृष्ण प्रेम में पगी हुई गोपियाँ बार–बार उनके दर्शन करना चाहती हैं। उनकी गति यह है कि वह जितनी बार हरि के दर्शन करती है उतनी बार उनकी लालसा और बढ़ जाती है। वह निसि–बासर बनवारी लाल के घर के चक्कर लगाती रहती है ताकि उनकी एक झलक पाकर अपने मन की उत्सुकता को शांत कर सकें। कृष्ण प्रेम में मदमाती गोपी का यह कवित्त देखिए –

निरधक भई अनुगवति है नन्द घर,
और ठौर कहूँ टोहे हू न अहटाति है।
पौरि पाखे पिछवारे कौरे कौरे लागी रहे,
आँगन देहली याही बीच मँडराति है।।
हरि रस राती सेख नेकहूँ न होइ हाती,
प्रेम मदमाती न गनति दिन राती है।
जब जब आवती है तब कछु भूलि जाति,
भूल्यों लेन आवति है और भूलि जाति है।।[81]

नायक–नायिका के प्रेम की यह अद्‌भुत रीति है जिसमें बार–बार देखने से लालसा और बढ़ती जाती है और नायिका बारंबार भूली हुई वस्तु लेने के लिए आना चाहती है। यहाँ अर्थशास्त्र का 'सीमांत उपयोगिता' का नियम निराधार सिद्ध होता है। अर्थशास्त्र के 'सीमांत उपयोगिता' नियम के अनुसार दूसरी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता पहली वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता की अपेक्षा कम होती है और जैसे–जैसे हम उन वस्तुओं का उपभोग करते जाते हैं वैसे–वैसे प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटती जाती है। संभवतः प्रेम की यही प्रकृति है जिसमें सारी व्यवस्थाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं और अव्यवस्था ही नव–निर्मित व्यवस्था सिद्ध होती है।

हिंदी साहित्य में नायक और नायिका के नैनों की सुंदरता, कोमलता, माधुर्यता, सौम्यता और विरहदग्धता को देखने का भरसक प्रयास किया गया है किंतु नैंनो के द्वारा सचेतन संसार को देखने का प्रयास कहीं–कहीं हुआ है। प्रेम में आँखों से आँखों का मिलन समस्त शारीरिक भंगिमा में अवरोध उत्पन्न कर देता है। उस समय नैनेत्तर इन्द्रियाँ न केवल जड़ हो जाती हैं अपितु उनकी संपूर्ण शक्ति नैनों में ही समाहित हो जाती है। अन्य सभी अंग एवं इंद्रियाँ नैनों के भाग हो जाते हैं न कि शरीर के अंग रह जाते

[81] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, छंद संख्या, 52

हैं। ऐसे में आँखों की प्रधानता हो जाती है और सभी प्रकार का मानवीय और मानवेत्तर वार्तालाप नेत्रों के द्वारा सुलभ होता है अर्थात् नैन हर्ष–विषाद, कोमलता–कठोरता, संयोग–वियोग, नमनीयता–ऊष्णता आदि के प्रतीक हो जाते हैं। मध्यकालीन कवयित्रियों में मीराँ, शेख रंगरेजिन, बीराँ, केशवपुत्रवधु और सुंदरकुँवरिबाई ने बड़ी ही स्निग्धता से आँखों का भाषायी प्रयोग किया है। उनकी आँखें ही उनका दर्शन हो गई हैं। शेख की नायिका कृष्ण को अपने रूप सौंदर्य से छकाना चाहती है किंतु उनके दर्शन का प्रताप ऐसा है कि वह स्वयं ही छक कर लौट आती है (गई हुती छाक दैन आपु छकि आई है।[82]); राधा के लुणाई भरे दृगों के कोर देखकर सुंदरिकुँवरि के मुरली मनोहर के दृगों की गति अवरूद्ध हो गई है (लोने दृग कोने पलकानन छुवत चलि, झीने पट देखि पिय दृग गति पंग है।[83]); मीराँ नंदलाल को अपने नैनों में बसाना चाहती हैं (बस्याँ म्हारे णेणणमाँ नंदलाल।[84]); केशव कुमार कवयित्री केशवपुत्रवधु को जब तनिक भी देखते हैं तो वे सभी दुख–द्वन्द्व भूल जाती हैं (जैहै सबै दुख भूलि तबै, जब नेकहु दृष्टि दै मोते चितै है।[85]); कवयित्री छत्रकुँवरि जी की नायिका के नेत्र तो अपने प्रिय से ऐसे उलझ गए हैं कि नैंनों के आगे शरीर के सभी अंगों ने समर्पण कर दिया है। यह अद्‌भुत उदाहरण देखिए –

गरबाँही दीने कहूँ, इक टक लखन लुभाहिं।
पगपग द्वैद्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं।।
थकित खरी रहि जाहिं, दृगन दृग छुटे न छूटे।
तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सु लूटे।।
नैनन नैनन सुगल, बैन सों नहिं बनि आवै।
उमड़न प्रेम समुद्र, थाह तिहिं नाहिन पावै।।[86]

लोकसमाज में प्रेमी युगल के मध्य 'चुहलबाजी या नुक्ताचीनी' का होना प्रेम की गरिमा को बढ़ाता है। मनुष्य मानस जिसके प्रति सर्वाधिक स्नेह व लगाव महसूस करता है उससे अपने मन की सारी पीड़ा बेखटके कह देता है। ऐसी स्थिति में दो शरीरों में निहित पंचतत्व एकमेक हो जाते हैं। प्रेम की इसी वृत्ति के कारण शेख की प्रिया अपने प्रिय से शिकायत करती है कि तुम्हारे ढीले–ढीले डग और अलसाए नेत्र बता रहे हैं कि तुम रात भर सोए नहीं हो। चूँकि पूर्व रात्रि तुम मेरे पास भी नहीं थे इसलिए मुझे शंका है कि तुम किसी पर–स्त्री के साथ थे! फिर भी शंका, शंका होती है इसलिए तुम सच्ची–सच्ची बताओ कि रात भर कहाँ रहे हो ? अपनी प्रिया का यह असुरक्षाबोध जानकर नायक उसे तसल्ली प्रदान करता है कि मेरे लिए तुम से बढ़कर प्रिय और कोई नहीं है; इसलिए तुम्हारी यह शंका निर्मूल है। फिर भी जब प्रिया 'मान' कर बैठती है

[82] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 86
[83] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 145
[84] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 95
[85] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 288
[86] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 22

तो नायक उसे मनाने का भरसक प्रयास करता है; परंतु उसका असुरक्षाबोध व ईर्ष्या और बढ़ जाती है। मनाने की इसी प्रक्रिया में वह अपने प्रिय से चुहल करते हुए कहती है कि –

बोलो ताहि सों हो सौहैं जोरै कौन भौहैं ऐसे,
पाँय परौं वाके जाके पाय पर वारे हो।
प्यारी कहौ ताही सों जु रावरे सों प्यारे कहै,
आजु कालि रावरे परोसिन के प्यारे हो।।[87]

'माना जाता है कि जब तक प्रेम में बिछोह की स्थिति न आए तब तक प्रेम की गहराई और सच्चाई का ज्ञान नहीं होता। इस संबंध में रीतिमुक्त कवि घनानंद की विरहवाणी और सूरदास की राधा का विरह स्वर संसार भर में प्रसिद्ध है। कवयित्री मीराँबाई भी अपने प्रियतम कृष्ण के बिछोह में बिलख रही हैं क्योंकि मुरलीधर उन्हें प्रेम की पाठी पढ़ाकर विरह समुद्र में अकेला छोड़ गये हैं। उनके वियोग में मीराँ का स्वर और शरीर कंपित हो रहा है। शरीर में इतना आलोढ़न हो रहा है कि कोई चिट्ठी–पत्री भी नहीं लिखी जा सकती। वे बेसुध सी हो गई हैं जिसके कारण उनका ख़ान–पान छूट गया है; परिणामस्वरूप उनका शरीर अति क्षीण हो गया है।[88] उधर शेख रंगरेजिन की गोपियों की भी यही स्थिति है। वे उद्धव से कह रही हैं कि तुम कृष्ण से जाकर कहना कि उनके वियोग में ब्रज अग्नि में घृत की भांति जल रहा है। शरीर रूपी वन में दावानल छाया हुआ है। ऊपर से देखने पर सब सामान्य प्रतीत होता है किंतु भीतर पर्वत से भी अधिक भारी वियोग असहनीय हो रहा है। किसी वैद्य या हकीम के पास इसका कोई निदान नहीं दिखता क्योंकि मुरलीधर ही इसके सच्चे वैद्य हैं। शेख का यह कवित्तांश दृष्टव्य है –

हाँसी नहीं नैसकू उकासी देत जोग तन,
बिरह बियोग झार औरै दावानल है।
सिर सों न खेलै पग मेले न परे लौं जाय,
गिरि हू ते भारो यहाँ बिरह सबल है।।[89]

उल्लेख्य है कि 'विरह की अवस्था में आध्यात्मिकता के सहारे जीने की धारणा का शेख ने खंडन किया है। अपने प्रिय से मन की बजाय शारीरिक रूप में मिलना इन्हें ज्यादा प्रिय है। इनके नायक–नायिका एकदम

---

[87] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, छंद संख्या, 170

[88] पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिख्योरी न जाय।।
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहे झड़ लाय।
बात कहूँ तो कहत न आवै, जीव रह्यो डरराय।
विपत हमारी देख तुम चाले, कहिया हरिजी सूँ जाय।
(परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली), पृष्ठ संख्या, 118

[89] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, छंद संख्या, 213

नवीन हैं। ये शारीरिक प्रेम करते हैं। शेख की गोपियाँ साधारण स्त्रियाँ हैं जिन्होंने कृष्ण को अपना सर्वस्व मान लिया है।[90]

प्रेम में बिछोह का ज्वार सारे शरीर को दग्ध कर देता है। संयोग की भांति वियोग में भी वह नायक–नायिका के नैनों से झरने लगता है। कवयित्री बीराँ के नैन कृष्ण के दर्शन बिना जल रहे हैं। वे कृष्ण से कहती हैं कि 'बीरां को तुम दरसन दीजो, तब मोरे नैन सिराये रे।[91] मीराँ की आँखें भी मुरलीधर को पाती लिखते हुए झरझरा रही हैं (बात कहूँ मोहि बात न आवै। नैन रहें झरराई।[92]); शेख की नायिका राधा, कृष्ण के दर्शन न होने पर वियोग ज्वर से पीड़ित होकर लौटी है। उसके आँसू मोतियों के समान ढुरक रहे हैं। विकराल वियोग ने उसे चारों ओर से घेर लिया है। उदाहरणार्थ –

मोती कैसी ढरनि ढरकि ढरकि आवै नैना नेकु,
तुमैं ढौरी लागी जानौ गौरी ढरि आयी है।
X X X X X
नेह नहिं नैननि सनेह नहीं मन–माँहि,
देह नहिं बिकल बियोग जरि आई है।[93]

इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में नैनों की एक अलग दुनियाँ है जिनका प्रयोग आलोच्य लेखिकाओं ने कुशलता से किया है। संभवतः प्रेम की अभिव्यक्ति का नैनों से कोमल माध्यम विश्वभर में कोई और नहीं है।

स्त्रियों को गहनों से गहरा लगाव होता है। शीशफूल, कर्णफूल, खूँट, खुम्भी, नकफूली, बेसर, नथिया, हार, सिकड़ी, हसली, कठसिरी, बाजूबंद, (अंगद, केयूर), टड्डे, सलोनी, बलया, बाहुरखा, कंगन, वलय, चूड़े, चूड़ी, हथफूल, अंगूठी, आरसी, छुद्र घंटियाँ, किनकिनी, नुपुर, पाजेब, झांझर, चूड़ा, बिछिया, अनवट आदि गहनों के कई प्रकार हैं, जिन्हें स्त्रियाँ धारण करती हैं। नैनों की भांति वे भी स्त्रियों के सुख–दुख, हर्ष–विषाद, मान–अपमान के प्रतीक होते हैं। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड में जब कैकयी अपने राजसी वस्त्राभूषण त्यागकर शोकभवन में चली जाती हैं तो उसके शोक के प्रकोप का आधिक्य समझा जा सकता है कि वह राम को वनवास भेजने के लिए अडिग है। इसी तरह जब राम, माता कौशल्या से वन गमन की आज्ञा लेने जाते हैं तो वे राज्य के बहुमूल्य गहने और कपड़े उनपर न्यौछावर करती हैं जिनसे उनकी पीड़ा व प्रेम की गहराई समझी जा सकती है।[94] दरबारी युग में भी राजा–महाराजा अपनी असीम खुशी का इज़हार सेवक को मोतियों की माला व मुद्रा देकर किया करते थे और

---

[90] सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, (जगदीश्वर चतुर्वेदी, भक्ति आंदोलन और स्त्री काव्य) पृष्ठ संख्या, 314
[91] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 124
[92] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 118
[93] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, छंद संख्या, 97
[94] रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा।।
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषण बसन निछावरि कीन्हे।।
(तुलसीदास, रामचरितमानस), पृष्ठ संख्या, 348

रानी–महारानी कंगन, खड़ाऊँ, मुद्रिका देकर। वे केवल सोने–चाँदी से निर्मित स्त्रियों के आभूषण मात्र नहीं होते अपितु समयानुरूप उनकी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति होते हैं। इसलिए जब शेख रंगरेजिन की नायिका के प्रिय नहीं आते तो उसके कपड़े और गहनों के अस्त–व्यस्तपन को देखकर उसके दर्द की अगाधता का अनुमान स्वतः ही हो जाता है। यथा –

कहूँ मोती माँग कहूँ बाजू बन्द झबा झरे,
कहूँ हार कंकन हमेल टाँड टीक है।
ऐसे कै बिसारी स्याम ऐसी बैस ऐसी बाम,
पिहकि पपीहा की सी बार बार पी कहै।।
x x x x x
सेज मैन सारी सी है सारी हूँ बिसारी सी है,
बिरह बिलाति जाति तारे की सी लीक है।।[95]

यह सही है कि मीराँ और शेख की विरह वेदना की गहराई इतनी नहीं है जितनी सूरदास की गोपियों की है। 'ऊद्धव के आगे कृष्ण की पत्री का उत्तर अपने अश्रुओं से लिखने वाली गोपियों के अंतर्मन की कसक, कचोट, तिलमिलाहट और मिसमिसाहट का अनुमान लगाना असंभव है।[96] आलोचकीय मापदण्डों के आधार पर कहा जा सकता है कि सूरदास का विरह वर्णन प्रेम के उच्च आदर्शों पर अवलंबित है; लेकिन आदर्श तब तक आदर्श होता है जब तक वह यथार्थ रूप में हमारे समक्ष न आ जाए। इस संसार का निर्माण आदर्शों की यथार्थ परिणति से ही संभव हो सकता है। यदि आदर्श नहीं होंगे तो यथार्थ भी नहीं होगा।

मध्यकालीन लेखिकाओं ने कृष्ण भक्ति की उक्त छटाओं के अतिरिक्त होली के विभिन्न शब्द चित्र खींचे हैं जो अत्यंत चित्ताकर्षक बन पड़े हैं। भारत में होली का उत्सव बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक स्त्री यह कामना करती है कि उसका पति उसके साथ होली खेले। फिर परंपरागत तौर पर विवाहित दम्पत्ति जब तक एक–दूसरे के साथ होली नहीं खेल लेते तब तक होली का त्यौहार उनके लिए अधूरा माना जाता है। इसलिए मीराँबाई को गिरिधर नागर की अनुपस्थिति में होली खारी लग रही है। 'गाँव', 'देहात', 'गली', 'चौपाल', 'आँगन', 'अटारी', 'सेज' सुमन सब सूना–सूना नज़र आ रहा है। उनका मन सामाजिक प्रसंगों से उचट रहा है। अपने प्रिय की अनुपस्थिति में उनके हृदय की पीड़ा इतनी गहरी हो गई है कि मीराँ स्वतः ही कह उठती हैं कि, 'किण सँग खेलूँ होली, पिया तजि गये हैं अकेली।[97] लेकिन दूसरे ही दृश्य में जब उनके प्रिय गोबरधन गिरधारी लौट आते हैं तो वही होली का त्यौहार 'राग धमार' में परिवर्तित हो जाता है। कहीं मुरलीधर की मुरलिया बज रही है तो कहीं चंग और डफ का वादन हो रहा

---

[95] भगवानदीन (संपा.), आलमकेलि, छंद संख्या, 122
[96] निरखत अंग श्याम सुन्दर के बार बार लावति छाति।
कागद, जल, लोचन, मसि मिलिकै है गई श्याम, श्याम की पाति।।
(संपादक, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, भ्रमरगीतसार), पृष्ठ संख्या, 47
[97] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 119

है। गोप–गोपी गुलाल से भरी हुई मुट्ठियाँ एक–दूसरे के ऊपर खोल रहे हैं। मीराँबाई की फाग लीला का यह उदाहरण देखिए –

होरी खेलत हैं गिरधारी।।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चन्दन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरी भरी मूठि गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
x x x x x x x
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मोहनलाल बिहारी।।[98]

कवयित्री रसिकबिहारी जी होली के प्रति एक अलग दृष्टि रखती हैं। वे तत्कालीन समाज की उन वर्जनाओं से भली–भांति परिचित थीं जो कुल–मर्यादाओं के नाम पर स्त्रियों पर थोपी जाती थीं और उनका पालन न करने पर उन्हें घर से बहिष्कृत कर दिया जाता था। विडंबना यह है कि सभी परंपराओं का निर्वाह करने के पश्चात् भी तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ असुरक्षित थी। उसे किसी संभ्रांत परिवार की कुलवधु होने का बोझ जीवन पर्यंत ढोना पड़ता था। यदि उनके साथ किसी तरह की कोई ऊँच–नीच हो जाती थी तो इसका दोषी उन्हें ही माना जाता था और उनके पास आत्महनन के अतिरिक्त कोई और मार्ग शेष नहीं रह जाता था। हिंदू धर्म में घूँघट प्रथा और इस्लाम में परदा प्रथा के प्रोत्साहन का यह भी एक कारण था। कवयित्री रसिकबिहारी बनीठनी जी ने होली के प्रसंग में धीरे स्वर में ही सही लेकिन तत्कालीन समाज में विद्यमान नारी की इस पीड़ा को हमारे सम्मुख रख दिया है। उनका यह पद देखिए –

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ।
होरी खेलत नंदलाडलो री क्यों कर निभन पाऊँ।
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुलवधु कहाऊँ।
जो छुवे अंचर रसिकविहारी तो हौं धरती फार समाऊँ।।[99]

मानसिक रूप से स्त्री अपने अधिकारों के प्रति पुरूष से अधिक सचेत होती है; नतीजतन वह अपने पति को किसी और के साथ होली खेलते हुए नहीं देख सकती। चूँकि उनका पति उनके लिए सर्वोपरि होता है इसलिए उनके मन में घनघोर ईर्ष्या जन्म ले लेती है। हालाँकि प्राच्य वर्चस्ववादी समाज में उनकी ईर्ष्या का कोई मोल नहीं था फिर भी मीराँबाई के पदों में निहित स्त्रीजन्य ईर्ष्या इन शब्दों में स्थान पाती है –

श्याम म्हासूँ ऐंडो डोले हो।
औरन सूँ खेलै धमार, म्हाँसूँ मुखहि न बोलै हो।

[98] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 147
[99] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 200, पद संख्या, 83

म्हाँरी गलियाँ णाँ फिरे, वाँके आँगन डोले हो।।
म्हाँरी अँगुली णाँ छुवे, वाँकी बहियाँ मोरे हो।।
म्हाँरो अँचरा णा छुवे, वाँकी घूँघट खोले हो।।
मीराँ के प्रभु साँवरो, रँग रसिया डोले हो।।[100]

भक्तिकाल में 'राम नाम' बहुत चमत्कारिक बन पड़ा है। भक्ति की एक पद्धति ही 'नाम स्मरण' हो गई है; लेकिन यहाँ 'राम' शब्द का अर्थ केवल दशरथ पुत्र श्रीरामचंद्र नहीं था अपितु निर्गुण–निराकार 'राम' था जिसकी उपासना करने वालों में कबीरदास अग्रणीय थे। इस काल में कवि सूरदास जनित कृष्णभक्ति धारा भी थी जो रामभक्ति से एकदम अलग थी। उल्लेख्य है विभिन्न भक्ति धाराओं में ऐसा कभी दृश्य नहीं हुआ कि 'राम' शब्द 'कृष्ण' का पर्याय हो गया हो; परंतु कवयित्री श्रीप्रतापबाला के यहाँ हमें चतुर्भुज 'राम' की वंदना मिलती है जो 'कृष्ण' का पर्याय होकर आए हैं। यह अद्‌भुत उदाहरण देखिए –

श्याम सनेही जीवन ये ही औरन सों का काम।
नैन निहारूँ पल न विसारूँ सुमिरूँ निसि दिन श्याम।।[101]

भक्ति में किसी नाम के स्मरण का ध्वन्याँकन धीरे–धीरे शब्द की छाया को समाप्त कर देता है और केवल ध्वन्याँकन भक्त के मन को प्रकाशित करता है। शनैः शनैः मानवीय मन उत्तुंग आकाश गंगाओं में बहने लगता है और एक जगह आकर मानव के आत्म का लोप हो जाता है जिससे एक भक्त को परम शांति की अनुभूति होती है। इस मायने में लेखिका श्रीप्रतापबाला सच्ची भक्त व सच्ची प्रेमिका दोनों सिद्ध होती हैं।

भक्ति और धर्म से इतर तत्कालीन समाज में स्त्रियों की कई श्रेणियाँ थीं। इनमें राजकुमारी, रानी, महारानी, खंडरानी, राजमाता, नगरवधु, वैश्या, दासी, देवदासी इत्यादि महत्वपूर्ण थीं। महलों की मर्यादाओं के बीचोंबीच रहने वाली स्त्रियों से इतर वैश्याओं से भी राव–राणाओं के सम्मानित प्रेम संबंध थे। प्रवीणराय पातुरि और रूपमति बेगम इस संदर्भ में उच्चकोटि की प्रेमिकाएँ हुई हैं। प्रवीणराय का प्रेम संबंध ओरछा नरेश इंद्रजीतसिंह के साथ था। प्रेमिका प्रवीणराय गाने–बजाने और साहित्य लेखन में कुशल थीं इसलिए इंद्रजीतसिंह की और प्रिय थीं। उनकी कविता में संयोग श्रृंगार की मांसल छटाएँ है जिनमें मन की द्वंद्वात्मकता का तनिक भी आरोपण नहीं है। एकनिष्ठ प्रेमिका प्रवीणराय पूर्णतः प्रेमी इंद्रजीत सिंह को समर्पण हैं। इसलिए रति चेष्टा के निम्न छंद में वे निसंक होकर अंक भरने की बात कह रही हैं ताकि मद्धम गति से व्यतीत हो रही रात के प्रत्येक क्षण को अनुभूति के सभी रसों मे विलय किया जा सके। छंदांश देखिए –

बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं,
करौंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो।
मोहिं मिलै इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय,

[100] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 147
[101] ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल, स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 161

एहो चन्द आज नेकु मन्द गति चलियो।।[102]

मांसल प्रेम की अनुभूति शरीर की सभी व्याधियों को दूर कर देती है। प्रिय के अंक में बैठते ही प्रेमी युगल संसारेत्तर जीवन जीने लगते हैं। प्रिय जैसे ही अपनी प्रिया के कपोलों पर हल्की सी उँगली फेरता है वैसे ही प्रिया के सभी दुख दूर हो जाते हैं और प्रेमी युगल रतिक्रीड़ा के आनंद में सराबोर हो जाता है। यथा –

देखि कला कल प्यारो 'प्रबीन' सुवीन भयो सुख नैननि लीने।
नेक कपोलन आँगुरी लाय कै दुःख दुराह महा रस भीने।।[103]

यह सही है कि 'प्रवीणराय की कविता न तो समाज के चित्र को लेकर उपस्थित होती है, और न किसी व्यापक आदर्श को; किन्तु उसमें प्रवीण राय के हृदय की हिलोरें अवश्य हैं।[104] इसका प्रमाण इस घटना से प्राप्त हो जाता है जिसमें एक दिन प्रवीणराय की कलाओं से प्रभावित होकर अक़बर बादशाह ने इंद्रजीत सिंह से प्रवीणराय की माँग की थी जिसे इंद्रजीत सिंह ने अस्वीकार कर दिया था। इस पर अक़बर बादशाह के सैनिकों ने इंद्रजीत सिंह को बंदी बना लिया और प्रवीणराय के आ जाने पर ही छोड़ने की शर्त रखी। जब प्रवीणराय, इंद्रजीत सिंह को छुड़ाने के लिए अक़बर के दरबार में पहुँची तो अकबर ने उन्हें वहाँ रह जाने के लिए कहा। इसपर प्रवीणराय का उत्तर था कि –

बिनती राय प्रवीण की, सुनिए साह सुजान।
झूँठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान।।[105]

(अर्थात् हे सुजान शहशांह अकबर मेरी प्रार्थना सुनिए। मैं राजा इंद्रजीत की प्रेमिका हूँ और हृदय से उन्हें अपना पति स्वीकार कर चुकी हूँ; अर्थात् उनके द्वारा झूठी कर दी गई हूँ इसलिए मैं आपके योग्य नहीं हूँ। फिर झूठी पत्तल खाने का कार्य पत्तल दोने बनाने वाली बारी जाति, कौआ और कुकुर का है; बादशाह अकबर का नहीं।) प्रवीणराय के इस कलात्मक उत्तर से बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रवीणराय सहित इंद्रजीत सिंह को मुक्त कर दिया। बादशाह अक़बर के समक्ष निसंकोच और निर्भय होकर अपने प्रेमी की वक़ालत करना प्रवीणराय की हाज़िर जवाबी, कला कौशल और उत्कृष्ट चरित्र का परिचायक है।

हिंदी साहित्य के महिला लेखन में दूसरी प्रेमिका के बतौर हम रूपमति बेगम का नामोल्लेख पाते हैं जिनका 'जन्म मालवा के सारंगपुर नामक ग्राम में एक मुस्लिम परिवार में हुआ था। उसकी माँ एक प्रसिद्ध नाचने और गानेवाली थी।.....वह जन्म से मुस्लिम परिवार की नर्तकी होते हुए भी अपने कर्मों और व्यवहार से एक कुलीन स्त्री बनी। उसने अपने सतीत्व की रक्षा कर अपना जीवन पवित्र और महान बनाया। प्रतिदिन

---

[102] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 97
[103] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 96
[104] व्यथित हृदय, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, पृष्ठ संख्या, 24
[105] मुंशी देवी प्रसाद 'मुंशिफ', महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 83

संध्या समय वह पावन नर्मदा नदी के किनारे जाती और एकांत में मधुर गीत गाती। उसे नर्मदा से विशेष प्रेम, श्रद्धा और भक्ति थी। ऐसे कहते हैं कि वह एक दिन भी नर्मदा के दर्शन किए बगैर न रहती। उसे वह माता से बढ़कर मानती और उसके गुणों के गीत गाती रहती। संध्या की धूमिल बेला में नर्मदा के किनारे गीत गाती हुई वह इतनी तल्लीन हो जाती कि उसे अपने आप तक की सुधि न रहती।[106] उसकी संगीत निपुणता को देखकर मालवा के नवाब बाज़बहादुर उस पर मुग्ध हो गये। कालांतर में दोनों में घनिष्ठ प्रेम हो गया और दोनों विवाह सूत्र में बँध गए। यह अपने समय का एक अनूठा अंतर्धार्मिक विवाह था। रूपमति और बाज़बहादुर प्रेमपूर्वक दिन व्यतीत कर रहे थे तभी रूपमती के संगीत कौशल की लोकध्वनियाँ बादशाह अकबर के कानों में पड़ीं और उसने रूपमति को प्राप्त करने के लिए मालवा पर आक्रमण करने का विचार कर लिया। नतीजतन अकबर की सेना और मालवा नरेश के बीच एक भारी युद्ध हुआ जिसमें बाज़बहादुर की पराजय हुई। परिणामस्वरूप बाज़बहादुर को उसके कई साहसी सेनानायकों सहित कत्ल कर दिया गया। अपने पति के बगैर रानी रूपमती बेचैन हो उठी और उन्होंने अपने मान सम्मान की रक्षा करते हुए बाज़बहादुर की याद में निम्नांकित दोहा पढ़ते हुए आत्महत्या कर ली। दोहा दृष्टव्य है –

रूपमति दुखिया भई, बिना बहादुर बाज़।
सो अब जियरा तजत है, यहाँ नहीं कछु काज।।[107]

उल्लेखनीय है कि तद्युगीन समय में तमाम मतभेद एवं वैमनस्य होने के बावजूद वैश्याओं को न केवल सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था प्रत्युत् प्रगाढ़ प्रेम होने पर उनसे विवाह कर उन्हें पत्नी का दर्जा भी दिया जाता था। विशेष है कि दरबारी काल में एक राजा के यहाँ कई गणिकाएँ हुआ करती थीं, परंतु उनमें कोई–कोई ही होती थी जो अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण अपने कला कौशल से देती थी। प्रगाढ़ प्रेम के संबंध में यदि रूपमति बेगम एक अतुलनीय प्रेमिका रही हैं तो काव्यकला, संगीतकला और नृत्यकला के संबंध में, प्रवीणराय का कोई सानी नहीं दीख पड़ता।

<u>प्रकृति चित्रण</u> : आलोच्यकाल की लेखिकाओं ने प्रकृति के चित्ताकर्षक, लावण्ययुक्त एवं किसलयी दृश्य उकेरे हैं। उनके लेखन में प्रकृति कहीं आलंबन–उद्दीपन रूप में आई है तो कहीं स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत है। उन्होंने प्रकृति के सभी उपादानों फूल, पत्तों, नदियों, झरनों, बेलों, पेड़ों, बिजली, बयार, वर्षा, अंबर, तृण, मयूर, पिक, दादुर इत्यादि का हर्षोन्मुखी चित्रण किया है। गौरतलब है कि सामान्य दृष्टि से देखने पर हमें प्रकृति के सूक्ष्म परिवर्तन दृष्टित नहीं होते परंतु गहराई से अनुभूत करने पर प्रकृति के कई अनोखे और अनूठे दृश्य परिलक्षित होते हैं। प्रेमसखी ने प्रकृति का एक स्वतंत्र चित्र खींचा है जो दृष्टव्य है –

छोटे छोटे कैसे तृण अंकुरित भूमि भये।

[106] तेजपाल सिंह धामा, बेगमों की ऐतिहासिक प्रेम कथाएँ (रूपमति), पृष्ठ संख्या, 124
[107] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248

जहाँ तहाँ फैली इन्द्र वधु वसुधान में।।
लहक लहक सीरी डोलत बयार और।
बोलत मयूर माते सघन लतान में।।
घुरवा पुकारें पिक, दादुर पुकारें बक।
बांधि कै कतारें उड़ें कारे बदरान में।।
अंस भुज डारे खरे सरजू किनारे प्रेम।
सखी वारि डारे देखि पावस वितान में।।[108]

प्रकृति का एक प्रफुल्लित चित्रण हमें कवयित्री प्रतापकुँवरिबाई के यहाँ दृष्टिगत होता है। उनके यहाँ प्रकृति पूरी जीवंतता के साथ उभरकर सामने आती है। जिस प्रकार एक साधारण मानुष ज्ञान प्राप्ति के बाद झुक जाता है उसी प्रकार उपवन के बाल–व्यस्क तरूवर फल, फूल की प्राप्ति के बाद झुक गए हैं। कवयित्री के उपवन में अंजीर, जामुन, आँवला नामक फल लगे हुए हैं। चंपा, चमेली और केतकी की महक चारों ओर बिखरी हुई है। हरी–भरी प्रकृति के बीच चातक, कोकिला मोर, तोता, हंस आदि मधुर कलरव कर रहे हैं। सरोवर पानी से पूरित हैं। सरोवर के किनारे का पानी मधुमयी धूप से मणियों के समान चमक रहा है। चमन की इस चमक के समक्ष सब उन्मत्त हो रहे हैं। उपवन की ऐसी शोभा का यह अनुपम दृश्य देखिए –

चहूँ दिसा विराजत विविध वाग। ता माँहि कलपतरू रहे लाग।।
चंपा जू चँवेली रायबेल। केवरौ केतकी दाख केल।।
अंजीर जाँबु आँबा अनार। झुक रहे भूमि फल फूल भार।।
चातक विहंग कोकिला मोर। शुक राजहंस पिक करत सोर।।
नित भरे सरोवर विमल नीर। सोपान कनक मणि रचत तीर।।
बहु कमल कमोदनि रहे फूल। मदमत्त भरम ता माहि भूल।।[109]

हिंदी साहित्य के मध्यकाल में प्राकृतिक सौंदर्य के ऐसे स्वतंत्र दृश्य कम ही देखने को मिलते हैं। आधुनिककाल में केदारनाथ अग्रवाल कृत 'हवा हूँ हवा में बसंती हवा हूँ' जैसी इक्का–दुक्का कविता ही दीख पड़ती है। हालाँकि, प्रकृति और मनुष्य का संबंध अन्योन्याश्रित है। जिन पँचतत्वों की उपस्थिति प्रकृति में है वही मनुष्य शरीर में भी विद्यमान हैं। इसलिए दोनों एक–दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं। पर्यावरण का हर्षोल्लास मनुष्य मन में उत्साह उत्पन्न कर देता है और रूदन जनमन को उदासीन कर देता है। प्रकृति का एक उद्दीपीय रूप हम कवयित्री छत्रकुँवरिबाई के यहाँ देखते हैं जहाँ नायक कृष्ण संझा के समय बगिया में फूल चुनने के लिए जा रहे हैं। उनकी मुग्धा छवि का आनंद उठाने के लिए कुछ गोपियाँ संझा के समय ही फुलवारी में विहार करने की इच्छुक हैं। बगिया में पहुँचते ही फूल चुनते श्याम मनोहर

[108] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248
[109] मुंशी देवी प्रसाद 'मुंशिफ', महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 53

को देखकर एक सखी के नैन उनसे उलझ जाते हैं; परिणामस्वरूप दोनों के मन में राग उत्पन्न हो जाता है और दोनों के तन–मन हर्षित हो जाते हैं। पुष्पवाटिका का उद्दीपन रूप दृष्टव्य है –

श्याम सखी हँसि कुँवरि दिस, बोली मधुरे वैन।
सुमन लेन चलिए अबै, यह बिरियाँ सुख दैन।।

x x x x x

फूलन संझा समय अति, फूलि सुमन सुरंग।
फूले नैन सुदुहुँन के, फूल समात न अंग।।[110]

उल्लेख्य है कि इस संसार का मूल प्रकृति ही है। स्वयं मनुष्य की निर्मिति उसी के द्वारा हुई है; इसलिए जीव उसके प्रभाव क्षेत्र से स्पंदित हुए बगैर नहीं रह सकता। उपरोक्त छंदों में प्रकृति का यही रूप उभरकर सामने आता है।

<u>पतिव्रता स्त्री</u> : स्त्री का अपना व्यक्तित्व विराटरूपा होता है। वह एक ही जीवन में बेटी, बहन, पत्नी, माँ, चाची, बुआ, फूफी, काकी इत्यादि संबंधों का निर्वाह करती है। सही मायनो में संबंधों की संस्कृति की संचालिका एवं पोषिता वही होती है। उसके विवाह होते ही वह अनेक संबंधों की प्रतिनिधि हो जाती है लेकिन उसकी नज़र में पति–पत्नी का संबंध सर्वोपरि होता है। फिर 'उस समय पति में ही भगवान का आरोपण किया जा रहा था, संसार के सब क्षेत्रों से हटकर स्त्री के जीवन की सार्थकता केवल पति पूजा तक ही सीमित कर दी गई थी;[111] इसलिए हमें 'रत्नावली', 'चंपादे रानी', 'कविरानी चौबे', 'हरिजी रानी चावड़ा' और 'प्रतापकुँवरि बाई' के काव्य में पतिव्रता नारी का रूपांकन लक्षित होता है। कवयित्री प्रतापकुँवरि बाई पति सेवा को ही अपने जीवन का मूल स्वीकारती हैं। वे मानती हैं कि पति सेवा से बढ़कर दूसरा कोई सुकर्म नहीं होता और पति से बड़ा कोई देवता नहीं होता है। उनकी निम्नलिखित उक्तियाँ देखिए –

पति समान नहीं दूजा देवा। तातैं कीजै पति की सेवा।।
पति परमातम एक समाना। गावैं सबही वेद पुराना।।[112]

ध्यातव्य है कि कवयित्री प्रतापकुँवरि बाई वेदों और पुराणों में वर्णित पति की छवि को अपने अंतर्मन में स्थान देती हैं और उसी के अनुरूप पत्नी के कर्तव्यों से संचालित हैं। कमोबेश कवयित्री रत्नावली की भी यही स्थिति है। उनके पति उन्हें छोड़कर वनगमन कर गए हैं। रत्नावली को उनके वियोग में वस्त्र, आभूषण, भवन आदि भार स्वरूप प्रतीत हो रहे हैं और वे निरंतर ग्लानिबोध से भरती जा रही हैं। दो दोहे देखिए –

दीनबंधु कर घर पली, दीन बंधु कर छांह।

[110] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 20–21
[111] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 95
[112] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 47

तऊ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मों बांह।।

x x x x x x x

असन बसन भूषन भवन, पिय बिन कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन छिन जिय अकुलाय।।[113]

सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में धर्मांतरण अपने चरम पर था। हिंदुओं को लोभ लालच देकर या दबाव डालकर इस्लाम ग्रहण करने के लिए विवश किया जा रहा था; फलस्वरूप बहुत से राजवंशों के लिए मुगलिया सल्तनत का साथ देना मुश्किल होता जा रहा था। ऐसे में कविरानी चौबे का अपने पति लोकनाथ चौबे हेतु चिंतित होना स्वाभाविक है। दरअसल, धर्मांतरण के उस युग में जब उनके पति लोकनाथ चौबे राजा बुध सिंह जी के साथ दिल्ली गए तो उन्हें उनके मुसलमान होने का भय हुआ। भयाग्रस्त पत्नी ने अपने पति को एक शिकायती पत्र लिखकर भेजा जिसमें उन्हें दिल्ली न जाने की प्रार्थना के साथ–साथ उनके साथ सलोने स्वप्नों की कल्पना भी थी। उदाहरण देखिए –

मैं तो यह जानी ही कि लोकनाथ पाय पति संगही रहौंगी अरधंग जैसे गिरिजा।।
एते पै विलक्षन ह्वै उत्तर गमन कीनो कैसे कै मिटत ये बियोग बिधि सिरिजा।।
अब तो जरूर तुम्हें अरज करेही बनै वेहु द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरि जा।।
जोपैं तुम स्वामी आज अटक उल्लंघ जैहो पाती माँहि कैसे लिखूँ मिश्र मीर मिरिजा।।[114]

पति, पत्नी का स्वाभिमान होता है। वह उसी के माध्यम से अपने जीवन के असीम सपनों को जीने की कल्पना करती है। वह अपने जीवन संगी को कहीं टूटने या बिखरने नहीं देती और सदा उसे उसके पौरूष से अवगत कराती रहती है। फिर उसका स्वाभिमान अपने पति को युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त होते हुए तो देख सकता है, परंतु पराजितों की भांति लौटते हुए नहीं देख सकता। गुजरात की हिंदी कवयित्री ठकुरानी काकरेची जी का जीवन भी इस संबंध में प्रासंगिक है। सन् 1657 से 1659 के मध्य शाहजहाँ के बेटों के बीच होने वाली लड़ाईयों में उनके पति नरहरिदास वीरगति को प्राप्त हो गए थे। इसकी सूचना मिलने पर काकरेची जी ने एक विधवा का जीवन व्यतीत करना आरंभ भी कर दिया था; लेकिन कालांतर में एक नाई (हमशक्ल नरहरिदास) ने आकर उनके पति होने का दावा किया। उनके ससुर ने भी सहमति जताते हुए काकरेची जी से अपना रूप परिवर्तन करने के लिए कहा। इसपर उनका उत्तर एक पतिव्रता स्त्री के स्वर को ही ज़ाहिर नहीं करता प्रत्युत् उसके स्वाभिमान की भी झलक प्रस्तुत करता है। उनका उत्तर देखिए –

धर काली का कर धरा, अध काला अगरेस।

[113] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 281–287
[114] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 20

नरहर नेजाँ बाजिया, क्यों पलटाऊँ बेस।।[115]

अर्थात् मेरे पति नरहरिदास बाज़ की तरह नेज़ा से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए हैं। फिर मैं क्यों अपना भेष बदलूँ ? ये कोई बावला मानुष प्रतीत होता है।

स्त्री के लिए उसके पति का विश्वास महत्वपूर्ण होता है। वह उसमें तनिक भी शिथिलता पाती है तो त्वरित अपने प्रेमपाश से उसे सुदृढ़ करने को दृढ़ हो उठती है। बीकानेर के राजा राजसिंह जी के भाई पृथ्वीराज जी की अर्धांगिनी का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसे ही गुणों से सुसज्जित है। मध्यकालीन पुरूष के लिए उसका पौरूष और यौवन उसके अभिमान के प्रतिमान थे। पृथ्वीराज जी ने एक दिन एक सफेद बाल अपनी दाढ़ी से उख़ाड़ा तो उन्हें अपने यौवन के प्रति निराशा हुई। उन्हें ग्लानिबोध हुआ कि अब वे बूढ़े हो चले हैं। लेकिन उनकी नई रानी चंपादे ने उनके ग्लानिभाव को दूर करने के लिए यह दोहे कहे –

प्यारी कहे पीथल सुनौ। धोलाँ दिस मत जोय।।
नराँ नाहराँ डिगमराँ। पाकाँ ही रस होय।।
खेड़ज पक्काँ धोरियाँ। पंथज गउघाँ पाव।।
नराँ तुरंगाँ बनफलाँ। पक्काँ पक्काँ साव।।[116]

(अर्थात् हे पिया आप मेरी बात सुनें! सफेद केश मिलने से उदास होने वाली कोई बात नहीं है क्योंकि नर और जोगी पक जाने पर ही शोभा देते हैं। खेती पक्के बैलों से ही होती है और रास्ता भी पक्के ऊँटों के पावों से ही कटता है तथा नर, तुरंग तथा बनफल पक कर ही पूरे पक्के होते हैं।)

भारतीय धर्मविधान के अनुसार विवाहोपरांत स्त्री को अपने पति के साथ उसके घर अर्थात् अपने ससुराल जाना होता है। ऐसे में वह जीवन भर अपने हृदय से माँ का प्यार और लाड़–दुलार नहीं निकाल पाती। ससुराल में जाने के बाद उनकी स्थिति हारिल की लकड़ी के समान हो जाती है। न वे मायके से अपने सास–ससुर के विरोध में कुछ सुन पातीं है और न ससुराल पक्ष की ओर से मायके के संबंध में कुछ सुन पाती हैं। वह जीवन भर इस कशमकश में पड़ी रहती हैं कि कौन–सा सूत्र पकड़े और कौन–सा छोड़े। नारी मन की इस द्वंद्वात्मकता का वर्णन हमें राड़जी रानी के काव्य में देखने को मिलता है। एक दिन रानी जी अपने पति के साथ प्रकृति विहार कर रहीं थीं। राजा जी ने अपने राज्य की प्रशंसा में वहाँ के 'केतकी के फूल' और 'आबू' की खूब प्रशंसा की। विहार करके थक चुकी रानी को ये बातें जँची नहीं। उन्होंने इसके प्रतिपक्ष में 'राड़धड़ा की ढाँगी' और 'लूणी नदी' की यूँ प्रशंसा की जैसे अपना गुस्सा प्रकट करना चाह रही हों। उनका यह दोहा देखिए –

धर ढाँगी[117] आलम धनी, परगल लूणा पास।

[115] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 02
[116] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 79

लिखियो जिणने लाभसी, राड़धड़ा रो बास।।[118]

(अर्थात् हे स्वामी आपके प्रांत की प्रकृति से सुंदर राड़धड़ा की ढाँगी और लूणी नदी है। उनकी सुंदरता के समकक्ष ये सभी सौंदर्य फीके हैं; क्योंकि लूणी नदी यदि राड़धड़ा प्रांत की प्यास बुझाती है तो रेत की ढाँगी वहाँ के घोड़ों में अरबी नस्ल के गुणों को जन्म देती है।)

'मध्यकालीन राजवंशों में बहु–विवाह एक सामान्य चलन था; लेकिन अनेक स्त्रियों के जीवन, यौवन और प्रेम एक ही पर केन्द्रित होने के कारण अन्तःपुर में स्पर्द्धा और ईर्ष्या की प्रतिद्वंद्विता चला करती थी। सभी रानियाँ अपने जीवन की सार्थकता प्राप्त करने का प्रयास करती थीं जो केवल नायक की प्रेमपात्री बन जाने पर ही अवलम्बित थी।[119] परंतु इसके बहुआयामी दुष्परिणाम यह थे कि राजा अपनी रानियों को बराबर समय नहीं दे पाते थे। यदि कोई रानी उन्हें विशेष प्रिय होती थी तो वह अधिकांश समय उसी के साथ व्यतीत करते थे। इनमें भी कुछ रानियाँ ऐसी हुआ करती थीं जिन्हें अपने पति के दर्शन कई–कई वर्षों तक नहीं हुआ करते थे। फलस्वरूप राजा को अपने वश में करने के लिए रानियों द्वारा कई प्रकार के सामाजिक और राजनैतिक कुचक्र किये जाते थे। 16वीं. शती की रचनाकार झीमा चारिणी के काव्य में हमें इसी तरह का एक प्रसंग दृष्टिगत होता है जिसमें राजा अचलदास अपनी पहली रानी लालादे के प्रेमपाश में ऐसे बँधे हुए हैं कि अपनी दूसरी रानी ऊमादे से सात वर्षों से नहीं मिले हैं। ऐसे में ऊमादे की शारीरिक और मानसिक स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। तब झीमा चारिणी के सहयोग से ऊमादे ने एक 'रत्नहार' के बदले एक रात के लिए राजा अचलदास को अपने पास भेजने का प्रस्ताव लालादे के पास भेजा जिसे आभूषण प्रिय, लालादे ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। शर्त बतौर राजा अचलदास सात वर्ष पश्चात् रानी ऊमादे से मिलने के लिए उनके भवन में आए और रानी ऊमादे ने 'जीभर' के उनके दर्शन का रस पिया; परंतु जब वे जाने लगे तो उन्हें रोकने के लिए विवशतावश झीमा चारिणी को सारा प्रसंग राजा अचलदास को सुनाना पड़ा। नतीजतन राजा अचलदास को यह अनुभव हुआ कि उनकी बड़ी रानी लालादे ने एक हार के लिए उनका सौदा किया है; अतः रानी को हम से अधिक 'हार' प्रिय है। तत्पश्चात् राजा जी ने अपनी बड़ी रानी लालादे के पास जाने का मोह छोड़ दिया। इस तरह ऊमादे ने अपनी श्रद्धा, समर्पण और घोर प्रेम के बल पर राजा अचलदास का मन मोह लिया तथा अपने पति का भरपूर सानिध्य प्राप्त किया। अपनी सखी ऊमादे को उसके स्वामी से मिलाकर कवयित्री झीमा चारिणी का मन उन्मत्त मयूर की भांति नृत्य करने लगा और इस हर्षोल्लास में उन्होंने संपूर्ण प्रसंग एक गीत के रूप में कलमबद्ध कर दिया। उस गीत का एक अंश प्रस्तुत है जिसमें झीमा की खुशी के साथ पूरे प्रसंग का सूत्र गुँम्फित है –

पगे बजाऊँ गूघरा, हाथ बजाऊँ तुंब।

---

[117] ढाँगी राड़धड़े में रेते के एक टीले का नाम है। यह रेत अरब के किसी बनजारे के द्वारा वहाँ लाया गया था। मारवाड़ के लोग अपने घोड़ों को अरब के घोड़ो की नस्ल देने के लिए अपने अश्वों को वहाँ लाते हैं और उस रेत में नहलाते हैं।

[118] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 79

[119] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 27

ऊमा अचल मुलावियो, ज्यूँ सावन की लुंब।।
आसावरी अलापियो, धिन झीमा घण जाण।
धिन आजूणे दीहने, मनावणे महि राण।।[120]

इस घटना के पश्चात् राजा अचलदास कभी लालादे के राजभवन में रात्रिकाल में रूकें हो ऐसा कोई संदर्भ कवयित्री झीमा चारिणी के काव्य में प्राप्त नहीं होता।

उल्लेख्य है कि राजभवनों से इतर बहु–विवाह का नकारात्मक प्रभाव तत्कालीन समाज और राजनीति पर भी पड़ रहा था। वैसे तो इस्लाम विशेष परिस्थितियों में चार निक़ाह करने की इज़ाजत देता है लेकिन भारत में सोलहवीं और सत्रहवीं शती में पड़ने वाले भयंकर अकालों के दौरान जब वालिदैन परवरिश की कोई सूरत न देखकर अपने बच्चों को बेचने लगे तब अकबर ने 1587 ई. में 'एक खुदा, एक बीवी, का उसूल बनाया। उसने कहा कि, 'एक दूसरे से लगाव के उस उसूल के तहत जो कायनात के निज़ाम की बुनियाद है, हद दर्जा बेहतर यही होगा कि कोई शख्स ज़िंदगी में एक से अधिक विवाह न करे।[121] लेकिन इसमें भी उसने राज्य से जुड़े हुए प्रतिष्ठित लोगों को एक से अधिक निक़ाह करने की छूट दी थी। सामाजिक तौर पर भी यह उसूल बहुत कारगर सिद्ध हुआ; क्योंकि घर में ज्यादा बच्चे और कम सहूलियतें घर को बारहबाट कर देती हैं। अकबर के उक्त नियम से रियाया की ज़िंदगी में भी सुकून आया। अब एक घर की संपत्ति पर एक ही माँ के बच्चों का अधिकार था। परिणामस्वरूप घरों में होने वाली छोटी–मोटी लड़ाईयाँ समाप्त हो गईं। गौरतलब है कि झीमा चारिणी का उक्त प्रसंग राजभवनों की ऊँची–ऊँची दीवारों के पीछे छिपी स्त्री की वास्तविक पीड़ा को उकेरता है। इससे मुगलिया सल्तनत के दुर्गों में बंद बेगमें, शहज़ादियाँ और बेवा औरतें भी अछूती नहीं थीं। 'हिंदु और मुस्लिम कुलीन वर्ग ने अपनी स्त्रियों को जीवन के अप्रिय एवं बहुधा आदिम रूप से बचाए रखने का जो प्रयत्न किया उसके कारण उनकी स्त्रियों में एक अजीब अकेलापन और खोखलापन आ गया। ऐसी स्थिति में समय काटने के लिए वे अपना समय या तो गुप्त प्रेम संबंधों अथवा राजनैतिक कुचक्रों में लगाती थीं।[122]

<u>मध्ययुगीन समाज और स्त्री</u> : आमतौर पर नामित भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इसकी पृष्ठभूमि बतौर कहा जाता है कि यह वह युग था जिसमें जाति–पाँति, ऊँच–नीच, सवर्ण–अवर्ण जैसे भेदों को मिटाकर सभी जन उस परमपिता परमेश्वर की उपासना कर सकते थे! उस समय दो भक्तों के मध्य केवल भक्ति का संबंध मुख्य था; इसलिए सामाजिक क्रांतिकारी कबीर कहते थे कि, 'जाति–पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई; लेकिन मध्यकालीन मीमांसक स्त्रियों को न तो

[120] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 30–31
[121] इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (भाग–6), पृष्ठ संख्या, 32
[122] रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृष्ठ संख्या, 273

भक्ति में ही शरण देते थे और न समाज की धुरीस्वरूप ही अपना सकते थे, जैसा कि आदिकालीन समाज में उसे स्वीकार किया जाता था। उनके लिए स्त्री माया, महाठगिनी, कंचन, कामिनी स्वरूप ही थी इसलिए उसकी पीड़ा को वे समझेंगे इसकी आशा ही कैसे की जा सकती है! वे कैसे समझ सकते हैं कि स्त्री माया न होकर प्रकृति की प्रजनन शक्ति से सुसज्जित संसार की संचालिका है! उन्हें यह कैसे समझाया जा सकता था कि यदि उसे 'माया' भी मान लिया जाए तो यह माया भी शरीर रूपी संसार की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और संतो ने इसी शरीर को अलौकिक सत्ता की प्राप्ति में सहायक बताया है। यदि दूसरे शब्दों में कहा जाए कि भक्ति आंदोलन ने तर्क की परंपरा के उस मार्ग को बाधित किया है जिसके अंतर्गत स्त्री–समाज की पीड़ा को समझा जा सकता था। प्रश्न किया जा सकता था कि आदिकाल से आधुनिक काल तक का हिंदी साहित्य सकारात्मक या नकारात्मक रूप से स्त्री को ही अपने केंद्र में क्यों रखता है ? सूफी साहित्य में जहाँ खुदा को 'स्त्री' रूप में देखा गया है वहीं संत साहित्य में स्त्री ईश्वर प्राप्ति में बाधक क्यों हो गई ? नख–शिख वर्णन, बारह–मासा, विरह–विलास जैसे साहित्य से स्त्री को क्यों नहीं निकाल दिया गया! संभवतः इसलिए क्योंकि पुरूष का अंतर्मन यह स्वीकार करता था कि हम इस संसार को न स्त्रीहीन देख सकते हैं और न समझ सकते हैं। आख़िर किसी भी दृष्टिकोण हेतु किसी दृष्टि और किसी कोणीय वस्तु का होना आवश्यक है और इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मध्यकालीन समाज का दृष्टिकोण नितांत सामंती था।

चूँकि दृष्टिकोण किसी विभाग विशेष का नहीं होता इसलिए यह सामंतशाही प्रवृत्ति स्त्री समाज में भी उतनी ही विद्यमान थी जितनी की पुरूष समाज में थी। तत्कालीन स्त्री समाज भी वंशवृद्धि हेतु पुत्र प्राप्ति को ही तवज्जो देता था। पुत्र न होने पर स्त्रियों को स्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार की यातनाएँ और व्यंग्यबाण झेलने पड़ते थे। पुत्र–प्राप्ति का यह आवेश कभी–कभी इतना उग्र हो जाया करता था कि स्त्रियाँ परस्पर गहनों के आदान–प्रदान की शर्त लगा लिया करती थीं। पुत्रजन्म तत्कालीन समाज में स्त्री के लिए न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक था अपितु उनके स्वाभिमान की स्थापना भी था। यदि किसी स्त्री के केवल कन्याएँ ही जन्मती थीं तो उसे बाँझ सरीखा ही व्यवहृत किया जाता था। इसके लिए तत्कालीन समाज में व्याप्त 'दूधो नहाओ, पूतो फलो; कन्या पराया धन होती है; कन्या बारह बर अट्ठारह; धी पराई आँख लजाई' जैसी कहावतें विशेष रूप से दोषी हैं जिन्होंने स्त्रियों की मानसिकता को सदा पुरूष वर्चस्व के अधीन रखा तथा सदा ही एक मानुष वृत्ति के दो व्यक्तियों हेतु भिन्न नियमों को गढ़ा ताकि स्त्रियाँ कभी उनकी गुलामी की जंजीरों को तोड़ न सकें और हमेशा उनके ही दर्शन से जीवन को समझती रहें जो दुर्भाग्यवश आज तक जारी है। कवयित्री गंगाबाई ने पुत्र प्राप्ति की खुशी में उन्मत्त स्त्री का बखूबी चित्रण किया है जो पुत्र जन्म को अपने जीवन की सर्वोत्तम निधि स्वीकार करती हैं। उदाहरण देखिए –

रानी जू सुख पायो सुत जाय

बड़े गोप वधून की रानी हंसि–हंसि लागत पाय।।
बैठी महरि गोद लिये ढोटा आछी सेज बिछाय।
बोलि लिये ब्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखी आय।।
जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु चुकाइ।
ताते लेहु चौगुनी हम पै कहत जाइ मुसकाइ।।
हम तो मुदित भये सुख पायो चिरजीवो दोउ भाइ।
श्री विट्ठल गिरधरन कहत ये बाबा तुम माइ।।[123]

जैसा कि उक्तविदित है कि पुरा समाज में विवाह संस्कार का विशेष महत्व था। यह दो प्राणियों के अतिरिक्त दो परिवारों का लग्न भी होता था। इसलिए विवाह से पूर्व दोनों पक्ष के लोग वर–वधु की गहरी जाँच–पड़ताल कर लिया करते थे। संभवतः लड़की के लिए यह रस्म नारकीय हो जाया करती थी। वर पक्ष के लोग लड़की की आँखों का चलन, कानों की श्रवण क्षमता, नाक की बुनावट, मुख का रंग–रूप, वक्षों का सुडौलपन, पैरों का चलन इत्यादि का विश्लेषण करते थे और सर्वोचित होने पर ही आगे बढ़ते थे। इसके बाद वर–वधु की कुँडलियों को मिलाया जाता था जिसमें कम से कम 36 में से 18 गुण मिल जाने पर ही विवाह संभव हो पाता था। इससे पूर्व जाति–पाँति और कुल–गोत्र का विशेष ध्यान रखा जाता था। वर पक्ष के लिए ऐसी कोई अर्हताएँ नहीं हुआ करती थीं फिर भी आवश्यक जाँच–पड़ताल वधु पक्ष की ओर से हो जाया करती थी। कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई के यहाँ हमें इसी प्रसंग का एक पद प्राप्त होता है जिसमें वे कृष्ण को चोरी की आदत छोड़ने को कह रही हैं ताकि राधा के साथ विवाह संबंध में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। उनका यह पद देखिए–

तजौ चोरी की घात अयान की।
नन्दराय के लला लड़ौहै सुनलो बात सयान की।।
कीरति पठई दुलहा देखन तिय आई बरसान की।
सुन्दरकुँवरि सुलच्छन गुननिध व्याहोगे वृषभान की।।
आई है ते जाय कहेगी बात रावरे बान की।
सास कहेगी चोर कुँवर को जैहै वह प्रिय प्रान की।।
इक तो कारो चोर भयो फिर दइया छाप लजान की।
सुनि हँसिहैं चन्दाननि दुलहो जिहँ उपमा न समान की।।[124]

विशेष है कि वर्चस्ववादी समाज में वर के परीक्षण हेतु वधु पक्ष की ओर से स्त्रियाँ नहीं आया करती थीं। यह अधिकार घर के वरिष्ठ पुरूषों को प्राप्त था। किंतु कवयित्री ने 'कीरति पठई दुलहा देखन तिय आई

[123] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 159
[124] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 146

बरसान की' कहकर न केवल अपनी तार्किकता और बुद्धिजीविता का परिचय दिया है वरन् पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती भी प्रस्तुत की है।

उक्त काल में वैवाहिक संस्कार के दौरान वधु पक्ष की ओर से गारी गाने का रिवाज़ होता था जो राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार के सुदूर क्षेत्रों में आज भी विद्यमान है। ये गारियाँ एक प्रकार के गीत होती थीं जो वधु पक्ष की ओर से वर पक्ष के सगे–संबंधियों हेतु गायी जाती हैं। इनमें किसी प्रकार का घृणा भाव नहीं होता था अपितु इसके उलट चारों ओर आनंददायक वातावरण की ही रचना होती थी। कवयित्री कृष्णावती के काव्य में हमें गारियों का सीधे–सीधे जिक्र तो नहीं मिलता लेकिन उसका संदर्भ अवश्य प्राप्त होता है जिससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उन्नीसवीं शती के मध्य तक इस रीति का पालन भारत में बखूबी किया जाता था। कृष्णावती ने कृष्ण की बारात आ जाने पर जिस बिंब की रचना की है उसमें स्त्रियाँ गारियाँ गा रही हैं। उदाहरण देखिए –

अंखियां भई मोरी चकोरी तहाँ सो तो गोरी परीं सब प्रेम के फन्दा।
बारात बनी चहूं ओरन छत्र सुमोहन मित्र है आनन्द कन्दा।।
सबै गारी गावैं बृज नारि जहाँ कृष्णवति के मन होत अनन्दा।
अरी देख्यो है राधा जी को दूल्ह भटू, मानों पूरनमासी को पूरन चन्दा।।[125]

विवाह हो जाने के पश्चात् तत्कालीन नारी संयुक्त परिवार में देवरानी, जिठानी के साथ अपने मनोभावों को साँझा करती है तथा अपने पिया के साथ नित–नवीन स्वप्नों की कल्पना करती है। उसके जीवन में बसंत का आगमन हो जाता है। चारों ओर रंगभरी गलियाँ दीख पड़ती हैं। निसि–बासर हृदय में हर्षोल्लास रहता है और मन विभिन्न प्रकार की अठखेलियाँ करने को आतुर हो उठता है। विवाहोपरांत इन्हीं प्रकार की अठखेलियों को कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई ने बखूबी चित्रित किया है। उनका ये उदाहरण देखिए –

बौलि कै जिठानी दिवरानी श्री ब्रजेसुरी जू। गपिन कुँवारी ओ दुलारी सब संग लै।
आँगन उदार ठौर ठौरहिं विविध झूलैं। झूलत झुलावत लड़ावत उमंग लै।।
हँसिहिं, हँसावैं सब मोद सरसावैं अति। चुहुल मचावैं छवि छावैं यहि वंग लै।
रहस रचावैं, पिया नवहिं, नवावैं तहां। झुकि झुँझलावैं मुसकावैं कहैं रंग लै।।[126]

हम स्त्री को समाज की धुरीस्वरूप देख सकते हैं। वे समाज की कई रीतियों, परंपराओं और संस्कृतियों से सीधे आबद्ध होती हैं। तीज–त्यौहार, मान–मर्यादा, विवाह संस्कार आदि में उनकी सक्रिय भागीदारी होती है। उल्लेख्य है कि घर की चार दीवारी में यदि स्त्री ने धुरीस्वरूप कार्य न किया होता तो संभवतः वह चार दीवारों और एक छत के द्वारा बना हुआ घर बहुत पहले ढह गया होता या यूँ कहें कि निर्मित ही न हुआ होता। घर की चारों दीवारों के बीचों–बीच खड़ी स्त्री न केवल उन चारों दीवारों की रक्षिता होती है, अपितु

[125] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 212
[126] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 146

उनके मध्य निर्मित, सुकृत एवं विकृत रिश्तों की दृष्टा भी होती है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि पुरूष समाज की वास्तविक दुनियाँ से जितनी एक स्त्री वाक़िफ़ होती है उतना कोई और नहीं होता। तथ्यानुरूप हमें मध्यकालीन कवयित्री साँईं के कवित्तों में आलोच्यकाल की सच्ची दुनिया दिखाई देती है। यह वह युग था जब राजसिंहासन के लिए पिता–पुत्र, भाई–भाई और मित्र–मित्र में ठनी हुई थी। चारों ओर अविश्वास, अराजकता और असहिष्णुता का माहौल था। अकबर और जहाँगीर के वैमनस्य के उदाहरण जनसमुदाय में सामान्य हो चले थे। समग्र संसार में नैतिकता का ह्रास तेजी से हो चला था। ऐसे में कवयित्री साँई ने अपने पति गिरिधर कविराय की भांति नैतिकता का दामन थामा और संसार को उसकी कर्तव्यहीनता और दयाहीनता से वाक़िफ कराया। चूँकि पुरूष ही तत्कालीन सामंती समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा था इसलिए उन्होंने पिता–पुत्र के मध्य कलह के दुष्परिणामों से समाज को वाक़िफ़ कराया। पिता–पुत्र में जब हिरण्य कस्यपु और प्रहलाद, कंस और उग्रसेन जैसी कलह उपजती है तो परिवार किस प्रकार बारहबाट हो जाता है। इस ओर साँई अपनी एक कुण्डली में इंगित करती हैं –

साँई बेटा बाप के बिगरे भए अकाज।
हरणाकुसपु अरू कंस को गयो दुहुन को राज।।
गयो दुहुन को राज बाप बेटा से बिगरी।
दुशमन दावागीर हँसे बहु मंडल नगरी।।
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई।।[127]

तत्कालीन समाज में यह धारणा गहरे से व्याप्त थी कि पुत्र ही कुल का दीपक होता है। वही परिवार की मान–मर्यादा का रक्षक होता है। स्त्रियों को इसके लिए न केवल अनुपयुक्त समझा जाता था बल्कि विवाहित पुत्र से भी यह आशा की जाती थी कि वह अपनी पत्नी के भ्रमजाल में न आए तथा उसकी बात मानकर मायके में जाकर न रहने लगे। यदि कोई पुत्र ऐसा करता था तो इसे कुल मर्यादा का हनन समझा जाता था। तत्कालीन स्त्रियाँ भी सामंती समाज की इसी मानसिकता से ग्रस्त थीं इसलिए हमें साँईं की कुंडलियों में ऐसे पुत्र की अवहेलना दीख पड़ती है। गौरतलब है कि मध्यकाल में किसी स्त्री के लिए बाँझ होना घोर अपमान और शर्म की बात होती थी; लेकिन साँईं ऐसे पुत्र की अपेक्षा बाँझ होने को अधिक तवज्जो देती हैं जो कुल मर्यादा को त्यागकर अपनी पत्नी के कहे में आकर अपने ससुराल में जाकर रहने लगता है। कुंडली दृष्टव्य है –

साँईं ऐसे पुत्र से बाँझ रहै बरू नारि।
बिगरे बेटे बाप से जाय रहै ससुरारि।।

[127] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 05

जाय रहै ससुरारि नारि के हाथ बिकाने।
कुल के धर्म नसाय और परिवार नसाने।।
कह गिरिधर कविराय मातु झक्खे वहि ठाईं।
असि पुत्रिनि नहीं होय बाँझ रहतिउँ बरू साईं।।[128]

साँईं की उपरोक्त कुंडली से सिद्ध होता है कि सामंती संस्कार किसी व्यक्ति विशेष में नहीं होते। वे स्त्री में भी उतने ही हो सकते हैं जितने पुरूष में होते हैं। साँई का उक्त उदाहरण आलोच्यकाल में व्याप्त स्त्रियों को महत्व न देने की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है।

साँईं इस बात से भली–भांति परिचित थीं कि अपवाद छोड़कर 'अर्थ' किसी भी संबंध का मूल होता है। किन्हीं दो मित्रों में मित्रता का निर्वाह तब तक हो सकता है जब तक दोनों में परस्पर समान लेन–देन हो। यदि दोनों में से किसी को भी किसी भी क्षण यह आभास हो जाए कि उसके लिए अब इस संबंध में अर्थ की कोई भूमिका नहीं रही तो बहुत मुमकिन है कि वह संबंध घोषित और अघोषित रूप से वहीं समाप्त हो जाए; उदाहरणस्वरूप हम देख सकते हैं कि आधुनिक समय में विवाह संबंध समानधर्मी लोगों में ही स्थापित होते हैं। 'संबंधों में ऊँच–नीच कोई मायने नहीं रखती केवल चरित्र स्वच्छ होना चाहिए' जैसी बातें अंतोत्गात्वा कपोल कल्पनाएँ ही सिद्ध होती हैं। 'प्रेम' जिसे संसार का 'सार' कहा जाता है अधिकांशतः किसी संबंध में परिणत नहीं हो पाता। संभवतः यह उसकी प्रकृति हो। लेकिन प्रेम की चरम परिणति हेतु भी पेट में अन्न का होना अपरिहार्य है। 'भूखे भजन न होय गोपाला, ये लो अपनी कंठी माला' जैसी कहावतें समाज के मूल में व्याप्त इसी अर्थतंत्र का क्रूर ध्वन्याँकन हैं। अतः यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि समाज और सामजिक, लाभ–हानि के मध्य ही अपने संबंधों का निर्माण करते हैं; केवल भावनात्मक उन्माद से संसार की चाल अवरूद्ध हो जाती है और एक दिन प्रत्येक संबंध को अर्थ की मटमैली ज़मीन पर उतरना पड़ता है। साँईं की निम्नांकित कुंण्डली इसी तथ्य की पुष्टि करती है –

साईं सब संसार में मतलब के व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार।।
तब लगि ताको यार संगही संग में डोले।
पैसा रहा न पास यार मुखहू न बोले।।
कह गिरिधर कविराय जगत यह लेखा भाई।
बिनु बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं।।[129]

साँई के काव्य में हमें तत्कालीन समाज की उस राजनीतिक धुंध के दर्शन भी होते हैं जहाँ दो सेनाओं के मध्य हुए युद्ध में सभी मान–मर्यादाएँ टूट जाया करती थीं। सभी संबंधी, सहायक और वफ़ादार निष्फल सिद्ध

[128] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 06
[129] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 06

हो जाया करते थे और शत्रु सेना का एकमात्र उद्देश्य साम–दाम–दंड–भेद की नीति के द्वारा प्रतिपक्ष के राजा को पराजित करना होता था। आश्चर्य की बात है कि स्वयं साँईं युद्ध में पालन किये जाने वाले किसी नैतिक आदर्श की बात नहीं करतीं। संभवतः अपने समकालीन अनुभवों से अनुप्राणित और युद्ध की विभीषिका से भली–भांति परिचित लेखिका युद्धक्षेत्र में नैतिक अवमूल्यन को ही युद्ध का गंभीर मूल्य स्वीकार करती हैं। उनका कथन है कि –

साईं मूल्य न जानिए खेलि शत्रु संगसार।
दाव परे नहिं चूकिए तुरत डारिए मार।।
तुरत डारिए मार नरद कच्ची कर दीजै।
कच्ची होय तो होय मार जगमैं जस लीजै।।
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आईं।
कितनो मिले घिघाए शत्रु को मारिये साईं।।[130]

भगवद्गीता में कर्म को प्रधानता दी गई है। अपनी कालजयी कृति 'कामायनी' में 'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की' जैसी कालेत्तर पंक्ति के द्वारा जयशंकर प्रसाद भी कर्म को ही महत्व देते हैं। साँईं भी अपनी कुँडलियों में कर्म की इसी प्रकृति को तवज्जो देती हुई दीख पड़ती हैं। उनका कथन है कि अपने मन की बात तब तक किसी को नहीं कहनी चाहिए जब तक कर्म में परिणत होकर वह सिद्ध न हो जाय। उनकी यह कुँडली देखिए –

साईं अपने चित्त की भूलि न कहिए कोइ।
तब लग मन में राखिए जब लग काज न होइ।।
जब लग काज न होइ भूलि कबहूँ ना कहिए।
दुर्जन हँसे न कोय आप सियरे ह्वै रहिए।।
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिए नहिं साईं।।[131]

गौरतलब है कि 'सांई की रचनाओं में एक आदर्श है, नैतिकता है। आदर्श और नैतिकता ही इनकी कविता की जान है। ये नैतिकता और आदर्श के मंच पर खड़ी होकर संसार को उपदेश देती हुई दिखाई देती हैं। इनका नैतिक उपदेश किसी एक जाति के लिए नहीं, किसी एक देश के लिए नहीं, बल्कि समस्त विश्व के मानव समुदाय के लिए है।[132]

[130] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 05
[131] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 06
[132] व्यथित हृदय, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, पृष्ठ संख्या, 82

मध्यकाल में जहाँ सामाजिक अवमूल्यन बहुत तेजी से हो रहा था वहीं लगातार होते आक्रमणों ने नारी की मानसिकता को और कुंद कर दिया था। 'जो भारतीय नारी पहले उन्मुक्त थी, विदेशियों के भय ने उन्हें 'परदों', महलों' व 'रणिवासों' व घरों की चहारदीवारों के सींखंचों में बन्द कर दिया। नारी की अस्मिता को दबा दिया गया। श्रृंगार और भोग के उपादान के रूप में नारी को समझा जाने लगा, कई युद्ध स्त्रियों को लेकर हुए। स्त्रियों की इस दुर्दशा ने कई लोगों को अपनी कन्याओं व स्त्रियों को विष देने के लिए बाध्य कर दिया। इसी समय 'सती प्रथा' को भी बल मिला, यहाँ स्वेच्छा का स्थान दबाव ने ले लिया।[133] एक पुरूष की मृत्यु के साथ उसकी स्त्रियों का जीवित जल जाना नहीं अपितु जला दिया जाना यह व्यक्त करता है कि संसार में नारी उपभोग की अधिकारिणी नहीं, सामग्री बनकर आई थी। 'जिस सामग्री का कोई मूल्य नहीं, जो पत्नी बनकर किसी का अनुरंजन करने और माँ बनकर किसी का पालन करने की क्षमता नहीं रखती, उसके जीवन का मूल्य क्या है ? उसे जलाकर राख कर डालना ही उचित समझा गया।[134] नतीजतन मीराँबाई जैसी विद्रोहिणी कवयित्री का जन्म हुआ जिसने तद्युगीन मान–मर्यादाओं का अतिक्रमण कर धर्म के अधिनायकवादी दृष्टिकोण का खुलकर विरोध किया। देव कवि के शब्दों में कहें तो उन्हें इस बात की चिंता नहीं थी कि लोकमानस व अभिजात्यमानस उनके विषय में क्या सोचेगा! यथा –

कोई कहो कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौ।।
कैसो परलोक नरलोक वरलोकन मैं,
लीन्हौं मैं असोक लोक लोकन ते न्यारी हौं।।
तन जाहिं मन जाहिं 'देव' गुरूजन जाहि,
जीव क्यों न जाहि टेक टरत न टारी हौं।।
बृन्दावन वारी बनवारी के मुकुट पर,
पीतपटवारी वाहि मूरत पै वारी हौं।।[135]

उक्त आरोपों–प्रत्यारोंपों से मुक्त होकर मीराँबाई कृष्णभक्ति में सराबोर हो तत्कालीन समाज में व्याप्त 'सती प्रथा' जैसी कुप्रथाओं को अस्वीकार करती हैं। उदाहरण देखिए –

मीराँ लागो रंग हरी। सब रंग अटक परी।।
X X X X X
गिरिधर गास्याँ सती न होस्याँ। मन बसीयाँ घन नामी।।
जेठ बहु को नातो नाहीं। तुम सेवक हम स्वामी।।[136]

---

[133] कल्याण सिंह शेखावत, राजस्थानी–भाषा–साहित्य–संस्कृति, पृष्ठ संख्या, 62
[134] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 44
[135] गिरिजादत्त शुक्ल/ब्रजभूषण शुक्ल, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, पृष्ठ संख्या, 16
[136] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 63

तत्कालीन 'समाज में नारी की स्थिति ऐसी नहीं थी कि राजकुल की कोई महिला नीच वंश में उत्पन्न किसी साधु की शिष्यता ग्रहण करे, अथवा अन्य महात्माओं की मण्डली में स्वतंत्रता से विचरण कर सके। इस स्थिति ने मीराँबाई को अपने कुटुम्बियों के हाथों अनेक कष्ट पाने के लिए विवश किया, किन्तु इस महान आत्मावाली नारी ने परिस्थितियों के आवरण को भेदकर अपने आराध्यदेव सत्यनारायण का दर्शन किया।[137] अन्यथा राणा राजाओं ने घर की स्त्री को अपने घर की मान–मर्यादा का प्रतीक बनाकर रखा था। उनका महलों की मीनारों और इमारतों से निकलकर बाहरी समाज में जाने से सम्राटों का द्रव्य घटता था; लोक निंदा होती थी; किंतु मीराँबाई ने महलों के प्रतिबंधों की परवाह न करते हुए सिसोदिया राजपूतों के यहाँ से निकलकर कृष्ण भक्ति हेतु लोक में ही जाकर शरण ली। वे मंदिरों में बैठकर मुरलीधर की भक्ति में पद गाया करती थीं और घुँघरू बाँधकर नाचा करती थीं। लोकविदित है कि उन्हें ज़हर देकर मृत्युदंड देने का प्रयास किया गया परंतु उन्होंने अपनी लीक नहीं छोड़ी और भक्ति के माध्यम से न केवल सिसोदियाओं को चुनौती देती रहीं अपितु अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का भी वर्णन करती रहीं। यथा –

राणोजी थें जहर दियो म्हें जाणी।।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बाराँवाणी।
लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपने घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।।[138]

उल्लेखनीय है कि तत्कालीन समाज में 'सती प्रथा' विधवा औरतों को संपत्ति में अधिकार से वंचित करती थी। फिर वर्चस्ववादी समाज में इसके लिए कोई प्रावधान भी नहीं था। चूँकि हिंदू धर्म में ईश वंदना का प्रभुत्व था और वही एक ऐसा स्थान था जहाँ स्त्री को शरण प्राप्त हो सकती थी इसलिए मीराँबाई ने उसी मार्ग को अपनाया। फिर मीराँबाई ने गिरिधर नागर को पतिरूप में स्वीकार कर मध्यकालीन समाज की सती धारणा को भी ख़ारिज कर दिया। यदि कुछ लोग उन्हें पागल या बौराई हुई कहते थे तो ऐसे लोगों के लिए मृत्यु निषेध थी, अर्थात् मीराँबाई अपने समय की उच्चकोटि की कृष्ण भक्त ही नहीं बल्कि एक समझदार व नीतिकुशल महिला भी थीं।

<u>युद्ध वर्णन</u> : मध्यकालीन युग युद्धों की विभीषिका से त्रस्त था। चारों ओर प्रयाण करती हुई सेनाएँ, बकुचा बाँधे हुए हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक और उनके चलने से उड़ने वाली धूल के दृश्य थे। मुगल सल्तनत की आपसी कलह जनमानस के समक्ष उजागर होने लगी थीं। शाहजहाँ और औरंगजेब के मतभेद रियाया के सामने आ गए थे। औरंगजेब अपने भाई दाराशिकोह को कत्ल कराने के कई यत्न कर चुका था। उसका नज़रिया अपने पूर्वज़ अक़बर से एकदम अलग था। उसमें सहिष्णुता जैसा कोई गुण नहीं था।

[137] गिरिजादत्त शुक्ल / ब्रजभूषण शुक्ल, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, पृष्ठ संख्या, 7–8
[138] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 107

वह इस्लाम का कट्टर अनुयायी था लेकिन उसकी कुचक्री सोच अपने नफ़े के मुआमले में इस्लाम का भी उपयोग कर सकती थी। दूसरी ओर हिंदुओं के राजे–रजवाड़े अपने–अपने अस्तित्व के लिए एक–दूसरे के सामने युद्धभूमि में खड़े हुए थे। हज़ारों की सेना प्रत्येक युद्ध में क्षत–विक्षत हो रही थी और सैंकड़ो की संख्या में महिलाएँ सती हो रही थीं। ऐसे में पद्माचारिणी, ठकुरानी काकरेची जी और सुंदरिकुँवरिबाई के काव्य में युद्ध के दृश्यों का बिंबन होना स्वाभाविक है। कवयित्री पद्माचारिणी ने मुगलों से युद्ध के लिए प्रयाण करती हुई सेना का नाद चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसमें सैनिक खड़गों, तलवारों, तूरियों के साथ आकाश को गुँजायमान करते हुए आँधी की तरह आगे बढ़ते जा रहे हैं। अपभ्रंश भाषा में लिखित उनका यह उदाहरण देखिए –

गयण गाज आवाज रणतूर पाखर गरर।
सालुले सिंधुओ राग साथै।।
दुरित धनराज रौ वैर जल डोहतौ।
मलफियौ मूँगली फ़ोज माथै।।[139]

युद्धाभिषप्त तद्युगीन राजे–महाराजे अपने से सबल राजा या बादशाह की घात से रक्षा हेतु किसी भी संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार थे। उनके लिए एक चुनौती पुत्र की प्राप्ति भी थी क्योंकि यदि किसी राजा के पास उत्तराधिकारस्वरूप उसका पुत्र नहीं होता था तो अक़बर की ओर से उसे खालिसा में शामिल करने का हुक्म था। सत्रहवीं शती में जोधपुर के संदर्भ में भी इसी प्रकार की एक घटना सामने आती है। मुगल सेनानायक ''इक्तियार खां ने शाही दरबार द्वारा 'खालिसा' के जोधपुर पर अधिकार किए जाने का इस आधार पर समर्थन किया कि वतन को किसी स्त्री या नौकर के अधिकार में नहीं दिया जा सकता।.... तब स्थिति और भी जटिल हो गई जब मार्च या अप्रैल में यह ख़बर पहुँची कि जसवंत सिंह की दो पत्नियों ने दो पुत्रो को जन्म दिया है।[140] लेकिन बच्चों के छोटा होने के कारण स्थिति में कोई ख़ासा बदलाव नहीं हुआ। तब 1679 ई. में जसवंत सिंह की पत्नी रानी हाड़ी ने यह घोषणा की कि 'यदि स्वर्गीय राजा के बेटों को जोधपुर दे दिया गया तो मारवाड़ राज्य में राजपूत सब मंदिरों को तोड़ देने के लिए तैयार हो जायेंगे।[141] सुंदरिकुँवरिजी के काव्य में हमें उक्त घटनाओं के प्रमाण के साथ–साथ भयभीत शत्रु स्त्रियों, भागते हुए राव–राणा, शत्रुपक्ष को मनाने हेतु नज़राने देने और कदमताल करती हुई सेना के धूल धूसरित चित्र मिलते हैं। उनका यह कवित्त देखिए –

बाजत नगारे अरू गाजत गयन्द भारे, भयमान अरी की नरीन गही डरी हैं।
दल पारावार को अपार रव रह्यो छाय, भाजैं राज राव उर उठैं धरधरी हैं।।

[139] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 37
[140] मोहम्मद अतहर अली, मध्यकालीन भारत (भाग–2), पृष्ठ संख्या, 100
[141] मोहम्मद अतहर अली, मध्यकालीन भारत (भाग–2), पृष्ठ संख्या, 101

बाँधत जे बान सुर ताके तेऊ थहराने, केऊ नजराने दै पुरी की रच्छा करी हैं।
अलका मैं अलकनि मेरू माहिं पलकन, सूर की वधु कै हू चमू की रज भरी हैं।।[142]

हिंदी साहित्य में ऐसा ही एक चित्रण हमें वीर शिवाजी के सेवक कवि भूषण के काव्य संग्रह 'शिवराज भूषण' में परिलक्षित होता है। व्याख्येय युग में नगाड़े बजाती हुई लोहे की झूलों से ढके हुए हाथियों के साथ जब शिवाजी की सेना प्रयाण करती थी तो शत्रुओं के हृदय डोलने लगते थे। उनका प्रताप और भय शत्रुओं के मन में गहरे से बैठा हुआ था। उनकी विलक्षण सेना के प्रयाण का यह दृश्य देखिए जो सुंदरिकुँवरि जी के आस पास ही बैठता है –

चमकति चपला न फेरत फिरंगैं भट इंद्र की न चाप रूप बैरख समाज कौ।
धाए धुरवा न छाए धूरि के पटल मेघ गजिबौ न साजिबौ है दुंदुभी–अवाज कौ।
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं पिय भजौ देखि उदौ पावस के साज कौ।
घन की घटा न गजघटनि सनाह साज, भूषण भनत आयौ सैन सिवराज कौ।।[143]

उल्लेखनीय है कि भूषण के यहाँ युद्ध की विभीषिका का विध्वंशकारी व वीभत्स चित्रण भी हुआ है लेकिन सुंदरिकुँवरिबाई के काव्य में हमें रूंड–मुण्ड–झुण्ड, अंग–भंग जैसे शब्दों का प्रयोग देखने को नहीं मिलता। वे युद्ध की परिस्थितियों के मध्य भी जीवन की आशा लेकर चलने वाली लेखिका हैं इसलिए वे नज़राने देकर सुलह करने की बात को अपने लेखन में स्थान देती हैं। यह केवल उन्हें एक उच्चकोटि की लेखिका ही सिद्ध नहीं करता अपितु प्रत्युत् सधी हुई राजनीतिक सोच का भी परिचायक हैं।

उक्त लेखिकाओं से अलग बिरजूबाई ने अरबी घोड़ों पर अपनी कलम फेरी है। हिंदी साहित्य में यह प्रथम बार हुआ है जब किसी लेखिका ने घोड़ों पर कोई काव्य सृजन किया हो। ध्यातव्य है कि प्रत्येक देश, राज्य और राजवंश की एक समरनीति होती है। 'हाथी' सदा से ही भारत के राजे–रजवाड़ों की समरनीति का अभिन्न अंग रहे हैं। उसकी ऊँचाई और मोटी–मोटी स्थिर व गद्देदार टाँगें उसकी पीठ पर बैठे राजा को शत्रु के ऊपर स्थिर निशाना साधने में सहायक थीं। समरभूमि में लगने वाले छोटे–मोटे घावों का हाथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था और यदि कोई शत्रु उसकी सूँड़ की जद में आ गया तो उसका इंतिकाल होना लगभग निश्चित था इसलिए 'हाथी' भारतीय राजाओं की पहली पसंद होता था। इससे अलग 'घोड़ा' यूनानी युद्धनीति का मुख्य हिस्सा था। अरब और यूनानी घोड़ों की फुरती, छरहरे शरीर और तेजी पर अधिक विश्वास किया करते थे। भारतीय शरज़मी पर लड़ी गई यूनानी सम्राट सिकंदर और पौरस की लड़ाई केवल दो सेनाओं की लड़ाई न होकर दो युद्धकलाओं, युद्धनीतियों व घोड़ों और हाथियों की लड़ाई भी थी। आपसी लड़ाईयों में दोनों ओर की समरनीतियाँ प्रभावित हुईं और जहाँ यूनानियों ने हाथियों का लोहा स्वीकार किया वहीं घोड़े भारतीय युद्धनीति का अटूट हिस्सा हो गए। ऐसे में बिरजूबाईकृत अश्वकाव्य हिंदी

[142] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 147
[143] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 142

साहित्य में एक अनोखा प्रयास है जो कवयित्री का महत्व और अधिक बढ़ा देता है। अश्व पर लिखा गया उनका यह पद देखिए –

केहा सुचाला ऐराकी। नाव जेरा की बाखाण कीजे।।
ताव जोड तेराकी। पैरा की नाग ताज।।
ऐराकी रूपगाँ आछाँ। नोखाँ रीझावर पतो।।
रीझाँदे ऐराकी काछी। ऐहा बाजराज।।[144]

(अर्थात् यह कितनी सुन्दर गति वाला ईराकी अश्व है। इसका वर्णन किस प्रकार किया जाय। यह रूप का इतना सुन्दर है कि मन को मुग्ध कर लेने का इसमें अद्‌भुत गुण है। यह तो अश्वों का राजा ज्ञात होता है)। दृष्टव्य है कि हिंदी साहित्य में 'तुरंग' शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है और कहीं–कहीं उनके लिए एकआधा पद्यांश भी दृष्टित होता है लेकिन बिरजूबाईकृत उक्त कविता संभवतः अश्वों पर लिखी गई एक अनूठी कविता है।

आदिकाल और मध्यकाल की उक्त लेखिकाओं के लेखन की अंतर्वस्तु का विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनके लेखन का क्षेत्र विस्तार भले ही कम हो किंतु उनकी गुणवत्ता और संभावनाएँ, क्षेत्र विस्तार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने गुरूभक्ति, निर्गुणभक्ति, सगुण भक्ति और सामाजिक विषयों के साथ–साथ जीवन के कई ऐसे पहलुओं को छुआ है जो साहित्य से अबतक अछूते रहे हैं। यदि उपर्युक्त लेखिकाओं का लेखन प्रकाश में न आता तो कभी राधाभक्ति, राधा का निर्गुण स्वरूप, कृष्ण का स्त्रीमय रूप, राम नाम का कृष्ण का पर्याय होना, गालियों की रीति, जीवन में पति की महत्ता, चारिणी काव्य, धार्मिक समन्वयवादी दृष्टि, गहनों की भाषा, अश्वों का महत्व जैसे विषय एवं उनकी अंर्तध्वनि कभी हिंदी साहित्य का हिस्सा नहीं हो पाते। यह तथ्य कभी उजागर न होता कि स्त्रियों के लिए अंधकारयुग सिद्ध हो रहे आदिकाल और मध्यकाल में एक मुस्लिम महिला होते हुए कृष्णोपासना करना और एक हिंदू महिला होते हुए कुरान की वंदना करना किसी स्त्री के लिए कितना भयाक्रांत कर देने वाला कार्य हो सकता है! संभवतः यही वह स्त्री दृष्टि है जिसे कभी मुख्यधारा में शामिल नहीं होने दिया गया। साहित्य सृजन हेतु 'पुरूषों को जिस प्रकार स्वच्छंदता मिली थी, उनको अपने विचारो को प्रकट करने की जो सुविधाएँ प्राप्त थीं यदि स्त्रियों को भी उसी प्रकार के सुयोग प्राप्त होते तो पुरूष कवियों के साथ–साथ स्त्री कवियों का विकास होता जाता और आए दिन दोनो की साहित्यिक सेवाओं की महानता से हिंदी साहित्य की विशालता और भी अधिक प्रकट होती।[145] दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। परंतु उपरोक्त साहित्य के प्रकाश में आने से यह तथ्य एक बार फिर से सही सिद्ध होता है कि एक लंबी कड़ी न केवल सुंदर प्रतीत होती है अपितु उपयोगी भी सिद्ध होती है लेकिन यदि कड़ी के टुकड़े टुकड़े कर दिये जाएँ तो वह न सुंदर

[144] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 81
[145] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी (वक्तव्य), पृष्ठ संख्या, 13

प्रतीत होगी और न उपयोगी सिद्ध होगी। अतः हमें स्त्री–पुरूष साहित्य को समग्रता में पढ़ने की आवश्यकता है ताकि दोनों के जीवन को संपूर्णता में समझने का प्रयास किया जा सके। फिर आधी आबादी के साहित्य श्रम की उपेक्षा करके हम दूसरी आधी आबादी के साहित्य को पंगु ही बनायेंगे। ऐसे में उससे पूर्णानुभूति एवं पूर्ण सत्य की आशा नहीं की जा सकती।

अध्याय # 5

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन

शिल्पगत मूल्यांकन

(क) रस परिपाक

(ख) बिम्ब विधान

(ग) अलंकार विधान

(घ) छंद विधान

(ड़) काव्य गुण

(च) प्रतीक विधान

(छ) शब्द शक्ति

(ज) मिथक

(झ) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

(ञ) राग विधान

(ट) काव्य शैली

शिल्पगत मूल्यांकन

भाषा और भाव एक ही रथ के दो पहिए हैं, जो दिखते तो अलग–अलग हैं, परंतु सत्य यह है कि एक के भी हट जाने से रथ का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। बगैर भाषा रूपी पहिए के भाव कंकड़ पत्थर जनित मार्ग पर लहूलुहान हो जायेंगे और बिना भाव रूपी पहिए के भाषा एक खोखली अनुगूँज बनकर रह जायेगी, जिसका न कोई अस्तित्व होगा और न कोई स्वरूप। अन्य शब्दों में कहें तो, बगैर भाषा के भाव मानुष रूपी भवन में उस प्रतिध्वनि के समान हैं जिन्हें बाहर निकलने की कोई पद्धति दृष्टित नहीं होती और जो दीवारों से टकराकर भवन के भीतर ही समाप्त हो जाती है; इसलिए दोनों के महत्व को अलग–अलग प्रतिपादित करना उतना ही आवश्यक है जितना दोनों को समग्रता में देखना।

उल्लेखनीय है कि बिना शिल्पकला के भाषा केवल आम बोलचाल का उपकरण बनकर रह जाती है। एक रचनाकार ध्वनि, वर्ण, शब्द और वाक्य के माध्यम से एक ऐसा रचना संसार बुनता है जो वैयक्तिक और सामाजिक होते हुए भी व्यक्ति और समाज जैसा नहीं होता। भाषा के उक्त उपकरण रचनाकार की कलम की नोंक के नीचे आते ही व्यक्ति के अंतर्मुखत्व को अभिव्यक्ति प्रदान करने लगते हैं और उसका भीतरी संसार बाह्य होने लगता है। ये भाषिक अभिव्यक्ति कभी भावों के विभिन्न स्तरों द्वारा झंकृत होती है, तो कभी मन में बैठे हुए 'रसों' में इसका परिपाक होता है। यही भाषिक शब्द विधान कभी मानवेन्द्रिय जनित बिंबो की सर्जना करता है, तो कभी उसी बिंब विधान के द्वारा इंन्द्रियातीत हो जाना चाहता है। कभी विभिन्न अलंकारों के द्वारा अंतर्मन को झंकृत कर देता है, तो कभी छंद की 'लय' में डूबकर सबकुछ भुला देना चाहता है। इसी प्रकार भाषा का यह शब्द विधान अलग–अलग रूप धरकर गुणों, प्रतीकों, शब्द–शक्तियों, मिथकों, मुहावरों, लोकोक्तियों और अनेक रागों में प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, एक रचनाकार भाषा के उपर्युक्त उपकरणों द्वारा एक ऐसा 'शिल्प विधान' बुनता है जैसे एक शिल्पकार किसी मूर्ति का निर्माण करते हुए उसके आँख, कान, नाक, ओष्ट, मुँह, कटि, नाभि, नख, पग आदि को आवश्यक अनुपात में शिल्पबद्ध करता है। जैसे उक्त उपकरणों से सुसज्जित कोई विधा अपनी समग्रता में ही लेखक की पूर्णाभिव्यक्ति होती है वैसे ही कील, छेनी, हथौड़ी, कन्नी, रंग से निर्मित मूर्ति अपनी पूर्णता में ही एक शिल्पकार की कोमल कल्पना की पाषाणीय अभिव्यक्ति होती है।

भाषा के संबंध में यहाँ एक प्रश्न 'स्त्री भाषा' और 'पुरूष भाषा' का भी है। हमें यह विचार करना चाहिए कि स्त्री साहित्य के आधार पर क्या 'पुरूष भाषा' से अलग 'स्त्री भाषा' की अवधारणा संभव है ? उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज सैंकड़ों वर्षों से पितृसत्तात्मक रहा है। यहाँ पुरूषों की भाषा वर्चस्ववादी, अहम–अभिमान से अनुप्राणित, अश्लीलता, कामुकता, मादकता और ऐन्द्रियता से ओत–प्रोत रही है। फलस्वरूप आदिकाल से लेकर समस्त मध्यकाल तक पुरूष साहित्यकारों की भाषा उक्त उपादानों की

द्योतक रही है। उन्होंने स्त्री जगत से सदा सेवा, श्रम और शरीर की ही आशा की है। विद्यापति कृत 'आज मोहे सुभ दिन भेला, कामिनी पेखल स्नान का बेला' या पद्माकर द्वारा विरचित 'घाघरे की घूमनि सूँ उरून दूबीचे दाबी, आँगिही उतारी सुकुमारी मुख मोरे हैं' जैसे पद उनकी वर्चस्ववादी दृष्टि को ही सिद्ध करते हैं। सत्ताधारी समाज की यह भाषा स्त्री जगत पर भी अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल रही है; यही कारण है कि हम मध्ययुगीन स्त्री साहित्य में 'पुत्र प्राप्ति की चाह, पतिव्रता स्त्री और घनघोर समर्पण' जैसे विषयों को देखते हैं। इस सबके बावजूद यह कहा जा सकता है कि 'पुरूष भाषा' से अलग 'स्त्री भाषा' की अपनी एक दुनिया हो सकती है। चूँकि स्त्री के भीतर अनुभूति की गहराई पुरूष से अधिक होती है और वे छोटी–छोटी वस्तुओं में भी अपनी खुशी ढूँढ लेती हैं इसलिए उनके लेखन में 'जनानी चोली, हथनियाँ, दिलजानी, साहेब, मोती, बाजूबंद, पनघट, कुलवधु, अंचर, गागरी, सीस उघरी, मटकी, जिठानी, देवरानी, आँगन, घूंघट, लाज, सास, डुपट्टा' जैसी शब्दावली का प्रयोग अनायास रूप से हुआ है। उनकी रसानुभूति, बिंबानुभूति, प्रतीक, मिथक, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और राग बहुत न सही पर कुछ हद तक उनकी भाषिक दुनिया से ही निर्मित हुए हैं, जो स्त्री समाज के एक अलग अस्तित्व की पहचान कराते हैं। अतः भाषा के उपरोक्त प्रतिमानों के आधार पर आलोच्य काल की लेखिकाओं के काव्य शिल्प का मूल्यांकन निम्नलिखित है –

रस परिपाक

रस संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में आठ रसों की कल्पना करते हुए 'विभाव (आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव), अनुभाव (सात्विक अनुभाव और कायिक अनुभाव) और व्यभिचारि भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी है। भरतमुनि ने आठ रसों में श्रृंगार रस, हास्य रस, करूण रस, रौद्र रस, वीर रस, भयानक रस, वीभत्स रस और अद्‌भुत रस की गणना की है। कुछ आचार्यों ने 'भक्ति' और 'शान्त' रस को भी रस की संज्ञा दी है लेकिन भरतमुनि ने 'भक्ति' को केवल 'भाव' विशेष ही स्वीकार किया है। भरतमुनि के रस सिद्धांत के अनुसार आदिकालीन और मध्यकालीन लेखिकाओं के लेखन में उक्त प्रकार के कई रसों का परिपाक हुआ है। जहाँ कवयित्री उमांबा, मुक्ताबाई और पार्वतीबाई के काव्य में शांत रस की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं झीमा चारिणी, चंपादे रानी, प्रवीणराय पातुरि, केशवपुत्रवधु, शेख रंगरेजिन, ताज़, बीराँ, रसिकबिहारी बनीठनी,प्रेमसखी और कृष्णावति के काव्य में श्रृंगार की मनोहारी और द्रवीभूत कर देने वाली छटाएँ दृष्टिगत होती हैं। इसके अतिरिक्त गंगाबाई के यहाँ वात्सल्य रस, पद्‌मा चारिणी के यहाँ वीर, रौद्र और वीभत्स रस के दर्शन होते हैं। व्याख्येय लेखिकाओं के काव्य में हमें कहीं कहीं करूण रस और आध्यात्मिक विरह के दर्शन भी हो जाते हैं। बहरहाल, आलोच्यकालीन कवयित्रियों के काव्य का रस विश्लेषण निम्नलिखित है –

श्रृंगार रस

श्रृंगार शब्द 'श्रृंग' एवं 'आर' के संयोग से उत्पन्न हुआ है जिसमें 'श्रृंग' का अर्थ है – काम की वृद्धि तथा 'आर' का अर्थ है – प्राप्ति अर्थात् काम की जागृति के आश्रय या आलंबन की प्राप्ति। अतः पूर्ण श्रृंगार हमें वहीं दृष्टित होता है जहाँ नायक और नायिका दोनों की उपस्थिति हो और परिस्थितियानुरूप दोनों एक–दूसरे के आश्रय और आलंबन हो रहे हों। दोनों के मन में एक–दूसरे के प्रति समान रतिभाव जागृत हो रहा हो। इस अर्थ में हमें आलोच्यकालीन लेखिकाओं में श्रृंगार रस के दोनों रूपों (संयोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार) के दर्शन होते हैं।

संयोग श्रृंगार

कवयित्री छत्रकुँवरिबाई ने स्वरचित ग्रंथ 'प्रेम विनोद' में परिपुष्ट संयोग श्रृंगार का चित्रण किया है। उनकी कविता में 'संयोग की अनेक दशाओं का वर्णन कलापूर्ण तथा सजीव है, तथा कृष्ण और राधा के नाम पर श्रृंगार रचना करने वाले श्रेष्ठ कवियों से टक्कर लेने की क्षमता उनकी रचनाओं में है।[1] संयोग श्रृंगार से अनुप्राणित उनका यह कवित्त देखिए जिसमें उनकी नायिका संझा के समय अपनी सखियों से बगिया में चलकर फूल चुनने के लिए कह रही है क्योंकि इसी समय ब्रजमुखी श्रीकृष्ण बगिया में विहार हेतु आते हैं। उनके दर्शन और प्रेम की प्राप्ति हेतु सखी फुलवारी में फूल चुनने के लिए जाना चाहती है। बगिया में पहुँचकर ब्रजेन्दु कृष्ण को निहारते हुए कवयित्री छत्रकुँवरिबाई की नायिका की जो दशा हुई है वह दृष्टव्य है –

गरबाँही दीने कहूँ, इक टक लखन लुभाहिं।
पगपग द्वै द्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं।।
थकित खरी रहि जाहिं, दृगन दृग छुटे न छूटें।
तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सु लूटें।।
नैनन नैनन सुगल, बैन सों नहिं बनि आवै।
उमड़त प्रेम समुद्र, थाह तिहिं नाहिन पावै।।[2]

छत्रकुँवरिबाई के उक्त काव्यांश में नायक और नायिका के नैन परस्पर ऐसे उलझ गए हैं कि दोनों के मन में रति भाव जागृत हो रहा है। नायिका और नायक परिस्थितियानुरूप एक–दूसरे के आश्रय और आलंबन हो रहे हैं। उपवन की हरी भरी घास, पल्लवित पुष्प, पुष्पों का रंग, संझा का समय, श्रीकृष्ण का श्यामल

[1] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 199
[2] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या, 20–21

रंग, कोमल डालियों को सहलाने वाली मंद–मंद पवन, नायिका के आँचल का बेलों में फँस जाना आदि स्थितियाँ रति भाव को उद्दीप्त करने का कार्य कर रही हैं। इसके अतिरिक्त नायिका और नायक के नैनों का उलझ जाना, दो–दो कदम चलकर बार–बार ठिठक जाना, सस्नेह एक–दूसरे को देखते रहना, किसी भी बात का न सूझना; वे सात्विक अनुभाव हैं जो प्रेम को पुष्ट कर रहे हैं तथा मिलन का हर्ष, मन का उल्लास, नैनों का शर्माना आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार प्रेमी युगल के मन में सात्विक भावों, अनुभावों और संचारी भावों के जागृत होने से यहाँ रति भाव की स्थापना हो रही है; अतः यहाँ पूर्ण श्रृंगार रस का परिपाक हो रहा है।

श्रृंगार रस का एक मांसल दृश्य हमें कवयित्री प्रवीणराय पातुरि के काव्य में दृष्टिगत होता है। उनकी 'कल्पनाओं की ऊँची उड़ान महान कवियों की कल्पना से टकरा गई है। काव्य की भावनाओं तथा अभिव्यंजना के तादात्म्य का सिद्धांत उनकी रचनाओं पर पूर्ण तथा सार्थक है, कला तथा भावना का रागात्मक गुंफन उनके काव्य की सफलता है।[3] वे अपने प्रेमी राजा इन्द्रजीत राय को कुक्कुट और चिड़ियाओं की भांति सदा अपने पास रखना चाहती हैं। प्रवीणराय राजा जी को सारंग राग सुनाकर मोह लेना चाहती हैं और जब राजा इंद्रजीत उन्हें मिल जाते हैं तो वे निश्चित होकर उन्हें आलिंगन कर उनके अंक में निसिबासर व्यतीत कर देना चाहती हैं; इसलिए वे चाँद से भी प्रार्थना कर रही हैं कि वह धीमी गति से चले। उदाहरण देखिए –

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं, चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौं जलियो।
सारँग में सारँग सुनाइ के 'प्रबीन' बीना, सारँग दै सारँग की जोति करौं थलियो।।
बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं, करौंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो।
मोहि मिलैं इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय, एहो चन्द! आज नेकु मन्द गति चलियो।।[4]

प्रस्तुत पद में नायिका प्रवीणराय और राजा इंद्रजीत सिंह परस्पर आश्रय और आलंबन हो रहे हैं। परयंक में बैठी नायिका नरिन्दराय के हृदय में जागृत होने वाले प्रेमभाव का आलंबन हो रही है और नरिन्दराय को अनिमेष निहार रही नायिका के लिए राजा इंद्रजीत आलंबन हो रहे हैं। कुक्कुट और चिड़ियों को अपने पास रखने का भाव, अपनी वीणा से राजा इंद्रजीत को राग सारंग सुनाना, अपने प्रिय की गोद में बैठना तथा चाँद का निकलना जैसी परिस्थितियाँ रतिभाव को स्थापित करने वाले कारक हैं अतः ये उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आती हैं। राजा जी को अधर पान करने की कल्पना से ही 'उन्मत्त' हो जाना सात्विक अनुभाव है। नरिन्दराय जी के प्रति मन में उठने वाले उल्लास, हर्ष, मोह, गर्व, मिलने की उत्सुकता आदि व्यभिचारि भाव

[3] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 242
[4] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 96

प्रेम को पुष्ट करने वाले कारक हैं। प्रयुक्त छंद में परिपुष्ट विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की उपस्थिति के कारण यहाँ श्रृंगार रस की उत्पत्ति हुई है।

वियोग श्रृंगार

'वियोग श्रृंगार', श्रृंगार रस का द्वितीय चरण है। अपने प्रिय से बिछोह हो जाने पर आश्रय के मन में उत्पन्न होने वाला विषाद, प्रिय की चिंता, आश्रय की दीन–हीन अवस्था आदि वियोग श्रृंगार के अंतर्गत आती हैं। बिछोह की अनुभूति के आधार पर भारतीय आचार्यों ने वियोग श्रृंगार के पाँच प्रकार – (1) पूर्वानुराग (2) मान (3) प्रवास (4) करूण (5) शापहेतुक, और दस दशाएँ – (1) अभिलाषा (2) चिंता (3) स्मरण (4) गुणकथन (5) उद्वेग (6) प्रलाप (7) उन्माद (8) जड़ता (9) व्याधि (10) मरण, बताई हैं। आलोच्यकालीन लेखिकाओं ने अपने काव्य में संयोग के जितने सुन्दर दृश्य उकेरे हैं उससे कहीं अधिक सुन्दर दृश्य वियोग के उकेरे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे विप्रलंभ की स्थिति में एक स्त्री का मन सही मायने में बाहर निकलकर अपने वियोग गीत गा रहा है; इसलिए उनके लेखन में वियोग के लगभग सभी प्रकार एवं दशाएं दृष्टित होती हैं; वियोग के उपरिलिखित सभी प्रकार एवं दशाएँ निम्नलिखित हैं –

वियोग के प्रकार

पूर्वानुराग

पूर्वानुराग, अर्थात् प्रियमिलन से पूर्व का आकर्षण। ऐसी स्थिति में आश्रय का मन विभिन्न प्रकार की कोमल कल्पनाएँ करने लगता है, मन में हर्ष, उल्लास, उमंग और उत्सुकता का संचार होने लगता है और शरीर अनायास ही अठखेलियाँ करने के लिए उद्धृत होता है। व्याख्येयकालीन लेखिकाओं में हमें कवयित्री प्रवीणराय के मन में राजा इन्द्रजीत सिंह के प्रति पूर्वानुराग दृष्टित होता है। वे प्रिय मिलन से पूर्व अपने शरीर की शीतलता तथा अंतर्मन में होने वाले परिवर्तनों को अनुभूत कर रही हैं। उनकी कोमल कल्पना है कि वे अपने प्रिय से मिलन पर उसे अपनी पलक के एक अलक तक को छूने नहीं देगी; प्रत्युत् उसे अपलक निहारकर सर्वप्रथम अपने विछोह की थकान उतारेगी। कवयित्री अपनी सखियों से कह रही है कि जब उसे उसके प्राण प्यारे प्रियतम मिलेंगे तब वह उन्हें अपना दाहिना नयन मूँदकर अनिमेष निहारेगी और मिलन का सुख प्राप्त करेगी। प्रवीणराय के हृदय में पल्लवित इस पूर्वानुरागी अनुभूति को देखिए –

सीतल सरीर ढार, मंजन कै घनसार, अमल अँगोछे आछे मन में सुधारि हौं।
देहौं न अलक एक लागन पलक पर, मिली अभिराम आछी तपन उतारि हौं।।

कहत 'प्रवीणराय' आपनीन ठौर पाय, सुन बाम नैन या बचन प्रीतिपारि हौं।
जबहीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान–प्यारे, दाहिनो नयन मूँदि तोहिं सौं निहारि हौं।।[5]

'मान' अवस्था

संयोग के पश्चात् नायक या नायिका के रूठ जाने पर जो वियोग होता है वह **मान** की श्रेणी में आता है। उक्त लेखिकाओं में हमें शेख रंगरेजिन के यहाँ मान की कई अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। एक अवस्था में राधा जी ने अपने प्रिय श्रीकृष्ण से 'मान' कर लिया है; नतीजतन श्रीकृष्ण नदी के किनारे बैठकर कुमारी राधा के वियोग में अश्रुपात कर रहे हैं। राधा की सखी उसे कहती है कि तुम्हारे वियोग में ब्रजनंदन ने सजना–संवरना छोड़ दिया है। उनकी मीठी वाणी मौन हो गई है, उनका ध्यान गउचारण में नहीं लगता है, उनके शीशमुकुट के मोरपंख तितर–बितर हो गए हैं, ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनके मन का किसी अप्सरा ने हरण कर लिया है, उनकी छवि केवल छांह ही छूती है अर्थात् वे नदी किनारे एक कोने में बैठकर केवल आँसू बहाते रहते हैं। राधा के मान और श्रीकृष्ण के वियोग की यह कातर छवि देखिए –

कहूँ भूल्यो बेनु कहूँ धाई गयी धेनु कहूँ,
आये चित चैनु कहूँ मोरपंख परे हैं।
मन को हरन को है अछरा छरन को है,
छाँह ही छुवत छबि छिन ह्वै कै छरे हैं।।
सेख कहै प्यारी तू जौ जबहीं ते बन गयी,
तब हीं ते कान्ह अँसुवनि सर करे हैं।
याते जानियति है जू वेऊ नदी नारे नीर
कान्ह बर विफल बियोग रोय भरे हैं।।[6]

प्रवास

नायक–नायिका के मिलन के पश्चात् एक–दूसरे के अन्यत्र चले जाने से उत्पन्न वियोग **प्रवास** की कोटि में आता है। कवयित्री मीराँबाई के यहाँ इस प्रकार के कई पद हैं जिसमें वे अपने प्रिय कृष्ण से वियोग में अकेले छोड़ जाने की शिकायत करती हैं। मीराँकृत 'राग दरबारी' का यह पद देखिए जिसमें

[5] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 95
[6] वही, पृष्ठ संख्या, 80

उन्होंने गोपाल कृष्ण से प्रेम का विश्वास देकर विरह समंद में अकेले छोड़ जाने की न केवल शिकायत की है वरन् प्रेयसी जन्य ताना भी कसा है, और साथ ही कृष्ण से शीघ्रातिशीघ्र मिलने की प्रार्थना भी की है। 'राग दरबारी' का यह पद देखिए –

प्रभु जी कह्याँ गया नेहड़ा लगाय।
छोड्यो म्हाँ विसवास सँगाती, प्रीतरी बाती जलाय।
विरह समँद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीराँ रे प्रभु कब रे मिलोगे, थें विण रह्याँ न जाय।।[7]

प्रवास विप्रलंभ का एक अन्य दृश्य हमें राजस्थानी कवयित्री कविरानी चौबे के यहाँ दृष्टित होता है। उन्होंने अपने पति लोकनाथ चौबे के साथ संयोग के क्षणों के स्निग्ध एवं मधुर स्वप्न देखे थे किंतु; अचानक ही उन्हें राजा बुध सिंह जी के साथ जंग के लिए दिल्ली जाना पड़ा। अपने पति के प्रदेश जाने से कवयित्री चौबे का मन सिहर उठा। उनकी अंतर्मन की वेदना से विह्वल और स्वप्नों की निर्झरी के सूख जाने से व्याकुल ह्रदय का कलनाद सुनिए –

मै तो यह जानी ही कि लोकनाथ पाय पति संगही रहौगी अरधंग जैसे गिरिजा।।
एते पै विलक्षन ह्वै उत्तर गमन कीनो कैसे कै मिटत ये बियोग बिधि सिरिजा।।
अब तो जरूर तुम्हें अरज करेही बनै वेहु द्विज जानि फरमाय है कि फिरिजा।।
जोपै तुम स्वामी आज अटक उल्लंघ जैहो पाती मांहि कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरिजा।।[8]

करूण

नायक और नायिका में से किसी एक के मर जाने पर दूसरे को जो पीड़ा होती है वह 'करूण विप्रलंभ' की श्रेणी में आती है। मध्यकालीन लेखिकाओं में बाजबहादुर की प्रेयसी रूपमति बेगम के काव्य में हम करूण श्रृंगार की मर्मस्पर्शी झाँकी पाते हैं। मालवा के नवाब बाजबहादुर और रूपमति के मध्य घनिष्ठ प्रेम था लेकिन एक युद्ध में मालवा नरेश अकबर के सैनिकों द्वारा वीरगति को प्राप्त हो गए। उनकी मृत्यु की ख़बर सुनकर प्रेयसी रूपमति मृतप्राय सी हो गईं। मर्मांतक पीड़ा से ग्रसित कवयित्री रूपमति बेगम ने अपने प्रिय बाजबहादुर के वियोग में निम्नलिखित दोहा कहा है –

रूपमति दुखिया भई, बिना बहादुर बाज़।

[7] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 115
[8] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 01

सो अब जियरा तजत है, यहाँ नहीं कछु काज।[9]

उल्लेखनीय है कि ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक की लेखिकाओं के काव्य में वियोग श्रृंगार की उक्त चारों अवस्थाएं सहजता से प्राप्त होती हैं; इससे विदुषी सावित्री सिन्हा का यह तथ्य निराधार साबित होता है, जिसमें वे मध्यकालीन लेखिकाओं के शिल्पविधान को शास्त्रीय परिपाटी पर अति क्षीण और निर्बल बताती हैं। उनका कथन है कि, 'मध्यकालीन काव्य में इस प्रकार की प्रेमजन्य शारीरिक चेष्टाओं का वर्णन तो साधारण बात है, केवल स्त्री स्वभाव की सुलभ लज्जा के साथ उसका सरलता से सामंजस्य करने में कुछ विचित्रता का अनुभव होता है।[10] आलोच्य विदुषी को ये ध्यान रखना चाहिए कि दरबारी कालखंड में अधिकांश लेखिकाओं का संबंध महल के भीतरी भवनों या राज प्रासादों से रहा है न कि राज्यसभाओं में गायी जाने वाली विरूदावलियों से; इसलिए प्रेमजन्य शारीरिक चेष्टाओं का वर्णन कोई साधारण बात नहीं है प्रत्युत् ये मध्यकालीन लेखिकाओं की काव्यकला की सहज अभिव्यक्ति है।

ध्यातव्य है कि आलोच्य कालखंड की लेखिकाओं के काव्य में वियोग के उक्त प्रकारों के अतिरिक्त विप्रलंभ की वे दस दशाएँ भी प्राप्त होती हैं, जिनके आधार पर प्रिय और प्रेयसी का मन एक–दूसरे के लिए विकल हो उठता है। परस्पर बिछोह हो जाने पर उनके मन में एक–दूसरे के प्रति असीम प्रेम, चिंता, उद्वेग आदि सहज ही उमड़ आता है। वियोग की उन दस अवस्थाओं का वर्णन निम्नलिखित है –

अभिलाषा

वियोगावस्था में प्रिय मिलन की कामना या इच्छा करना अभिलाषा कहलाती है। ऐसी स्थिति में नायक या नायिका का मन एक–दूसरे से मिलने के लिए आकुल हो उठता है और इच्छा करता है कि उसका प्रिय या प्रेयसी उससे मिलने शीघ्र आए। मिलन की ऐसी मधुर और कोमल अभिलाषा हमें कवयित्री शेखरंगरेजिन के काव्य में दृष्टित होती है। शेख की गोपियों की तीव्र इच्छा है कि वे एक बार कान्ह की गलियों के फेरे अवश्य करें। उनके कथनानुसार उनका कठोर शरीर भले ही कहीं रहे किंतु उनका मन सदा ही गोकुल की गलियों में लगा रहता है। वे एक बार अवश्य कृष्ण की माखन लीला का हिस्सा हो जाना चाहती हैं। शेख की गोपियों की यह कोमल कल्पना देखिए –

निरखै निबाहैं तेई गोरी हैं कठोरी हम।
चोरी ही में चाहैं पतझारी केसे पात हैं।।
'सेख' कहि एक बार कान्हर की खोरी आयें।

[9] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248
[10] वही, पृष्ठ संख्या, 268

ठौर रहै मानस, कठोर सोई गात हैं।।[11]

चिंता

अपने प्रिय से मिलने की इच्छा करने के पश्चात् जब उससे संयोग नहीं हो पाता तब आश्रय के मन में अपने प्रिय के प्रति विभिन्न प्रकार की चिंताएं, आशंकाएं और अकुलाहट होने लगती है। उसे निरंतर ये भय घेरे रहता है कि उसका प्रिय सुरक्षित है अथवा नहीं; इसलिए आश्रय सदा अपने प्रिय से मिलन के नित नवीन मार्ग खोजने लगता है। मीराँबाई के यहाँ हमें उनकी यही चिंता दृष्टित होती है। उनके प्रिय नंदलाल आने की कहकर भी नहीं आए हैं। ऐसे में अपने प्रियतम के प्रति उनकी चिंता स्वाभाविक है। उदाहरण देखिए –

परम सनेही राम की नीत ओलूँरी आवै।
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिनु कछु न सुहावै।
आवण कह गये अजहूँ न आये, जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसन की आस रमैया, कब हरि दरस दिलावै।[12]

स्मरण

अपने प्रिय से न मिल पाने की स्थिति में मन स्वतः ही अपने प्रिय के संग व्यतीत किये गए क्षणों को स्मरण करता है। जोधपुर की कवयित्री बीराँ भी अपने प्रिय मुरलीधर के न आने की स्थिति में उसके साथ बिताए गए मधुर क्षणों को स्मरण कर विरहाग्नि में जल रही हैं। स्मृति की वियोग ज्वाला से तप्त उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए –

प्रीति की रीति कठिन भई सजनी करवत अंग कटाय रे।।
जब सुधि आवे स्याम सुन्दर की, बिन पावक जरि जाय रे।।[13]

गुणकथन

वियोगावस्था में अपने प्रिय के गुणों का वर्णन करना 'गुणकथन' कहलाता है। कवयित्री बीराँ की काव्यरचना के एक अन्य पद में वियोगग्रस्त बीराँ अपने प्रिय श्रीकृष्ण के गुणों का उल्लेख करते हुए उनके

[11] ज्योतिप्राद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 82–83
[12] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 116
[13] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 197

लिए चिट्ठी पत्री लिख रही हैं, ताकि उनके प्रियतम उनसे शीघ्रातिशीघ्र आकर मिलें। कवयित्री बीराँ का यह पद देखिए –

प्रीति लगाय जिन जाय रे साँवरिया, प्रीत लगाय जिन जाय रे।
प्रीतम को पतिया लिख पठाऊँ **रुचि रुचि** लिखी बनाय रे।।[14]

उल्लेखनीय है कि उक्त पंक्तियों में 'रुचि–रुचि' पदों का अर्थ प्रिय के वे गुण हैं, जो बीराँबाई को अधिक रूचिकर हैं और जिन्हें स्मरण कर लेखिका चिट्ठी–पत्री में लिख रही है।

उद्वेग

अपने प्रिय के वियोग में व्याकुल या धैर्यहीन हो जाने पर किसी विषय में किसी प्रकार भी चित्त का न लगना 'उद्वेग' की श्रेणी में आता है। इस अवस्था में प्रिय या प्रिया का मन सौंदर्य प्रसाधनों या विहारों में नहीं लगता अपितु वह निसिबासर अपने प्रियतम का ही ध्यान करता है। लेखिका रत्नावली का मन भी अपने प्रिय के बिना वस्त्र, आभूषण, भवन, किसी में भी नहीं रम रहा। अपने प्रिय पति के वियोग में उन्हें अपना जीवन भी भार रूप लग रहा है; इसलिए उनका ध्यान प्रतिक्षण अपने प्रिय के ख्यालों में ही लगा रहता है। उनके 'जी' की अकुलाहट से कंपित उनका यह पद देखिए –

असन बसन भूषन भवन, पिय बिन कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन छिन जिय अकुलाय।।[15]

प्रलाप

अपने प्रिय के वियोग में व्याकुल होकर निरर्थक बातें करना 'प्रलाप' की कोटि में आता है। मीराँबाई के काव्य में इस प्रकार के कई पद हैं जिसमें वे अपने जीवन संगी श्रीकृष्ण के लिए प्रलाप कर रही हैं। उनका 'राग आनन्द भैरव' का एक पद देखिए जिसमें वे वियोगावस्था से इतनी पीड़ित हो गई हैं कि कछुआ, मेंढक, मछली, काठ की लकड़ी का उदाहरण देकर अपने हृदय की वेदना को प्रकट कर रही हैं। यथा –

प्रभु बिन ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरि बिन ना सरै माई।।

[14] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 197
[15] वही, पृष्ठ संख्या, 281

कमठ दादुर बसत जल में, जल से उपजाई।
मीन जल से बाहर कीना, तुरत मर जाई।
काठ लकरी बन परी, काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभु डार आये, भसम हो जाई।
बन बन ढूँढ़त मैं फिरी, आली सुधि नहीं पाई।
एक बेर दरसन दीजै, सब कसर मिटि जाई।[16]

उन्माद

वियोगजनित व्यथा से व्यथित होकर विरही का विवेक को खो देना तथा सिर्री की भांति कार्य करना 'उन्माद' के अंतर्गत आता है। मध्यकालीन कवयित्रियों में यह स्थिति मीराँबाई की ग्वालिनों और लेखिका 'ताज़' की हो गई है। मीराँबाई की ग्वालिनें कृष्णप्रेम में इतनी छक गई हैं कि वे दूध–दही बेचने जब हाट–बाज़ार या किसी अन्य गाँव में जाती हैं तो दूध–दही का नाम बिसरकर 'हरि ल्यो हरि ल्यो' पुकारने लगती हैं। 'राग मारू' की संगीत लहरियों से सुसज्जित मीराँबाई का यह चित्ताकर्षक पद देखिए –

कोई स्याम मनोहर ल्योरी सिर धरे मटकिया डोलै।
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो हरिल्यो' बोलै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई विण मोलै।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालिन, औरहि औरे बोलै।[17]

कृष्णप्रेम में 'उन्मादिनी' दूसरी कवयित्री 'ताज़' है जिसने एक मुसलमान होते हुए भी रहीम और रसखान की भांति कृष्णोपासना की है। धर्मांतरण, पर्दा प्रथा, बाल विवाह और बहुविवाह के उस युग में किसी मुस्लिम 'महिला' द्वारा किसी हिंदू देवता की वंदना करना और उसे अपना 'दिलजानी' स्वीकार करना मृत्युदण्ड प्राप्त करने के समान कार्य था। 'ताज़' द्वारा लिखित वह उन्मादपरक कवित्त देखिए –

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी ही सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं निवाज़ हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान साडे गुनन गहूँगी मैं।।

[16] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 122
[17] वही, पृष्ठ संख्या, 148

श्यामला, सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूँगी मैं।
नंद के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै,
हूँ तो तुरकानी हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं।।[18]

जड़ता

विरह व्यथा की अधिकता से शरीर का चेष्टा रहित हो जाना 'जड़ता' के अंतर्गत आता है। अपने प्रिय के अभाव में पन्ना निवासिनी इंन्द्रामतिबाई का शरीर भी जड़ हो गया है। उनके शरीर के प्रत्येक अंग को विरह ने खा लिया है और ऐसा खाया है कि अब उसमें मांस, मज्जा, लहु कुछ भी शेष नहीं रह गया है। उनकी सांसों का आरोह–अवरोह भी अवरूद्ध सा हो गया है। ये सभी लक्षण वियोगावस्था में शरीर के जड़ हो जाने के हैं। कवयित्री इंन्द्रामतिबाई का विरहजनित यह दोहा देखिए, जिसने शरीर को 'जड़' कर दिया है –

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस।
न आवे अंदर–बाहर, या विधि सूकत सांस।।[19]

व्याधि

वियोगजनित पीड़ा के कारण शरीर का रोगग्रस्त होकर पीला पड़ जाना 'व्याधि' की श्रेणी में आता है। लेखिका शेख रंगरेजिन की नायिका अपने प्रिय कृष्ण के अभाव में 'व्याधि' युक्त हो गई है। उसने जिस क्षण से अपने नायक कृष्ण को देखा है उस क्षण के बाद ही उसे अपने प्रिय के दर्शन की ऐसी प्यास लगी कि उसकी शारीरिक भूख–प्यास समाप्त हो गई है। भोजन त्यागने की स्थिति में उसका शरीर पीला पड़ता जा रहा है और क्षण–प्रतिक्षण मरोड़ मार रहा है। प्रिय के अभाव में उसके शरीर में ऐसी विरहाग्नि धधक रही है कि उसकी अगन से स्वयं विरह जल रहा है और यह वियोग चक्र रूकने का नाम ही नहीं ले रहा है। शेख रंगरेजिन द्वारा रचित विरहदग्ध नायिका का वह कवित्त देखिए –

जोगी कैसे फेरनि बियोगी आवै बार बार,
जागी ह्वै है तो लगि वियोगी बिललातु है।
जा छिन ते निरखि किसोरी हरि लियो हेरि,

[18] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कविता–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 72
[19] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 83

ता छिन ते खरोई धरोई पियरातु है।।

सेख प्यारे अति हीं बिहाल होई हाय हाय,

पल पल अंग की मरोर मुरछातु है।

आन चाल होति तिहि तन प्यारी चलि चाहि,

बिरही जरनि ते बिरह जर्‌यो जातु है।।[20]

मरण

अपने प्रिय के अभाव में प्राण त्याग देना ही 'मरण' है परंतु यहाँ 'मरण' जैसी कष्टप्रद स्थिति का वर्णन भी इसी श्रेणी में आता है। ऐसी स्थिति में प्रिय के न रहने पर प्रिया मृतप्राय हो जाती है। करूण श्रृंगार का उक्त उदाहरण (रूपमति दुखिया भई, बिना बहादुर बाज़/सो अब जियरा तजत है, यहाँ नहीं कछु काज।[21]) इस स्थिति के लिए भी समीचीन है जिसमें मुगल सेना के द्वारा मारे जाने पर बाज़बहादुर की प्रेमिका रूपमति बेगम अपने प्राण त्याग देने की बात कह रही है। इस मानसिक अवस्था में एक नायिका वियोग की उपर्युक्त सभी दशाओं एवं प्रकारों से गुजर चुकी होती है और अंत में अपने प्रियवर के न रहने पर अत्यंत शोकाकुल होकर मृत्यु की बात कर रही होती हैं। रूपमति बेगम के काव्य में हम उनकी यही स्थिति पाते हैं।

श्रृंगार रस की उपर्युक्त आलोचना से यह प्रमाणित होता है कि व्याख्येय कालखंड में कई लेखिकाएँ हुई हैं जिन्होंने संयोग और वियोग के सजीव चित्र खींचे हैं। यह सही है कि उनमें विकास का वह चरम दिख नहीं पड़ता जो सूरदास के 'भ्रमरगीत' में दिख पड़ता है, किंतु अभी व्याख्येय स्त्री रचनाकारों के साहित्य की खोज प्रारम्भ हुई इसलिए ये कहना कि उन्होंने 'भ्रमरगीत' जैसा कोई काव्य नहीं रचा होगा जल्दबाज़ी होगी।

करूण रस

जब आश्रय के मन में आलंबन के प्रति घनघोर शोक उत्पन्न हो तो वहाँ करूण रस की उत्पत्ति माननी चाहिए। आदिकालीन निर्गुण भक्तों में हमें महाराष्ट्र की कवयित्री उमांबा के काव्य में कारूणिक बिम्ब प्राप्त होते हैं। समाज ने उमांबा को उनका पूज्य या प्रिय न होने की स्थिति में इतनी प्रताड़नाएं दी हैं कि वे

[20] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 80–81
[21] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248

कराह उठी हैं। उन्हें घर–घर घूमकर भिक्षा माँगकर भोजन प्राप्त होता है, लेकिन उन्हें ईश्वर जैसा दयालु कोई दृष्टित नहीं होता जो उमांबा की चिंता करे। वह कभी–कभी किसी–किसी चौखट पर पूरे–पूरे दिन पड़ी रहती हैं लेकिन यह निर्दयी संसार उन्हें दो जून तक की रोटी नहीं देता। ऐसी शोकजनित स्थिति में वह अपने पूज्य से अपनी स्थिति का संज्ञान लेने की प्रार्थना कर रही हैं। उनकी हृदय विदारक ये पंक्तियाँ देखिए –

नगर द्वार ही भिच्छा करो हो, बापुरे मोरी अवस्था लो।
जिहाँ जाबो तिहाँ आप सरिसा कोउ न करी मोरी चिन्ता लो।
हार चौहाटा पड़ रहूँ हो माँग पंच घर भिच्छा
बापुड लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिन्ता लो।[22]

उक्त पद्य में ईश्वर भक्ति उमांबा का आलंबन है और नगर, द्वार, भिक्षा पात्र, पंच घर, चौहाटा आदि वह स्थान व वस्तु हैं, जो कवयित्री के शोक को उद्दीप्त कर रही हैं। हारकर किसी चौहाटे पर पड़े रहना वह कायिक अनुभाव है, जो शोक को स्थायित्व प्रदान कर रहा है। मन में उत्पन्न ईश्वरीय प्रेम और उसका उन्माद संचारी भाव हैं, जो भक्तिन को अपनी भक्ति पर अड़े रहने के लिए प्रेरणा दे रहे हैं; अतः यहाँ पर करूण रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है।

<u>वात्सल्य रस</u>

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में वात्सल्य रस को रस की संज्ञा नहीं दी है; परंतु भक्तिकाल में सूरदास ने बालकृष्ण की ऐसी झाँकी उतारी हैं कि रस सिद्धांत के विवेचकों को भी वात्सल्य को रस स्वीकार करना पड़ा। इसका स्थायी भाव 'वत्सल' है और आश्रय वह है जिसके हृदय में अपने या किसी अन्य शिशु की अठखेलियों के प्रति वत्सल भाव उत्पन्न हो। शिशु की अठखेलियों, शरारतों और नित–नवीन खेल खेलने की मंशा को बढ़ाने वाले कारक उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आते हैं। बालमन के खेल और अठखेलियाँ देखकर मन में उत्पन्न होने वाली रोचकता और विस्मयकारी अनुभूति सात्विक अनुभाव हैं तथा हृदय में पल्लवित हर्ष, उल्लास, कोमल कल्पनाएँ आदि वे संचारी भाव हैं जो वात्सल्य रस को पुष्ट करते हैं।

मध्यकालीन लेखिकाओं में गंगाबाई, मीराँबाई, शेख रंगरेजिन और रसिकबिहारी बनीठनी जी को वात्सल्य रस की पुरोधा माना जा सकता है। इन तीनों ने हीं कृष्ण की बाल छवियों एवं उनकी बाल

[22] विनय मोहन शर्मा, हिंदी को मराठी संतो की देन, पृष्ठ संख्या, 85

कलाओं के मनोरम चित्र उकेरे हैं। आलोच्य कवयित्रियों ने कृष्णजन्म, उनकी काली जुल्फ़ें, यमुनातीरे से गोपियों के वस्त्र चुराने का उपक्रम, नंदलाल की वर्षगाँठ, बालकृष्ण द्वारा दूध–दही बेचने आईं गोपियों का आँचल पकड़ लेना, उनका मार्ग रोक लेना, कृष्ण की शिकायत हेतु दिन में बीसियों बार किसी गोपी का ब्रजनंदन के घर चक्कर लगाना आदि अनेक वात्सल्य पूरित वर्णन किये हैं। वात्सल्य से सुसज्जित शेखरंगरेजिन का यह कवित्त देखिए, जिसमें बालकृष्ण अपनी संगिनी मुरली के खो जाने पर एक गोपी के घर जाकर उससे मुरली मांगते हैं। नंदलाल को लगता है कि हो न हो मुरली इसी गोपी ने लुकाई है; लेकिन जब गोपी मुरली नहीं देती तो ब्रजेन्दु उन्हें लोक प्रचलित गारी देते हैं। इसपर गोपी दुखी होकर माता जशोदा से उनकी शिकायत करने पहुँचती है। उनका कहना है कि –

बीस बिधि आऊँ दिन बारीये न पाऊँ और,
याही काज वाही घर बाँसनि की बारी है।
नेकु फिरि ऐहैं कैहैं दै री दै जसोदा मोहिं,
मो पै हठि माँगैं बंसी और कहूँ डारी है।।
'सेख' कहै तुम सिखवो न कछु राम याहि,
भारी गरिहाइनु की सीखे लेतु गारी है।
संग लाइ भैया नेकु न्यारो न कन्हैया कीजै,
बलन बलैया लैकै मैया बलिहारी है।।[23]

प्रस्तुत कवित्त में कृष्ण आलंबन हैं और बालरस का पान करती गोपी आश्रय। कृष्ण का बारंबार गोपी से मुरली मांगना और न देने पर गारी देना वात्सल्य को उद्दीप्त करने वाले कारक हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण की शिकायत हेतु गोपी का दिन में बीसियों बार जशोदा के पास आना; गोपी का कायिक अनुभाव है जो दृष्टित हो रहा है। कृष्ण की बाललीलाओं के प्रति गोपी और जशोदा का हर्षित होना, बालरस के पान हेतु गोपी की उत्सुकता आदि वे संचारी भाव हैं जो कृष्ण के प्रति गोपी के मन में तेजी से आ, जा, रहे हैं। प्रस्तुत कवित्त में रस के सभी अंगों के उपस्थित होने से यहाँ वात्सल्य रस का परिपाक होना स्वाभविक बन पड़ा है।

वात्सल्य रस से परिपूरित कवयित्री रसिकबिहारी कृत एक अन्य उदाहरण देखिए जिसमें कान्ह रात्रि की नींद पूर्ण कर उनींदी आँखों को मलते हुए दृष्टित हो रहे हैं। वे अपने उलझे हुए बालों मे हाथ फेरकर

[23] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 79

उन्हें और उलझा रहे हैं। उनकी यह मुसकाती और अलसाती छवि कवयित्री के मन में वात्सल्य उत्पन्न कर रही है। गोकुल के कान्ह का यह वात्सल्यमयी 'राग तिताल' देखिए –

हो कान्ह जी राति रा उणींदा रंग राता।
निस रैं ध्यान ए मुँदी पलकैं आवैं, ललक मदन मद मांता।
अलक माहि अणवट प्यारी रौं, ल्याता थे उलझाता।
'रसिक बिहारी' लागौ छौ प्यारा, मुसक्याता अलसाता।।[24]

आलोच्य 'राग तिताल' कान्ह के प्रति जागृत वत्सलता स्थायी भाव है। कवयित्री रसिकबिहारी आश्रय हैं और बालकृष्ण आलंबन हैं। रात का उनींदापन, मुँदी पलकों के साथ आना, अलकों को उलझाना भावों की दीप्ति का कारण हैं। कृष्ण का अलसाते हुए मुसकाना सात्विक अनुभाव है और कान्ह को देखकर कवयित्री के मन में उत्पन्न हर्ष, लवणता, संतुष्टि संचारी भाव हैं। अतः प्रस्तुत पद्य में वात्सल्य रस के सभी अंगों के सम्मिलित होने से यहाँ वात्सल्य रस परिपुष्ट होता है।

वीर रस

'वीर रस' प्रधान रसों में से एक है। इसका देवता महेन्द्र व वर्ण सोने का बताया गया है। इसका स्थायीभाव 'उत्साह' है। किसी कार्य को करने के उमंगपूर्ण साहस को 'उत्साह' कहते हैं। सहृदय के हृदय में जब 'उत्साह' स्थायी भाव का विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ संयोग हो जाता है तब वह वीर रस का रूप ग्रहण कर लेता है। वीर रस चार प्रकार के होते हैं –युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर। आलोच्य कालखंड की लेखिकाओं ने केवल युद्धवीर का ही वर्णन किया है; शेष रसांग उनके काव्य में दृष्टित नहीं होते। उक्त लेखिकाओं में से पद्माचारिणी और ठकुरानी काकरेची जी के यहाँ हम वीर रस की झाँकी देखते हैं। पद्माचारिणी का यह पद्यांश देखिए, जिसमें उन्होंने युद्ध के वाद्ययंत्रो को बजाते हुए प्रयाण करती हुई सेना का चित्रण किया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सभी वीर मार्ग की बाधाओं को जल की भांति मथते हुए मुगलिया फौज की ओर लपके जा रहे हैं। उनका यह पद्यांश देखिए –

गयण गाज आवाज रणतूर पाखर गरर।
सालूले सिंधुओ राग माथै।
दुरित धनराज रौ वैर जल डोहतौ।
मलफियौ मुंगली फ़ोज माथै।[25]

[24] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 234, पद संख्या, 32

प्रस्तुत पद्यांश में मुगलिया फौज आलंबन है और राजपूताना के वीर योद्धा आश्रय। उनके मन में मुगलों से लड़ने का उत्साह भरा हुआ है। युद्धों के वाद्ययंत्र, उनकी गड़गड़ाहट, आकाश का गुंजायमान होना आदि वीरता को उद्दीप्त करने वाले कारक हैं। सैनिकों का एक साथ कदम ताल करना कायिक अनुभाव हैं। सैनिकों के मन मे उत्पन्न होने वाला गर्व, उत्सुकता, आवेग, उन्माद आदि वे व्यभिचारी भाव हैं, जो वीर रस को शनै–शनै पुष्ट कर रहे हैं। अतः यहाँ वीर रस की सिद्धि होती रही है।

वीभत्स रस

मध्यकालीन लेखिकाओं में चारण कवयित्री पद्मा के काव्य में हमें वीभत्स रस के दर्शन भी होते हैं। काव्य में यह एकमात्र ऐसा रस है जो मन में घृणा उत्पन्न करता है इसलिए इसका स्थायी भाव भी जुगुप्सा या घृणा है। इस रस का कार्यक्षेत्र आमतौर पर युद्धक्षेत्र माना जाता है क्योंकि युद्ध में ही मनुष्यता का अतिक्रमण कर ऐसे दृश्य उपस्थित होते हैं जिन्हें देखकर मनुष्य की मनुष्यता आश्चर्यचकित हो जाए। कवयित्री पद्मा के निम्न पद्यांश में भी हाथ में तलवार उठाए हुए एक वीर सैनिक है, जो शत्रु सेना के नरमुँड काटकर लहू से नहाया हुआ है। उसके पूरे शरीर पर लहू छितराया हुआ है। वीर चारिणी का यह पद्यांश देखिए –

धीरवै कंमध खगधार औ धूलियै।
अरि घडाँ जाँणती जेण आझै।।
सारदल सांमुहौ हंस पाबासरो।
झीलियो नारियण लोह जाझै।।[26]

समीक्ष्य पद्यांश में शत्रु सेना आलंबन है और राजपूत सैनिक आश्रय हैं। तेजी से चलती हुई तलवार, लहू में नहाया हुआ सैनिक जुगुप्सा को उद्दीप्त करने वाले भाव हैं। युद्ध में चलती हुई तलवार कायिक अनुभाव हैं। प्रस्तुत काव्यांश को पढ़कर मन में उत्पन्न निर्वेद और विषाद संचारी भाव की श्रेणी में आते हैं; अतः यहाँ वीभत्स रस का परिपाक हो रहा है।

शांत रस

शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है। यह अधिकांशतः निर्गुण या सगुण भक्ति में पाया जाता है। शांत रस में रहने वाले मानुष को संसार की अनित्यता और असारता का ज्ञान भली भांति होता है। उसका ध्यान

[25] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 37
[26] वही, पृष्ठ संख्या, 37

निरंतर परमात्मचिंतन में लगा रहता है। वह सदा सांसारिक प्रपंच की निंदा करता है और उनसे दूर रहना चाहता है। 657 वर्ष के कालखंड में शांत रस का परिपाक करने वाली लेखिकाओं में उमांबा, मुक्ताबाई, पार्वतीबाई, सहजोबाई, दयाबाई, साँईं, ब्रजदासी रानी बाँकावती और रत्नकुँवरि बीबी का नाम उल्लेखनीय है; परंतु इनमें भी उमांबा, दयाबाई और सहजोबाई उच्चकोटि की भक्त हो गईं हैं, जिन्होंने शांत रस की सफल अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है।

कवयित्री उमांबा का निम्नलिखित पद देखिए जिसमें वे परमसत्ता के साथ फाग खेलने की कल्पना कर रही हैं। उन्होंने अपने शरीर के पंच तत्वों का बाग तैयार किया है जिसमें वे ज्ञान के गुलाल से अपने पूज्य के साथ होरी खेलेंगी। ऐसा फाग हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। उमांबाई के अनोखे फाग का यह उदाहरण देखिए –

ऐसे फाग खेलत राम राय।
सुरत सुहागण सम्मुख आय।।
पंच तत को बन्यो है बाग।
जा में सामन्त सहेली रमत फाग।।
जहं राम झरोखे बैठे आय।
प्रेम पसारी प्यारी लगाय।।
जहाँ सब जन को बन्यो है, ज्ञान गुलाल लियो हाथ।
केसर गारो जाय।।[27]

उपर्युक्त पद में परमसत्ता आलंबन है और भक्त उमांबा आश्रय है। पंच तत्वों का बाग, ज्ञान का गुलाल, राम का झरोखा आदि क्रियाएं उद्दीपन विभाव हैं। संसार से दृष्टि हटाकर रामभक्ति में लगाना अनुभाव है तथा मन में जागृत श्रद्धा, हर्ष, प्रभु की स्मृति आदि संचारी भाव हैं जो शांत रस को पुष्ट कर रहे हैं।

प्रभु भक्ति में लीन और संसार के मिथ्याचार का घूँघट उघाड़ने वाली कवयित्री 'सहजोबाई की वाणी में सर्वत्र ही शांत रस की प्रधानता है।[28] उनका मानना है कि एक भक्त को इस संसार और रूपसज्जा से ध्यान हटाकर प्रभु भक्ति में लगाना चाहिए; क्योंकि सांसारिक कलह, कल्पना, दुख, सदा भक्त का ध्यान भंग करते रहते हैं। फिर ये नश्वर देह भी एक दिये की भांति है, जिसमें चार दिनों का तेल भरा हुआ है जो

[27] बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, पृष्ठ संख्या, 88
[28] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 198

ज्योति रूपी आत्मा को जाज्वल्यमान रखता है और जब ये तेल समाप्त हो जायेगा तब यह ज्योति भी बुझ जायेगी। शांत रस से परिपूरित सहजोबाई की काव्य पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं –

सहजो भज हरि नाम कूँ तजो जगत सूँ नेह लै।
अपना तो कोई है नहीं, अपनी सगी न देह।।
कलह कलप्ना दुख घना, सदा रहे मन भंग।
अकस भरे कूँ छोड़िये, सहजो जग बेढंग।।
झूठा नाता जगत का, झूठा है घर बास।
यह तन झूठा देख कर, सहजो भई उदास।।[29]

आलोच्य दोहों में हरि आलंबन है और सहजोबाई आश्रय। नश्वर देह, कलह, मिथ्या कल्पना, सांसारिक दुख आदि शांत रस को उद्दीप्त करने वाले कारक हैं। ध्यान मग्न होकर हरि भक्ति करना, सहजो का उदास होना अनुभाव हैं और मन में उत्पन्न होने वाला विराग, दीन भाव आदि संचारी भाव हैं जो शांत रस की पुष्टि कर रहे हैं।

कवयित्री दयाबाई के काव्य में भी हमें शांत रस का उल्लेख प्रमुखता से मिलता है। उन्होंने भी अपनी गुरूबहन सहजो की भांति संसार की निस्सारता, घोड़ा, हाथी, सोना रखने की मिथ्याचारिता और काल की प्रचंडता का चित्रण किया है। शांत रस से ओतप्रोत उनके कुछ दोहे देखिए –

'दया कुंवर' या जगत में नहीं आपना कोय।
स्वारथ–बंधी जीव है, राम नाम चित होय।।
जैसो मोती ओस को तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में 'दया' प्रभु उर धार।।
असु गज अरू कंचन 'दया' जोरे लाख करोर।
हाथ झाड़ रीते गये भयो काल को जोर।।
तीन लोक नौ खंड के लिये जीव सब हेर।
'दया' काल परचंड है मारै सब कूँ घेर।।[30]

[29] सहजोबाई, सहजप्रकाश, पृष्ठ संख्या, 19–30
[30] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 08–09

दयाबाई द्वारा रचित उपरोक्त दोहो में संसार आलंबन है और दयाबाई आश्रय हैं। संसार की निरर्थकता, घोड़ा, हाथी, सोना–चाँदी का एकत्रीकरण और काल की उग्रता शांत रस को उद्दीप्त करने वाले कारण हैं। राम नाम को चित्त में धरना अनुभाव हैं तथा मन में उत्पन्न होने वाला वैराग्य, विषाद आदि संचारी भाव हैं जो दयाबाई के काव्य में शांत रस की उपस्थिति को प्रबलता प्रदान करते हैं।

उल्लेखनीय है कि आलोच्य कालखंड की लेखिकाओं के काव्य में हमें संयोग श्रृंगार, वियोग श्रृंगार, करूण रस, वीर रस, वात्सल्य रस, वीभत्स रस और शांत रस का पुष्ट रूप लक्षित होता है। अतः यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि उनका साहित्य लेखन शास्त्रेत्तर ही नहीं अपितु शास्त्र के अंतर्गत रस सिद्धांत के प्रचलित प्रतिमानों पर खरा उतरने का भी भरसक प्रयास करता है।

बिंब–विधान

'बिंब' शब्द का शाब्दिक अर्थ है –'प्रतिमा'। 'मनुष्य के जीवन में बिंबविधान अथवा कल्पना का बड़ा महत्व है। प्रस्तुत परिवेश की संवेदनाओं और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की तथा कभी अस्तित्व न रखने, न घटनेवाली वस्तुओं और घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी रहती हैं। बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमा का पर्याय है।[31] बिंब को और अधिक स्पष्ट करते हुए 'एलीमेट्स ऑफ पोएट्री' के लेखक जेम्स आर क्रेजर ने लिखा है कि 'द सेंसरी अपील्स इन पोएट्री विच वी हैव बीन कंसीडरिंग आर यूजुअली रेफर्ड टू एज़ इमेज़िज, एन इमेज़ बींग अंडरस्टुड टू बी द मेंटल और इमेजिंड रीप्रेसेंटेशन ऑफ एनीथिंग नोट एक्च्ली प्रेजेंट टू द सेंसज़'[32] अर्थात बिम्ब किसी अप्रस्तुत वस्तु का मानसिक या काल्पनिक रूप है।

शास्त्रानुसार बिम्बों को दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है। एक उद्भव के आधार पर और दूसरा ज्ञानेंन्द्रियों के आधार पर। उद्भव के आधार पर बिंब दो प्रकार के होते हैं – स्मृतिजन्य और स्वरचित बिम्ब तथा ज्ञानेंन्द्रियों के आधार पर इसके पाँच प्रकार हैं –चक्षु बिम्ब, कर्ण बिम्ब, घ्राण बिम्ब, स्वाद बिम्ब और स्पर्श बिम्ब। चक्षु बिंबो की भी दो श्रेणियाँ होती हैं – गतिशील बिंब और स्थिर बिंब। गौरतलब है कि आलोच्य काल की लेखिकाओं ने अधिकांशतः ज्ञानेन्द्रिय बिंबों का ही प्रयोग किया है; लेकिन ठकुरानी काकरेची जी, ताज, दयाबाई, सुंदरिकुँवरिबाई, श्रीप्रतापबाला और पजनकुँवरि जी ने स्मृतिबिंबो का भी प्रयोग किया है। इन लेखिकाओं ने कहीं–कहीं ध्वनि और रंगों को प्रधान रखकर ध्वनिबिंब और रंगबिंब की भी

[31] धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश–1, पृष्ठ संख्या, 431

[32] भागीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या, 261 (*The sensory appeals in poetry which we have been considering are usually reffered to as images, an image being understood to be the mental or imagined representation of anything not actually present to the senses.*)

रचना की जो स्वरचित बिंब की श्रेणी में आते हैं। 657 वर्ष के वृहत्त कालखंड में लेखिकाओं ने जिस ढंग से बिंब निर्धारण किया है उसका विश्लेषण निम्नलिखित हैं –

चक्षु बिंब

चक्षु का अर्थ होता है 'आँखें' और 'चक्षु बिम्ब' से अभिप्राय उस 'प्रतिमा' से है जो सोचने के साथ–साथ आपके मस्तिष्क में एक आकार लेने लगे और उसकी रूपाकृति आपकी आँखों के आगे दृश्यमान होने लगे। उपर्युक्तानुसार चक्षु बिम्ब दो प्रकार के होते हैं – स्थिर बिंब और गतिशील बिंब। व्याख्येय युग की अधिकांश लेखिकाओं ने स्थिर दृश्य बिंब की कल्पना की है लेकिन कविरानी चौबे, छत्रकुँवरिबाई, सुंदरिकुँवरिबाई, श्रीप्रतापबाला और अलबेली अली के काव्य में हम गतिशील बिंबावली भी पाते हैं।

उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन कवयित्रियों ने नैतिक मूल्यों, विरहदग्ध नायिका और कृष्णभक्ति के संदर्भ में सर्वाधिक स्थिर बिंबों की कल्पना की है। उनके यहाँ युद्धनीति, राजनीति, सत्यनीति, गऊचारण, मुरली वादन, यमुना किनारे प्रतीक्षा करते और गोपियों के वस्त्र चुराते कृष्ण की कई चित्ताकर्षक छवियाँ हैं। साँई की यह राजनीतिक कुँडली देखिए जिसमें वे स्थिर बिंबों के द्वारा समकालीन राजनीति का भ्रष्ट चित्र उकेर रही हैं –

साईं घोड़े अछतही गदहन आयो राज।
कौआ लीजै हाथ मैं दूर कीजिए बाज।।
दूर कीजिए बाज राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिए कैद स्यार गजराज चढ़ायो।।
कह गिरिधर कविराय जहाँ यह चूकि बड़ाई।
तहाँ न कीजै भोर साँझ उठि चलिए साईं।।[33]

मध्यकालीन लेखिकाओं ने श्रृंगारिक परिस्थितियों के भी सजीव चित्र उकेरे हैं। उन्होंने नायिकाओं का नख–शिख वर्णन उस प्रकार तो नहीं किया जिस प्रकार रीतिकालीन लेखकों में देव, पद्माकर आदि ने किया है, लेकिन किसी नायिका की उनींदी आँखों का जितना जीवंत चित्रण शेख रंगरेजिन ने किया है उतना कहीं–कहीं ही प्राप्त होता है। रात के अलसाते नेत्रों का यह स्थिर बिम्ब देखिए –

रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सोहात हैं।

[33] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 07

तीखी तीखी कोरनि करोरे लेत काठे जिउ,

केते भये घायल औ केते तलफात हैं।।[34]

स्थिर चक्षु बिम्बों के अतिरिक्त आलोच्य काल की लेखिकाओं ने गतिशील चक्षु बिम्बों का प्रयोग भी अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है। उनके इस कला प्रयोग को देखकर न केवल कवयित्रियों की काव्यकला की श्रेष्ठता प्रकट होती है, अपितु ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई चलचित्र पाठक की आँखों के आगे से गुजर रहा हो। कृष्णभक्त कवयित्रियों द्वारा उद्धृत कृष्ण की कई छवियों में से एक छवि कृष्णप्रेम में उन्मत्त उन गोपियों की है जिन्होंने हाट बाज़ार में दूध–दही बेचने के स्थान पर कृष्णप्रेम में उन्मत्त होकर अपने सिरों से मटकियाँ उतारकर नीचे रख दी है जबकि कईयों की मटकियाँ नीचे गिर गई हैं। कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई द्वारा रचित वह मनोहर बिम्ब दृष्टव्य है –

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उघरी हैं कोऊ

सुध बिसरी हैं ते लगी हैं द्रुम डारि कै।

डगमग ह्वै कै भुजधारी गर द्वै के काहु

बैठि गयी कोऊ सीस मटकी उतारि कै।।

मैन सर पागी कोऊ घूमन हैं लागी कोऊ

मोती मणि भूषन उतारैं डारैं वारि कै।

ऐसी गति हेरि इन्हें ग्वार कहैं टेरि टेरि

मदन दुहाई जीति मदन मुरारि कै।।[35]

गतिशील बिम्ब का एक कोमलकांत उदाहरण हमें कवयित्री प्रेमसखी के काव्य में दृष्टित होता है। राम और लक्षमण फुलवारी में फूल चुन रहे हैं उन्हें देखकर कवयित्री आनंदविभोर हो रही है। उनके पैरों की लुनाई, कोमलाई, स्निग्ध शरीर और उनके चलने की शैली देखकर लेखिका आकर्षित हो रही है। रचनाकार का कोमल भावों से सुसज्जित यह छंद देखिए –

कौशल कुमार सुकुमार अति भारह ते,

आली घिर आई तिन्हें सोभा त्रिभुवन की।

फूल फुलबाई में चुनत दोऊ भाईप्रेम,

सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की।।

[34] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 79

[35] वही, पृष्ठ संख्या, 143

चरन लुनाई दृग देखे बन आई जिन,

जीती कोमलाई और ललाई पदुमन की।

चलत सुभाइ मेरौ हियरा डराई आय,

गड़ि मति जायं पांव पांखुरी सुमन की।।[36]

गतिशील बिम्बों की श्रेणी में एक पद झूला झूल रहीं गोपियों का भी है। कवयित्री सुंदरिकुँवरीबाई ने उनका ऐसा चित्रण किया है कि झूला झूलती हुई और पींग बढ़ाती हुई गोपियाँ आँखों के आगे दृश्यमान हो जाती हैं। सावन के माह का आनंद उठाती हुई गोपियाँ देख रही हैं कि उनके आँचल के पीछे से बादलों की काली घटाएँ उमड़ रही हैं जिन्हें देखकर झूला झूल रही नवयौवनाएँ हर्षित हो रही हैं। कवयित्री का यह आकर्षक कवित्तांश देखिए –

जित तित झूलैं सब गोपिका समूह झुंड

झमकि झकोरन की सोभा सरसावहीं।

पटुरी की डोरन हिलोरन द्रुमन मानौं,

अछुरि दै घटा भौंर ओट घन आवहीं।।[37]

उपरोक्त उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि विश्लेषित समय समूह में उपस्थित लेखिकाओं ने स्थिर और गतिशील चक्षु बिम्बों का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है। उन्होंने अपने बिम्बों में कृष्ण भक्ति, गोपियों की उन्मत्तता, नैंनों का मिलना, अलसाए हुए नेत्र, फूल चुनते नायक, रामभक्ति आदि सभी चित्ताकर्षक दृश्यों को अपनी लेखनी द्वारा बिम्बित किया है।

श्रव्य बिम्ब

साहित्य में कर्णबिम्बों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भावों की कोमल अभिव्यक्ति, उमंग और उत्साह पूर्ण शब्दावली, बाँसुरी की सुरलहरियाँ आदि दृश्यों को प्रकट करने के लिए रचनाकार इस बिम्ब का प्रयोग करता है। आलोच्य समय समूह की लेखिकाओं ने श्रव्य बिम्ब का उपयुक्त और यथास्थान प्रयोग किया है। आदिकालीन चारण कवयित्री झीमाचारिणी ने अपनी सखी उमादे की श्रृंगारिक भावनाओं की प्रस्तुति हेतु कर्ण बिम्ब का सुन्दर प्रयोग किया है।

[36] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 224

[37] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 144

झीमा के मन में अपनी सखी हेतु इतनी संवेदना है कि वे उमादे की सुख–दुखमय भावनाओं से प्रभावित होकर आसावरी राग गा रही हैं। ध्यातव्य है कि राग आसावरी वियोग श्रृंगार की एक रागिनी है, जिसे दिन के द्वितीय पहर में गाया जाता है। झीमा के मन में इस बात की प्रसन्नता है कि सात वर्षों के एक लंबे अंतराल के बाद उनके पति उसकी सखी उमादे से मिलने जा रहे हैं, परंतु इस बात का दुख भी है कि इस कोमल भाव को जागृत होने में सात वर्ष का लंबा समय लग गया है। उनके इस मिश्रित मनोभाव की अभिव्यक्ति झीमा के इस श्रव्य बिम्ब में होती है। यथा –

पगे बजाऊँ गूघरा, हाथ बजाऊँ तुंब।
ऊमा अचल मुलावियो, ज्यूँ सावन की लुंब।।२।।
आसावरी अलापियो, धिन झीमा घण जाण।
धिन आजूणे दीहने, मनावणे महि राण।।[38]

प्रस्तुत पद में घुँघरू, तुंब, स्वर लहरियाँ, राग असावरी श्रवण बिम्ब के मूलाधार हैं, जो कानों में उमादे की स्थिति का रस घोलते हैं।

मध्यकालीन काव्य में कर्ण बिम्बों का अधिकांश प्रयोग प्रयाण करती हुई सेना या शत्रुओं का संहार करती हुई सेना का चित्रण करते हुए हुआ है। भूषण कृत 'शिवराज भूषण', 'छत्रसाल दसक' ऐसे ही प्रबंध काव्य हैं; परंतु लेखिकाएँ भी इससे अछूती नहीं रही हैं। पद्ममाचारिणी, हरीजीरानी चावड़ा और सुंदरिकुँवरिबाई के काव्य में हमें घनघनाते श्रवण बिम्बों के दर्शन होते हैं। सुंदरिकुँवरि का निम्नलिखित पद देखिए जिसमें प्रयाण करती हुई चतुरंगी सेना द्वारा बजाए जा रहे नगाड़ों का नाद सुनकर शत्रुओं की स्त्रियाँ भयभीत हैं। सेना की सामूहिक कदमताल से आकाश में घोर नाद उत्पन्न हो गया है जिससे भयाक्रांत राव राजा अपना निवास स्थान छोड़कर इधर–उधर भाग रहे हैं। नाद सौंदर्य से परिपूर्ण कर्ण बिम्ब का यह उदाहरण देखिए

बाजत नगारे अरू गाजत गयन्द भारे,
भयमान अरी की नरीन गही डरी हैं।
दल परावार को अपार रव रह्यो छाय,
भाजैं राज राव उर उठैं धरधरी हैं।।[39]

[38] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 30–31
[39] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 147

घ्राण बिम्ब

ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक की लेखिकाओं के काव्य में 'घ्राण बिम्ब' का प्रयोग अल्पमात्रा में हुआ है। आलोच्य लेखिकाओं में मीराँबाई, शेख रंगरेजिन और गंगाबाई के काव्य में यह कहीं–कहीं प्राप्त हो जाता है। गंगाबाई द्वारा रचित घ्राण बिम्ब का यह उदाहरण देखिए जिसमें कृष्ण के जन्म पर सभी गोकुलवासी परस्पर बधाई देते हुए एक–दूसरे को 'हल्दी' और 'दही' लगा रहे हैं; यथा –

सब कोई नाचत करत बधाये।
नर नारी आपुस में ले ले हरद दही लपटाये।।[40]

व्याख्येय पंक्तियों में 'हल्दी' और 'दही' का नामोल्लेख होते ही पाठक की घ्राणेन्द्रियाँ सक्रिय हो उठती हैं और वह नामित पदार्थों की सुगंध का अनुभव करने लगता है।

घ्राण बिम्ब का एक अन्य उदाहरण गोकुल की उस पावन भूमि में पाया जाता है जहाँ मीराँबाई प्रीत के रंग में सराबोर हो कृष्ण के साथ होरी खेल रही हैं। कृष्ण संग होरी खेलने की ऋतु इतनी भारी है कि चोवा, चंदन, अगरजा और केसर के मिश्रण से गागर ही गागर भरी हुई हैं। उदाहरणार्थ –

होली खेल्याँ स्याम सँग रँग सूँ भरी री।।
उड़त गुलाल लाल बादला री रंग लाल,
पिचकाँ उड़ावाँ रंग–रंग री झरी री।
चोवा चंदन अगरजा म्हा, केसर णो गागर भरी री।।[41]

उल्लेखनीय है कि गुलाल, चोवा, चंदन, अगरजा और केसर की घ्राणता दूर से ही छाने लगती है। चूँकि मध्यकाल में बनावटी न होकर प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से रंग या गुलाल तैयार किया जाता था इसलिए उनकी गंध दूर तक आच्छादित रहा करती थी।

स्वाद बिम्ब

'स्वाद' का संबंध हमारी रसना से है। जब हम किसी स्वादिष्ट या आनंददायी खाद्य पद्धार्थ की कल्पना करते हैं तब हमारी रसना में सोये हुए स्वाद बिम्ब जागृत हो जाते हैं और हमारी रसना द्रव्यमान हो जाती है। गौरतलब है कि हिंदी साहित्य में स्वाद बिम्बों पर अधिक विचार नहीं किया गया और यही स्थिति कमोबेश समीक्ष्य काल की लेखिकाओं के लेखन में भी लक्षित होती है; परंतु इनके लेखन में दही बेचने जा

[40] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 161
[41] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 139

रही गोपियों और वर्षगाँठ के अवसर पर लड्डुओं द्वारा चौक पूजने का बिंबन अवश्य हुआ है। गंगाबाई की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए जिनमें बालकृष्ण दही बेचने आ रही ग्वालिनों का मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं और जब तक ग्वालिनें उन्हें दही नहीं चखाती तब तक वे उनका मार्ग नहीं छोड़ते। दही हेतु कृष्ण का बालहट देखिए –

लाल! तुम पकरी कैसी बान ?
जब ही हम आवत दधि बेचन तब ही रोकत आन।।

x x x x x

हंसि लाल गह्यो तब अंचरा, बदन दही जु चखाई।
श्री विट्ठल गिरधरन लाल ने खाइ के दियो लुटाई।।[42]

<u>स्पर्श बिम्ब</u>

समीक्ष्य काल की लेखिकाओं ने स्वाद बिम्ब की भांति स्पर्श बिम्बों पर भी अपनी गाढ़ी लेखनी अधिक नहीं फिराई है। सर्वविदित है कि हिंदी साहित्य के तथाकथित रीतिकाल में स्पर्श बिम्बों के अधिकाधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं, लेकिन प्रस्तुत लेखिकाओं के काव्य में उस प्रकार की समानधर्मिता नहीं है; क्योंकि समीक्ष्य लेखिकाओं ने रीतिकालीन पुरूष कवियों की भांति नायिकाओं के नख–शिख वर्णन में रूचि नहीं दिखाई है। फिर भी जहाँ आवश्यक बन पड़ा है वहाँ स्पर्श बिम्बों के उदाहरण पर्याप्त हैं। कवयित्री सुन्दरिकुँवरिबाई का निम्न काव्यांश देखिए जिसमें झीने पट के बाहर से नायक, नायिका के सलोने दृग देख लेता है और उन्हें छूना चाहता है। इसके उलट नायिका भी नायक के प्रति यही भाव रखती है। वायुमंडल में चलने वाली बयार से जैसे ही उसका घूँघट हिलता है वैसे ही वह नायक के अंग प्रत्यंगो को निहार लेती है। स्पर्श बिम्ब का यह श्रृंगारिक उदाहरण देखिए –

लोने दृग कोने पलकानन छुवत चलि
झीने पट देखि पिय दृग गति पंग है।
पौन के परस होत हलचल घूँघट ज्यों,
त्यों ही त्यों बिबस छकि साँवरे को अंग है।।[43]

[42] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 161
[43] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 145

उक्त उदाहरण के अतिरिक्त समीक्ष्य कवयित्रियों के यहाँ स्पर्श बिम्ब के वे उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें बालकृष्ण को गोद में खिलाया जा रहा है। उनमें अनुभूति की तीव्रता उतनी नहीं है जितनी उक्त श्रंगारिक कवितांश में; परंतु ममत्व का वह चरम अवश्य है जिसमें किसी स्त्री के शिशु न होने पर वह अपने शिशु को गोद में खिलाने के लिए आकुल हो उठती है। कवयित्री गंगाबाई द्वारा विरचित निम्न उदाहरण देखिए जिसमें अपने बालक को जन्म देने तथा गोद में खिलाने का प्रसंग उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। स्पर्श बिम्ब का यह काव्यांश दृष्टव्य है –

रानी जू सुख पायो सुत जाय
बड़े गोप वधून की रानी हंसि–हंसि लागत पाय।।
बैठी महरि गोद लिये ढोटा आछी सेज बिछाय।
बोलि लिये ब्रजराज सबनि मिलि यह सुख देखी आय।।
जेई जेई बदन बदी तुम हमसों ते सब देहु चुकाइ।
ताते लेहु चौगुनी हम पै कहत जाइ मुसकाइ।।[44]

स्मृति बिम्ब

बिम्ब विधान का एक चरण स्मृति बिम्ब भी है। इसके अंतर्गत भक्त, नायक या नायिका अपने पूज्य या प्रिय की स्मृतिकर उनके साथ बिताए गए क्षणों को याद करते हैं या अपना अभूतपूर्व अनुभव अपनी सखी–सहेली के साथ साझा करते हैं। आलोच्य लेखिकाओं में श्रीप्रतापबाला, मीराँबाई, सुन्दरिकुँवरिबाई, शेख रंगरेजिन, राड़जी रानी, बीराँ इत्यादि ने अपने लेखन में स्मृतिबिम्बों का प्रयोग किया है। बीराँ का निम्नांकित पद देखिए जिसमें एक कवयित्री का मन कृष्ण भक्ति में ऐसा लग गया है कि वह अब अपने पूज्य के बिना रह नहीं सकती। उनका वियोग कवयित्री को घड़ी–घड़ी सालता है और जैसे ही वह अपनी पीड़ा कम करने के लिए अपने पूज्य का ध्यान करती है वैसे ही विरहाग्नि और तीव्र हो जाती है। ऐसे में वह कृष्ण संग अपने दिनों की बात स्मृत करते हुए कहती है कि –

प्रीति की रीति कठिन भई सजनी करवत अंग कटाय रे।।
जब सुधि आवे स्याम सुंदर की, बिन पावक जरि जाय रे।
मिलन मिलन तुम कह गये मोहन अब क्यों देर लगाय रे।।
बीरां को तुम दरसन दीजौ, तब मोरे नैन सिराय रे।[45]

[44] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 159

एक अन्य स्थान पर रानी राड़धड़ी जी अपने मायके को स्मृत करते हुए उसे अपने ससुराल से श्रेष्ठ बताती हैं। दरअसल, एक दिन रानी जी अपने पति के साथ प्रकृति विहार कर रही थीं। राजा जी ने अपने राज्य की प्रशंसा में वहाँ के 'केतकी के फूल' और 'आबू' की खूब प्रशंसा की। विहार करके थक चुकी रानी को ये बातें रूचिकर नहीं लगीं। उन्होंने इसके प्रतिपक्ष में राड़धड़ा की ढाँगी और लूणी नदी की प्रशंसा करते हुए कहा कि हमारे राज्य में रेत की ढाँगी है जो अरब से लाया गया था। राज्य के लोग अपने घोड़ों को वहाँ के रेत में नहलाते हैं ताकि उनमें अरबी घोड़ों के गुण आ सकें। फिर पास में लूणी नदी है जिसके जल से राड़धरा की वन संपदा, प्रकृति, पर्यावरण सुवासित हैं। राड़जी रानी का यह स्मृति बिम्ब दृष्टव्य है –

धर ढाँगी आलम धनी, परगल लूणा पास।
लिखियो जिणने लाभसी, राड़धड़ा रो बास।।१।।[46]

उपर्युक्त बिम्ब विधान सिद्ध करता है कि भले ही कवयित्रियों की बिम्ब विधान क्षमता सूर, तुलसी जैसी न हो, परंतु इतनी मोथरी भी नहीं है कि उसकी उपेक्षा की जाए। उनके काव्य बिम्बों में भावों की गहराई के साथ–साथ कल्पना की दूरदर्शिता भी है। श्रृंगार की उन्मत्तता के साथ विरह की वेदना भी है। होरी की बयार के साथ वात्सल्य की छिटकियाँ भी हैं। अतः कहा जा सकता है की अपनी बिम्ब विधान क्षमता में कवयित्रियाँ कहीं बहुत पीछे दिखाई नहीं देतीं।

अलंकार विधान

अलंकार शब्द का सुप्रसिद्ध अर्थ है आभूषण या गहना। अर्थात् 'जिस प्रकार सुवर्ण आदि के आभूषणों से शरीर की शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार जिन उपकरणों से काव्य में शोभा आती है उन्हें अलंकार कहते हैं।[47] प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों पर विशेष चिंतन किया गया है। अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह ने अलंकारों को काव्य का एक आवश्यक आभूषक तत्व माना है। उनका कथन है कि, 'रूपक आदि अलंकार काव्य में इस प्रकार आवश्यक हैं, जिस प्रकार किसी नारी का सुन्दर मुख भी आभूषणों के बिना शोभित नहीं होता (रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुघोदितः। न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।।[48])। रीतिकालीन काव्यचिंतक केशवदास द्वारा रचित कृति 'रसिकप्रिया' में उद्धृत कथन 'भूषण बिनु न बिराजई कविता वनिता मित्त' भी भामह की उपरोक्त उक्ति से साम्यता रखता है। आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार माना है। उनका कथन है,

---

[45] उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या, 124
[46] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या, 79
[47] देवेन्द्रनाथ शर्मा, काव्य के तत्व, पृष्ठ संख्या, 56
[48] आचार्य भामह, काव्यालंकार, पृष्ठ संख्या, 1.13

'काव्यशोभाकारान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते[49]। डॉ. भागीरथ मिश्र ने अलंकारों को वाणी के आभूषण माना है। उनके कथनानुसार 'सामान्य बात अलंकारो से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से सम्पन्न हो जाती है; अतः अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति है। अलंकार कथन की ललित भंगिमा है। जिस उक्ति में कोई बाँकपन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है।[50] चूँकि अलंकारों का अतिरिक्त बोझ काव्य सौंन्दर्य को नष्ट कर देता है इसलिए इनका सहज और स्वाभाविक प्रयोग आवश्यक है। इसपर विचार करते हुए कवि सुमित्रानंदन पंत ने पल्लव की भूमिका में लिखा है कि, 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार व्यवहार, रीतिनीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्था के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हों कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों मे नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के ह्रास अश्रु स्वप्न पुलक, हाव–भाव हैं। जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावों की उदारता, शब्दों की कृष्ण जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम कि तरह 'इकसार' हो जाती है।[51]

उक्त विद्वानों के मतों से निष्कर्ष निकलता है कि अलंकार स्त्री के आभूषणों की भांति शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले कारक तो हैं, परंतु उनका प्रयोग सहज और स्वाभाविक होना चाहिए। उक्त विद्वानों के अनुसार अलंकारों के तीन प्रकार बताए गए हैं – शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार। सामान्यतः प्रथम दो का ही प्रयोग काव्य में अधिक होता है। ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक के कालखंड की कवयित्रियों के काव्य में भी अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। उनके यहाँ शब्दालंकारों में वृत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास, यमक, पुनरूक्तिप्रकाश, श्लेष और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अन्योक्ति, उदाहरण, असंगति, अतिश्योक्ति, विभावना आदि का प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का विश्लेषण निम्नलिखित है –

शब्दालंकार

जिस काव्य में शब्द प्रयोग के कारण कोई चमत्कार उत्पन्न होता है वहाँ शब्दालंकार माना जाता है। इनकी विशेषता यह है कि जिन शब्दों के कारण वह चमत्कार उत्पन्न हो रहा है यदि उन शब्दों को स्थांनांतरित कर दिया जाए तो वह शाब्दिक चमत्कार समाप्त हो जायेगा। मध्यकाल की लगभग सभी लेखिकाओं ने शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। इनमें सर्वप्रथम स्थान अनुप्रास अलंकार का माना जाता है

[49] आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, पृष्ठ संख्या, 179
[50] भागीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या, 156
[51] सुमित्रानंदन पंत, पल्लव (भूमिका), पृष्ठ संख्या, 31

जिसके पाँच भेद हैं – छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास और लाटानुप्रास। आलोच्य काल की कवयित्रियों के काव्य में वृत्यानुप्रास और अन्त्यानुप्रास का प्रयोग ही अधिक मिलता है, शेष अलंकार गौण रूप में आए हैं या कलाकुशलता की कोटि से च्युत हैं। बहरहाल, प्रस्तुत कवयित्रियों के काव्य में सुशोभित उपरिलिखित दो अलंकारों का विश्लेषण अग्रलिखित है –

वृत्यानुप्रास

जहाँ पर एक व्यंजन की एक बार या अनेक बार आवृत्ति हो अथवा अनेक व्यंजनों की एक बार या अनेक बार स्वरूपतः आवृत्ति हो तथा अनेक व्यंजनों की अनेक बार समान रूप से क्रमशः आवृत्ति हो वहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। समीक्ष्य लेखिकाओं में साँई और रत्नावली के काव्य में हम वृत्यानुप्रास की छटा पाते हैं। रत्नावली के काव्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

असन बसन भूषन भवन, पिय बिन कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन छिन जिय अकुलाय।।[52]

अथवा

साईं सब संसार में मतलब के व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार।।[53]

प्रस्तुत काव्यांशों में 'असन', 'बसन', 'भूषन', 'भवन', और 'छिन', 'छिन' में 'न' वर्ण की और 'साँई', 'सब', 'संसार' में 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने के कारण वृत्यानुप्रास अलंकार है।

अन्त्यानुप्रास

किसी छंद के अंतिम चरण में स्वर और व्यंजन वर्णों की समानता अन्त्यानुप्रास कहलाती है। यह कई प्रकार का होता है–सर्वान्त्य, समान्त्य–विषयांत्य, समान्त्य–विषमान्त्य तथा सम–विषमान्त्य। जिन छंदों के सभी चरणों में अन्त के वर्णों में समानता होती है वहाँ सर्वान्त्य अन्त्यानुप्रास होता है। आलोच्य काल की लगभग सभी लेखिकाओं के काव्य में इस अलंकार का प्रयोग सहजता से हुआ है। मीराँबाई, शेख रंगरेजिन, ताज और सुन्दरिकुँवरिबाई के काव्य मे अन्त्यानुप्रास के कई उदाहरण मिलते हैं। इस संदर्भ में मीराँ का निम्नांकित पद देखिए –

[52] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ,, पृष्ठ संख्या, 181
[53] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 114

मुरलिया बाजा जमणा **तीर**।।

मुरली मनोहर मण हर लीन्हो, चित्त धराँ णा **धीर**।

स्याम कन्हैया स्याम कमरियाँ स्याम जमण रो **नीर**।

धुण मुरली सुण सुध बुध बिसराँ, जर जर म्हारो **षरीर**।

मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, वेग हर्या म्हा **पीर**।।[54]

उक्त पद में प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'तीर', 'धीर', 'नीर', 'शरीर', 'पीर' जैसी समान वर्णमाला का प्रयोग का हुआ है, अतः यहाँ पर अन्त्यानुप्रास (सर्वान्त्यानुप्रास) अलंकार है। यह अलंकार मुरली की सुरव्यंजना की आकर्षण वृद्धि में सहायक सिद्ध हो रहा है।

यमक अलंकार

जहाँ पर एक शब्द की आवृत्ति एक से अधिक बार हो और प्रत्येक बार उसका अर्थ भिन्न–भिन्न हो वहाँ पर यमक अलंकार माना जाता है। इस प्रकार की शब्दावृत्ति दयाबाई और सहजोबाई के काव्य में परिलक्षित होती है। दयाबाई के काव्य में 'यमक' अलंकार का सहज प्रयोग देखिए –

बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।

'दया' दया गुरूदेव की, बिरला जानै कोय।।[55]

प्रस्तुत दोहे में 'दया' शब्द की आवृत्ति दो बार हुई है और दोनों ही बार वह भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम 'दया' लेखिका के नाम के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है और द्वितीय का अर्थ गुरू चरणदास द्वारा दयाबाई पर की जाने वाली 'दया' से है। इससे दोहे का अर्थ गुरूदेव द्वारा दिये जाने वाले गहरे ज्ञान के संदर्भ में प्रकट होता है।

पुनरूक्तिप्रकाश

जहाँ पर काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किसी शब्द कि आवृति एक से अधिक बार हो और प्रत्येक बार उसका अर्थ एक ही हो, वहाँ पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार मानना चाहिए। ऐसा किसी रचनाकार द्वारा तब किया जाता है जब वह किसी शब्द पर अधिक जोर डालना चाहता है। ये उस शब्द की महत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। मध्यकालीन काव्य में मीराँबाई और प्रवीणराय पातुरि के यहाँ इसका प्रयोग निर्द्वन्द्व भाव से हुआ है। कवयित्री प्रवीणराय का यह काव्यांतरण देखिए –

[54] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 144
[55] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 11

सैन कियो **उर** सों **उर** लाय कै पानी दुहूँ कुछ सम्पुट कीने।

कोटि **उपाय उपाय** सखीनी **भुराइ भुराइ** बिसासिनि दीने।।[56]

प्रस्तुत सवैया में 'उर उर', 'उपाय उपाय' और 'भुराइ भुराइ' में पुनरूक्ति प्रकाश है। कवयित्री ने वियोग की उत्कृष्टता और गहराई को व्यंजित करने के लिए इन शब्दों की पुनरूक्ति की है।

श्लेष अलंकार

जहाँ पर एक शब्द की आवृत्ति एक बार हो और उसके एक से अधिक अर्थ व्यंजित हों अथवा एक शब्द की आवृति एक से अधिक बार हो और प्रत्येक बार उसके अर्थ एक से अधिक हों वहाँ पर श्लेष अलंकार होता है। यह एक ऐसा अलंकार है जिसे हम उभयालंकार भी कह सकते हैं; क्योंकि काव्य में इसके प्रयोग से जहाँ शब्द के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है वहीं अर्थ की भी अभिवृद्धि होती है। मध्यकालीन कवयित्रियों में सहजोबाई और सुन्दरिकुँवरिबाई के यहाँ इसका सहज प्रयोग मिलता है। उदाहरण देखिए –

कहत भई करजोर निहोरन बात सयानिनि।

तजहु **मान** अब **मान**, **मान** मो राखहु मानिनि।।[57]

अथवा

सहजो गुरू **दीपक** दीयौ, रोम रोम उजियार।

तीन लोक दृष्टा भये, मिटयौ भरम अंधियार।।[58]

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में 'मान' शब्द की तीन बार आवृत्ति हुई है और प्रत्येक बार उसका अर्थ भिन्न है। प्रथम 'मान' का अर्थ है – नायिका का 'रूठ जाना', द्वितीय 'मान' का अर्थ है – 'कहना मान जाना' और तृतीय मान का अर्थ है –'मान सम्मान'। अतः लेखिका का नायिका को कथन है कि अपना मान त्यागकर नायक की पीड़ा दूर करो ताकि उसका मान सम्मान रह जाए। ध्यातव्य है कि यहाँ गौण रूप से यमक अलंकार भी उपस्थित है।

दूसरे उदाहरण में 'दीपक' शब्द श्लेषात्मक है जिसके दो अर्थ हैं – दीया और ज्ञान। अर्थात् सहजोबाई के गुरूदेव ने उन्हें ज्ञान का दीपक दिया जिससे वे दूरदृष्टा हो गई हैं और उनका भ्रमपूर्ण अंधकार दूर हो गया है।

---

[56] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 97

[57] वही, पृष्ठ संख्या, 141

[58] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 12

अर्थालंकार

जहाँ पर काव्य में अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न हो वहाँ अर्थालंकार माना जाता है। अर्थालंकारपूर्ण काव्य में शब्द की इतनी महत्ता नहीं होती जितनी उससे व्यंजित होने वाले 'अर्थ' की; क्योंकि वही चमत्कार का मूलाधार है। अर्थालंकार की संख्या शब्दालंकारों से कई गुना अधिक है। व्याख्येय काल की लेखिकाओ ने कई प्रकार के अर्थालंकारों का प्रयोग किया है जिनका नामोल्लेख ऊपर हो चुका है। उनका विश्लेषण अग्रलिखित है –

उपमा अंलकार

जहाँ उपमेय में उपमान का आरोपण किया जाए या किसी वस्तु के रूप, गुण संबंधी विशेषता स्पष्ट करने के लिए दूसरी प्रचलित वस्तु से उसकी समानता बताई जाए वहाँ उपमा अलंकार होता है। हिंदी की कवयित्रियों में रत्नावली, छत्रकुँवरिबाई और कविरानी चौबे के यहाँ इसका बहुत प्रयोग हुआ है। उपमा अलंकार से सुसज्जित रत्नावली का यह उदाहरण देखिए –

भल इकलो रहिबो रतन, भलो न खल सहवास।

जिमि तरू दीमक संग लहै, आपन रूप बिनास।।[59]

उक्त काव्यांश में खल वृत्ति के मानव की समानता 'दीमक' से की गई है और बताया गया है कि जिस प्रकार किसी पेड़ पर लगी दीमक पेड़ को भीतर से खोखला कर देती है उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति की संगति शिष्ट मनुष्य की शिष्टता को खोखला कर देती है; अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

ब्रजदासी रानी बाँकावतीकृत उपमा अलंकार का एक और उदाहरण देखिए जिसमें वे प्रभु की सत्यता की वंदना करते हए दृश्य जगत को मिथ्या बता रही हैं। उनकी स्वीकृति है कि ये संसार रेगिस्तान में चमक रही रेत की भांति है जो दिखता तो जल के समान है परंतु जिसकी सत्यता शून्य है; यथा –

अरू साँचो सो देत दिषाई। सो सतिता प्रभुही की छाई।।

जैसे रेत चमक मृग देखैं। जल की भ्रम मन माहि सपेषै।।[60]

प्रस्तुत पद में संसार की समानता चमकीली रेत के साथ करने के कारण उपमा अलंकार की उत्पत्ति स्वाभाविक बन पड़ी है। अतः यहाँ उपमा अलंकार परिपुष्ट होता है।

---

[59] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 284

[60] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या, 96

रूपक अलंकार

जहाँ पर उपमेय में उपमान का अभेद आरोप किया जाए वहाँ पर रूपक अलंकार होता है। व्याख्येय काव्य में इसका प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। कवयित्री रत्नावली ने अन्य अलंकारो की भांति रूपक अलंकार पर भी अपनी कलम फेरी है। उनके काव्य में उपस्थित रूपक अलंकार के उदाहरण देखिए –

रतनप्रेम डंडी तुला, पला जुरे इकसार।
एक बार पीड़ा सहै, एक गेह संभार।।
पांच तुरंग तन रथ जुरे, चपल कुपथ लै जात।
रतनावलि मन सारिथिहिं, रोकि सके उत्पात।।[61]

उल्लेख्य उदाहरणों में चारों ओर रूपक अलंकार की छटा प्रतीत होती है। इनमें 'प्रेम पर रतन का', 'हृदय–बुद्धि पर दोनों पलड़ों का', 'शरीर पर रथ का', 'पँच तत्वों पर पाँच अश्वों का', 'मन पर सारथी का' अभेद आरोपण किया गया है जिससे यह अर्थ व्यंजित होता है कि पँचतत्व रूपी पाँच तुरंग मनुष्य को कुपथ पर ले जाते हैं, लेकिन मन रूपी सारथी अपने सच्चे ज्ञान से उसे सद्मार्ग पर ले आता है; अतः यहाँ रूपक अलंकार पुष्ट होता है।

विरोधाभास

दो वस्तुओं में वस्तुतः विरोध न रहने पर भी विरोध की प्रतीति विरोधाभास अलंकार कहलाती है। हिंदी साहित्य में सहजोबाई और दयाबाई ने विरोधाभास अलंकारो का रमणीय प्रयोग किया है। सहजोबाई का यह दोहा देखिए –

नाम नहीं अरू नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि भूप।।[62]

उक्त दोहे में निर्गुण ईश्वर की कल्पना करते हुए सहजो ने ऐसा विरोधाभास प्रकट किया है जिससे पाठक अचंभित हो सकता है। उनकी दृष्टि में हरि का कोई नाम नहीं है लेकिन सभी नाम उसी के हैं, उसका कोई रूप नहीं है परंतु सभी रूप उसी के हैं; फिर अंत में बतलाती है कि सर्वस्व ब्रह्म है।

[61] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 282
[62] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 41

उत्प्रेक्षा अलंकार

उत्प्रेक्षा शब्द की व्युत्पत्ति 'उत् + प्र + ईक्षा' के संयोग से हुई है जिसका अर्थ होता है, प्रकृष्ट रूप से देखना। अन्य शब्दों में कहें तो जहाँ पर उपमेय में उपमान की संभावना प्रकट की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। समीक्ष्य लेखिकाओं में रत्नावली, प्रवीणराय और शेख रंगरेजिन ने अपने काव्य में इसका सफल प्रयोग किया है। रत्नावली द्वारा रचित उत्प्रेक्षा की निम्नांकित छटा दृष्टव्य है –

रतनावलि उपभोग सों होत विषय नहिं शान्त।
ज्यों ज्यों हवि में हो अनल त्यों त्यों बढ़त नितान्त।।[63]

उक्त पंक्तियों में विषय वासनाओं की तुलना अग्निकुंड से की गई है। संभावना व्यक्त की गई है कि जिस प्रकार हवन कुँड में समिधा पर समिधा डालने से कुँड की अग्नि बढ़ती जाती है उसी प्रकार विषय वासनाओं का निरंतर उपभोग करने से उसके प्रति लालसा और बढ़ती जाती है। अतः सांसारिक विषयों में हवन कुंड की संभावना जतलाने पर यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग स्पष्ट है।

अन्योक्ति

जहाँ पर अप्रस्तुत (उपमान) के माध्यम से प्रस्तुत की व्यंजना की जाए वहाँ पर अन्योक्ति अलंकार होता है। मध्यकालीन लेखिकाओं में सहजोबाई, दयाबाई और खगनियाँ के काव्य में इस अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग दीख पड़ता है, जो उनके कला कौशल को पुष्ट करता है। खगनियाँ की एक अन्योक्ति देखिए, जो पहेली में संबद्ध होकर आई है –

चारि पाँव बाँधे ते मोटि। अपने दल माँ सबते छोटि।।
दुखी सुखी सब के घर रहै। बासू केरि खगनियाँ कहै।।
(ज़नानी चोली)

प्रस्तुत पहेली में चार डोरियों, दल में सबसे छोटी होने और दुख–सुख सब वहन करने की अर्थकला के माध्यम से ज़नानी चोली की बात की गई है; अतः यहाँ पर अन्योक्ति अलंकार मानना चाहिए।

[63] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 283

उदाहरण

जहाँ पर रचनाकार अपनी बात कहने के लिए इतिहास, परंपरा या संस्कृति से उदाहरण ग्रहण करता है वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। कवयित्री पद्माचारिणी ने अपने काव्य में 'सती पुहपा' का उदाहरण प्रस्तुत कर इस अलंकार का निर्वाह किया है। उल्लेख्य है कि सती पुहुपा मारवाड़ के किसी किले में महारानी थी जिसे अपने पति के वीरगति को प्राप्त होने पर सती होना पड़ा था। बहरहाल, उदाहरण अलंकार का पद्यांश देखिए –

सती पुहपाँ अनै अछर अग्र सिवाणै।
जाइ नह नाम संसार जमीयो।।
हरि सिहर ही चतो हंस अविहड हरो।
कवध नारायणो सरगि क्रमियौ।।[64]

असंगति

जहाँ पर कारण और कार्य की संगति नही होती वहाँ पर असंगति अलंकार होता है। कवयित्री शेख रंगरेजिन ने इसका प्रयोग भक्ति के संदर्भ में किया है। उनकी उक्ति है कि ईश्वर के यहाँ चींटी की चिंघाड़ पहले पहुँचती है और हाथी की हुँकार बाद में पहुँचती है। भक्ति के संदर्भ में यह सत्य सिद्ध हो सकता है, परंतु यथार्थ निरूपण में हाथी और चींटी की ध्वनि में कोई संगत दीख नहीं पड़ती; यथा –

पैंड़ों सम सूधो बड़ों कठिन किंवार द्वार
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।

x x x x x
हाथी को हँकार पल पाछे पहुँचन पावे
चीटीं को चिंघार पहिले ही पहुँचति है।।

अतिश्योक्ति

जहाँ पर गुण न होने की स्थिति में भी उपमेय को बहुत बढ़ा चढ़ाकर बताया जाता है वहाँ पर अतिश्योक्ति अलंकार होता है। कवयित्री ताज़ और सुन्दरिकुँवरिबाई के काव्य में कुछेक स्थानों पर इसका

[64] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 37

प्रयोग हुआ है; परंतु वहाँ भी ये भाव व्यंजना को पुष्ट करने में सहायक हुआ है। करौली गाँव की कवयित्री ताज़ और सुंदरिकुँवरिबाई का यह अतिश्योक्ति पूर्ण कवितांश देखिए –

राधे की चटक देखे अँखिया अटक रहीं,

मीन को मटक नाहिं साजत वा दिन की।।[65]

अथवा

जाके सब आधीन सुतो आधीनौ तेरे।

जिहिं मुख लखि ब्रज जियत वहै तो मुख रूख हेरे।।[66]

उल्लेखनीय है कि प्रथम कवितांश में सुन्दर देह वाली मछली को राधा की सुन्दरता के आगे गौण बताया गया है, जबकि यह सर्वस्वीकृत है कि किसी मनुष्य की अपेक्षा मछली की मटक चित्ताकर्षक और मनोहर होती है। द्वितीय कवितांश में अतिश्योक्ति है कि जिस कृष्ण के मुख को देखकर ब्रजवासी अपना जीवन जीते हैं वह कृष्ण राधा के अधीन हो गए हैं। राधा के संदर्भ में यह वर्णन अतिश्योक्ति पूर्ण है।

विभावना

जहाँ पर कारण के बिना कार्य की प्रतीति हो वहाँ विभावना अलंकार होता है। कवयित्री बीराँ ने विरह की गहराईयों को लक्षित करने के लिए विभावना का सफल प्रयोग किया है। यथा –

प्रीति की रीति कठिन भई सजनी करवत अंग कटाय रे।

जब सुधि आवे स्याम सुंदर की, बिन पावक जरि जाय रे।।[67]

व्याख्येय अलंकार में कवयित्री का बिना अग्नि के ही जलना, बिन कारण के कार्य की प्रतीति कराता है, जो विभावना की पुष्टि करता है।

मानवीकरण

जब रचनाकार किसी वस्तु, स्थान, समय इत्यादि के साथ मानवीयता का व्यवहार करता है या उसे मानव के रूप में देखता है तब वहाँ मानवीकरण अलंकार समझना चाहिए। कवयित्री ने काल के संदर्भ में इसका प्रयोग किया है। उन्होंने काल को बहुत बड़े पेट वाला बताया है जिसमें एक दिन

[65] ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री कवि कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 73
[66] वही, पृष्ठ संख्या, 141–142
[67] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 197

राजा–रानी–छत्रपति सबको समा जाना है। ध्यातव्य है कि पेट मनुष्यों का होता है काल का नहीं; अतः यहाँ मानवीकरण अलंकार है। यथा –

बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा रानी छत्रपति, सब को लीले जाय।।[68]

गौरतलब है कि आलोच्यकाल की लेखिकाओं द्वारा प्रयुक्त अलंकारों की संख्या उपरोक्त वर्णित अलंकारों से कुछ अधिक है; जैसे, उन्होंने 'उल्लेख', 'वीप्सा', 'दृष्टांत', 'अर्थान्तरन्यास' आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है, परंतु यहाँ सभी का उल्लेख कर पाना विषयांतर प्रतीत होता है। बहरहाल, उपरोक्त अलंकारों से सिद्ध होता है, व्याख्येय कवयित्रियाँ न केवल काव्यशास्त्र की परिपाटी से परिचित थीं; अपितु उन्होंने प्रयुक्त अलंकारों का प्रयोग बड़ी कुशलता और सहजता से किया है।

छंद विधान

'छंद शब्द 'चद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है आह्लादित करना; तात्पर्य कि वह रचना–विधान जिससे आह्लाद हो। यह आह्लाद वर्ण या मात्रा की नियमित संख्या के विन्यास से उत्पन्न होता है।[69] छंद में मात्राओं की गणना स्वरों के आधार पर होती है। ये स्वर दो प्रकार के होते हैं –ह्रस्व और दीर्घ। ह्रस्व स्वर –'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ' तथा दीर्घ स्वर – 'आ', 'ई', 'ऊ', 'ॠ', 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ', के आधार पर गिने जाते हैं। आलोच्य काल की लेखिकाओं ने अपने काव्य में कई ऐसे मात्रिक छंदो का प्रयोग किया है जो आह्लाद उत्पन्न करते हैं। उन्होंने अपने काव्य में दोहा छंद, सोरठा छंद, सवैया छंद, छप्पय छंद, कुंडलियाँ छंद, कवित्त छंद, चौपाई छंद और पत्रिका जैसे छंदो का प्रयोग किया है; जो आह्लाद उत्पन्न करते हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त छंदो का आह्लादमय विश्लेषण निम्नांकित है –

दोहा छंद

दोहा एक अर्द्धसम मात्रिक छंद है। यह कुल 48 मात्राओं का होता है। इसके पहले और तीसरे चरण में 13–13 तथा दूसरे और चौथे चरण में 11–11 मात्राएं होती हैं। दूसरी और चौथी पंक्तियों के अंत में तुक–साम्य होता है और अंतिम अक्षर लघु होता है। प्रस्तुत कालखंड में झीमाचारिणी, रत्नावली, चंपादेरानी, रूपमति बेगम, इन्द्रामतिबाई, ठकुरानी काकरेचीजी, छत्रकुँवरिबाई, दयाबाई, सहजोबाई आदि ने दोहा छंद का सफल प्रयोग किया है। सहजोबाई द्वारा रचित दोहा छंद का यह उदाहरण देखिए –

[68] दयाबाई, दयाबाई की बाणी, पृष्ठ संख्या. 09
[69] आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, काव्य के तत्व, पृष्ठ संख्या, 139

गुरू अज्ञा दृढ़ करि गहै, गुरू मत सहजो **चाल**।

रोम रोम गुरू को रटै, सो सिष होय नि**हाल**।।[70]

प्रस्तुत छंद की प्रत्येक पंक्ति में 24–24 मात्राएँ हैं और 13–11 के बीच यति है। दूसरी और चौथी पंक्ति में न केवल तुक साम्य (चाल–निहाल) है, अपितु उसका अंतिम अक्षर लघु है; अतः यह दोहा छंद है।

सोरठा छंद

सोरठा भी दोहे की भांति एक अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसमें भी 48 मात्राएँ होती हैं। अंतर केवल इतना है कि इसमें मात्राओं का क्रम दोहे से उलटा होता है; अर्थात दोहा उलट देने से सोरठा बन जाता है। इसमें पहली और तीसरी पंक्ति में 11–11 तथा दूसरी और चौथी में 13–13 मात्राएँ होती हैं। इसकी पहली और तीसरी पंक्तियों के अंत में तुक साम्य होता है और दूसरी–चौथी पंक्ति के अंत में तुक साम्य जरूरी नहीं। विषयगत लेखिकाओं में मीराँबाई, रत्नावली और रत्नकुँवरि बीबी ने इसका कुशल प्रयोग किया है। रचनाकार रत्नकुँवरि बीबी का यह सोरठा छंद देखिए –

काशी नाम **सुठाम**। धाम सदा शिव को सुखद।।

तीरथ परम **ललाम**। सुभग मुक्ति बरदान छम।।[71]

प्रस्तुत छंद की प्रत्येक पंक्ति में 24–24 मात्राएँ है और 11–13 के बीच पूर्ण विराम है। इस छंद की पहली और तीसरी पंक्ति में तुक साम्य (सुठाम–ललाम) है। अतः यह सोरठा छंद है।

चौपाई छंद

'चौपाई' एक सम मात्रिक छंद है। इसके चार चरण होते हैं और चारों चरणों में समान रूप से 16–16 मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरण के अंत में या तो दो लघु मात्राएँ होती हैं या दो गुरू मात्राएँ होती हैं; साथ ही प्रत्येक अर्द्धाली में तुकांतता होती है। हिंदी साहित्य की कवयित्रियों में दयाबाई, सहजोबाई, ब्रजरानी बाँकावती और प्रतापकुँवरिबाई ने इस भक्तिमय छंद का प्रयोग किया है। कवयित्री प्रतापकुँवरिबाई की यह चौपाई देखिए –

बायें अंग जानकी **माता**। दरस करत हरष भयौ **गाता**।।

दोनूँ हाथ सीस मम **दीनें**। बोले बचन कृपा रस **भीने**।।[72]

---

[70] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 08

[71] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या, 74

प्रस्तुत छंद के चार चरण हैं और चारों में 16–16 मात्राएँ हैं तथा प्रत्येक चरण के अंत में दो गुरू हैं और साथ ही प्रत्येक अर्द्धाली में तुकांतता विद्यमान है; अतः यहा चौपाई छंद की पुष्टि होती हैं।

छप्पय छंद

छप्पय एक मिश्रित छंद है जो रोला और उल्लाला के मेल से बनता है। इसमें छः पंक्तियाँ होती हैं। पहली चार पंक्तियाँ रोला की होती हैं, जिसमें प्रत्येक में 24–24 मात्राएँ होती हैं और अंतिम दो में उल्लाला की चारों पंक्तियाँ रखी जाती हैं, जिसमें प्रत्येक में 28–28 मात्राएँ होती हैं और 15–13 के मध्य पूर्ण विराम होता है। छप्पय छंद की हर दो पंक्तियों के अन्त में तुक साम्य होता है। हिंदी साहित्य में इसका प्रयोग प्रवीणराय पातुरि और प्रतापकुँवरि के अतिरिक्त अन्यत्र देखने को नहीं मिलता; परंतु उल्लिखित कवयित्रियों ने छप्पय छंद का निर्वाह उचित प्रकार से नहीं किया है; यथा –

कमल कोक श्रीफलरू मंजीर। कलधौत कलश हर।।
उच्च मिलन अति कठिन। दमक बहु स्वल्प नीलधर।।
सरवन शरवन हेम। मेरू कैलास प्रकासन।।
निशि बासर तरूवरहिं। काँस कुन्दन दृढ़ आसन।।
इमि कहि प्रवीन जल थल अपक। अबिध मंजित तिय गौरि संग।।
कलि खुलित उरज उलटे सलिल। इंदु सीस इमि उरज ढंग।।[73]

प्रस्तुत छप्पय में प्रथम चार पंक्तियों की मात्राएँ 24–24 के क्रम में नहीं है, परंतु उल्लाला की अंतिम दो पंक्तियों में 15–13 का क्रम विद्यमान है। उक्त छंद में रोला और उल्लाला का सही संयोजन न बैठ पाने के कारण यहाँ छप्पय छंद नहीं है।

कुंडलियाँ छंद

कुंडलियाँ भी 6 पंक्तियों का एक मिश्रित छंद है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में 24–24 मात्राएँ होती हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसकी प्रथम दो पंक्तियों में 'दोहा छंद' होता है और बाद की चार पंक्तियों में रोला छंद होता है। इसके आदि और अंत का शब्द एक सा होता है। रोला के प्रथम चरण के आरंभ में दोहे के चौथे पद की आवृत्ति होती है और दो पंक्तियों के योग में तुकांतता होती है। आलोच्य लेखिकाओं में

---

[72] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 48
[73] वही, पृष्ठ संख्या, 84

सहजोबाई, अलबेली अली और साँई ने इस छंद का उचित निर्वाह किया है। अलबेली अली द्वारा प्रयुक्त कुंडली छंद का यह उदाहरण देखिए –

ब्रजनागरि चूड़ामनि, सुख सागर रस रास।
राखौ निज पद पिंजरे, मम मन हंस हुलास।।
x x x x x
मम मन हंस हुलास, बढ़े दिन दिन अतिभारी।
रहै सदा चित चाक, लखै ज्यों चातक वारी।।
कामी के मन काम, दाम ज्यों रंकहि भावै।
नवल कुंवर पद प्रीति, सु अलबेली अलि पावै।।[74]

आलोच्य छंद में प्रथम दो पंक्तियाँ दोहा छंद की हैं, जिसकी प्रत्येक पंक्ति में 24–24 मात्राएँ है तथा बाद की चार पंक्तियाँ रोला छंद की हैं और उसकी प्रत्येक पंक्ति में भी 24–24 मात्राएँ हैं। अन्तर यह है कि जहाँ दोहे में 13–11 मात्राओं का क्रम है, वहीं रोला में 11–13 का क्रम है; अतः यहाँ कुँडली छंद की पुष्टि होती है।

कवित्त छंद

कवित्त या घनाक्षरी एक समवर्ण छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं। अंतिम वर्ण गुरू होता है। प्राय 8 वें या 16 वें अक्षर पर यति होती है। चरणांत में प्रायः तुकांतता होती है। हिंदी साहित्य में ताज़, शेख रंगरेजिन, प्रवीणराय और बीराँ के काव्य में इसका उचित निर्वाह हुआ है। छंदों के संबंध में ताज की कविता की प्रशंसा करते हुए विदुषी सावित्री सिन्हा ने लिखा है कि, 'ताज़ ने कृष्ण काव्य के लेखकों की चिर परिचित पद शैली का अनुसरण न करके कवित्त तथा सवैया शैली को अपनाया है...छंदों के बन्धन में वे पूर्णतः सफल रही हैं।[75] इसी प्रकार ताज़ की छंद कला की प्रशंसा करते हुए पंडित गिरिजादत्त शुक्ल और ब्रजभूषण शुक्ल ने लिखा है कि 'आलम की पगड़ी में दोहे वाले कागज़ के टुकड़े का पड़ा रह जाना भूल हो सकती है, किंतु शेख का उत्तर देना तो सुनिश्चित विचार का फल था।[76] कला प्रवीण ताज़ और शेख द्वारा रचित श्रृंगार के दो चित्ताकर्षक कवित्त देखिए –

कालिन्दी के तीर नीर–निकट कदम्ब कुंज, मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की।
अन्तर के यामी कामी कँवल के दल लेकें, रची सेज तहाँ शोभा कहा कहौं तिनकी।।

[74] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 195
[75] वही, पृष्ठ संख्या, 190
[76] गिरिजादत्त शुक्ल/ब्रजभूषण शुक्ल, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, पृष्ठ संख्या, 33

तिहिं समै ताज प्रभु दम्पति मिले की छवि, बरन सकल कोऊ नाहीं वाहि छिन की।

राधे की चटक देखे अँखिया अटक रहीं, मीन को मटक नाहिं साजत वा दिन की।।[77]

अथवा

छलिबे को आई ही सु हौं ही छलि गयी मनु, छीकतौ न छल, करि पठई बिहारी हौं।

तूँ तौ चल है पै आली हौं हीये अचल सी हौं, सादी रूप रेख देखि रीझि भीजि हारी हौं।।

सेख भनि लाल मनि बेंदी की बिदा है ऐसे, गोरे गोरे भाल पर वारि फेरि डारी हौं।

बैरिन न होइ नेकु बेसरि सुधारि धरौ, हौं तो बालि बेसरि के बेह बेधि मारी हौं।।[78]

प्रस्तुत दोनों कवित्तों की प्रत्येक पंक्ति में 31–31 वर्ण हैं और 16–16 वर्णो के मध्य यति है; साथ ही चरणांत में तुकांतता है। अतः दोनों ही छंद कवित्त की कोटि में आते हैं।

सवैया छंद

22 से लेकर 26 वर्णों तक के चरणों वाले समवर्ण–छंद को सवैया कहते हैं। काव्यशास्त्र में इनके लगभग 48 प्रकार बताए गए हैं जिनमें मत्तगयंद, दुर्मिल, सुमुखी, सुन्दरी सवैया उल्लेखनीय हैं। समीक्ष्य काल में प्रवीणराय, केशवपुत्रवधु, कविरानी चौबे, शेख रंगरेजिन,प्रेमसखी इत्यादि के काव्य में इसका सफल निर्वाह हुआ है। प्रवीणराय कृत श्रृंगार रस से पूरित उनका यह मत्तगयंद सवैया देखिए –

नीक घनी गुननारि निहारि नेवारि तऊ अँखिया ललचाती।

जान–अजानन जोरति दीठि बसीठि के दौरान औरन हाती।।

आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी 'प्रबीन' वहै रसमाती।

ज्यों ज्यों कछु न बसाति गोपाल की त्यों त्यों फिरै घर में मुसुकाती।[79]

गौरतलब है कि प्रस्तुत छंद की प्रत्येक पंक्ति में 23–23 वर्ण हैं और गणों का क्रम 7 भगण व 2 गुरू है तथा चरणांत में तुकांतता है; अतः यह एक सवैया छंद (मत्तगयंद) है।

[77] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 73
[78] वही, पृष्ठ संख्या, 80
[79] वही, पृष्ठ संख्या, 97

काव्य गुण

काव्यगुण काव्य की प्रकृति को बताने वाले कारक हैं। काव्याचार्यों ने इनके दस प्रकार बताए हैं जिनमें – श्लेष गुण, प्रसाद गुण, समता गुण, माधुर्य गुण, सौकुमार्य गुण, अर्थव्यक्ति गुण, औदार्य गुण, ओज गुण, कांति गुण, समाधि गुण का नामोल्लेख है। नाट्यशास्त्र में इन्हें इस प्रकार उल्लिखित किया गया है –श्लेषः प्रसादः समता समाधि माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्। अर्थस्य व्यक्तिरूदारता च कांतिश्च काव्यस्य गुणा दर्शते; परंतु हिंदी साहित्य में केवल तीन का प्रयोग (प्रसाद गुण, माधुर्य गुण और ओज गुण) मुख्यतः से होता है। समीक्ष्य लेखिकाओं ने भी अपने काव्य में उपर्युक्त तीनों को रमणीय स्थान प्रदान किया है। इस संबंध में उनके काव्य का विश्लेषण अग्रलिखित है –

प्रसाद गुण

काव्य में प्रसाद गुण का स्थान सामान्य है। यह शब्दों के सरल सुबोध रूप से संबंध रखता है; अर्थात् जहाँ शब्द सुनते या पढ़ते ही उसके अर्थ की प्रतीति हो जाए, वहाँ पदावली में प्रसाद गुण मानना चाहिए। हिंदी साहित्य की लगभग प्रत्येक कवयित्री ने इस गुण को अपने काव्य में स्थान प्रदान किया है; परंतु साँईं के यहाँ हम इसका श्रेष्ठ प्रयोग पाते हैं। उन्होंने अपनी 'सीधी–सादी भाषा में जीवन के जो नैतिक आदर्श सामने रक्खे हैं वे अधिक व्यवहारिक और नपे–तुले हैं।[80] 'उन्होंने अपने जीवनानुभवों को नैतिकता और उपदेशात्मकता की चादर में सहेजकर समाज के सम्मुख रखा है। प्रसाद गुण से सुसज्जित उनकी निम्नांकित कुंडली देखिए जिसमें उन्होंने बड़ी सीधी–सादी व सुबोध भाषा में उल्लेख्य तेरह लोगों से जीवन भर बैर न करने की बात कही है। यथा –

साईं बैर न कीजिए गुरू, पंडित, कवि, यार।
बेटा, बनिता, पँवरिया, यज्ञ करावनहार।।
यज्ञ करावनहार, राजमंत्री जो होई।
विप्र, परोसी, वैद्य, आप को तपै रसोई।।
कह गिरिधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं।।

[80] व्यथित हृदय, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, पृष्ठ संख्या, 82

माधुर्य गुण

ऐसा आनंद जिसमें मन द्रुतियुक्त होकर आह्लादित हो जाए और अंतर्मन द्रवित हो जाए माधुर्य गुण की कोटि में आता है। यह गुण सामान्यतः श्रृंगार रस, करूण रस और शांत रस में पाया जाता है। इसकी पहचान यह है कि इसमें, 'ट', 'ठ', 'ड', 'ढ' वर्णो का प्रयोग नहीं होता वरन् इसकी शब्दावली में ह्रस्व और स्पर्शी व्यंजनो का मर्मस्पर्शी प्रयोग होता है। प्रस्तुत कालखंड में मीराँबाई, प्रवीणराय, छत्रकुँवरिबाई, शेख रंगरेजिन, ताज़, दयाबाई और सहजोबाई के काव्य में इसका निर्वाह हुआ है। माधुर्य गुण की पुष्टि हेतु कवयित्री छत्रकुँवरिबाई का यह श्रृंगार सुसज्जित पद्यांश देखिए जिसमें नायिका अपने नायक को सतराई हुई दृष्टि से देख रही है; परंतु प्यारी छवि वाली नायिका के कोमल क्रोध को देखकर वहाँ खड़े नव–नागर मुसकुरा रहे हैं। यथा –

प्यारी छबि सतरान लखि नव नागरि मुसुकाय।
बिवस प्रेम दृग गति छकी इक टक रही चिताय।।
इक टक रही चिताय अमल अनउतरन छाकी।
इक चितवत सकुचान भरी इतप्रेमहिं पाकी।।[81]

उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत काव्यांश को 'छबि', 'छकी', छाकी', 'पाकी', 'सतरान', 'लखि', 'दृग', 'चिताय' जैसी शब्दावली माधुर्यता प्रदान कर रही है। छंद में ह्रस्व स्वरों का न केवल आधिक्य है अपितु 'ट', 'ठ', 'ड' 'ढ' जैसे वर्णो का प्रयोग भी नहीं हुआ है। अतः यहाँ पर माधुर्य की अनुभूति होना स्वाभाविक है। इस कालखंड की शेष कवयित्रियों के काव्य में भी इसी प्रकार की शब्दावली का उपयोग हुआ है।

माधुर्य रस से सराबोर कवयित्री बनीठनी जी का एक पद देखिए जिसमें श्याम सुन्दर को देखे बगैर उन्हें समस्त संसार खारा लग रहा है। उनके कथनानुसार उन्होंने जब से श्याम मनोहर के संग होरी खेली है, तब से वे अपना सर्वस्व ठगा बैठी है। अब उन्हें रंग रसिया के बगैर होरी का खेल अलौना लग रहा है; उनका मन अब खेलों में नहीं रमता। यथा –

मनमोहन सोहन स्याम नंद ढटोनां री
बिन देखे पल कल न परत हैं, मेरो जीव लागोनां री।
होरी मैं मौपैं ठगोरी सी डारी, हौं रिझई रीझि रिझौनां री।
खेलौंगी मिलि 'रसिक बिहारी' सौं, वा बिन खेल अलोनां री।[82]

[81] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 90
[82] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 196, पद संख्या, 71

गौरतलब है कि 'राग तिताल' के उपरोक्त पद्य में माधुर्य गुण को परिपुष्ट करने वाली, 'स', 'म', 'प', 'र', 'क', 'ब', 'व', 'न' जैसी शब्दावली का प्रयोग किया गया है। व्याख्येय पद की अपूर्वता यह है कि इसमें 'ढटोना', 'ठगोरी', 'डारी', 'रिझई', 'रीझि', 'रिझौना' जैसी शब्दावली जो 'ढ', 'ठ', 'ट', 'ड', 'झ' जैसी अक्षरावली से पुष्ट है तथा नाद सौंदर्य और ओज गुण की अभिव्यक्ति में अधिक प्रयुक्त होती है; यहाँ वह भी माधुर्य गुण की वृद्धि कर रही है।

ओज गुण

चित्त में नाद, क्रोध, रोष उत्पन्न कर देने वाली पदावली में ओज गुण होता है। इसी से इसका संबंध वीर, वीभत्स और रौद्र रसों से माना जाता है। 'ट', 'ठ', 'ढ', 'ड', 'झ', 'क्ष'' 'श', 'ष' आदि ओजगुण के व्यंजक वर्ण हैं। उक्त लेखिकाओं में पद्माचारिणी, ठकुरानी काकरेची जी और सुंदरिकुँवरिबाई के काव्य में इस गुण का परिपाक हुआ है। उल्लेख्य है कि इसमें से किसी के काव्य में उक्त शब्दावली का आधिक्य नहीं है; किंतु शब्द संयोजन इतना सुगठित है कि उनमें प्रयाण करती हुई सेना का देश–काल बोल उठता है; यथा –

चतुरंग चमू अति छवि विराज, मणि कनक साजि गजराज बाज।
पुनि दुरद पीछ राजै निसान, धुनि होत दुम्दुभी घन लजान।।
केउ चैल गजन पर गुनी नाम, गावैं जु कीर्ति कीनी सुदाम।
पुनि चढ़े अश्व सोभित अपार, छत्रैत सुभट साजे सिंगार।[83]

विशेष है कि प्रस्तुत छंद में 'चतुरंग', 'चमू', 'छवि', 'विराज', 'गजराज', 'बाज', 'दुन्दुभी', 'गजन', 'अश्व', 'सुभट' जैसे शब्दों के संयोजन से ओज गुण की सहज अनुभूति होती है। हिंदी साहित्य में ऐसा कम ही देखने में आता है कि मूर्धन्य व्यंजनों के बगैर कोई रचना ओज गुण से परिपूर्ण हो। इस संबंध में यह एक विशेष काव्य कौशल है।

प्रतीक विधान

'प्रतीक' अंग्रेजी के सिंबल (*Symbol*) शब्द का हिंदी रूपांतरण है। यह रचनाकारों की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। जब कोई रचनाकार किसी अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य या अप्रस्तुत वस्तु को उसकी पूर्ण गरिमा और प्रभाव के साथ प्रकट करना चाहता है तब वह उसी प्रकार मूर्त, दृश्य, श्रव्य या प्रस्तुत प्रतीकों का सृजन करता है। मध्यकालीन कवयित्रियों ने भी कुछ सीमा तक पुरूष कवियों की भांति अपने काव्य में

[83] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 147

चमक लाने हेतु प्रतीकों का प्रयोग किया है। प्रतीकों का प्रयोग करने वाली कवयित्रियों में रत्नावली, पद्माचारिणी, सहजोबाई, दयाबाई और पजनकुँवरि का नाम उल्लेखनीय है।

कवयित्री पजन कुँवरि ने अपने काव्य में 'मधुप' का प्रयोग प्रतीक रूप में किया है। उनका 'मधुप' 'उद्धव' का प्रतीक है। वह उद्धव से पूछ रही हैं कि प्रेम के संबंध में उनका ज्ञान क्या कहता है ? कृष्ण प्रेम की गहराई उद्धव को समझाना चाहते हैं इसलिए वे अपने मन की बात एक पाती में लिखकर उद्धव के हाथों राधा को भेज रहे हैं; 'मधुप' का यह प्रतीकार्थ देखिए –

मधुप तुम बोलो तो भाई।

चैत हूँ ब्रज फुटत पाती ऊधो हाथ दई।

दीजो जाइ राधिका जू को ललतै बोल सई।।[84]

एक अन्य स्थान पर संत दयाबाई ने परमसत्ता को 'डोर' और सांसारिक जगत को 'मनिका' के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। उनका कथ्य है कि यह संसार मणियों की माला के रूप में है जिसके भीतर अलौकिक ईश्वर की डोर पिरोई हुई है। यदि वह डोर टूट गई तो सभी मणियाँ कंकड पत्थर की भांति बिखर जायेंगी। दयाबाई के कथ्यानुसार इस संसार के सभी चराचर कीट पतंग में किसी अन्य का न होकर उसी परमसत्ता का निवास है; यथा–

वही एक व्यापक सकल ज्यों मनिका में डोर।

थिर चर कीट पतंग में 'दया' न दूजो और।।[85]

संत सहजोबाई भी प्रतीकों के काव्य प्रयोग में दयाबाई के साथ खड़ी दीख पड़ती हैं। उन्होंने 'धान' और 'चावल' को 'शरीर' और 'आत्मा' के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है। उनका कथ्य है कि जब तक चावल रूपी आत्मा धान रूपी शरीर के भीतर रहती है तब तक शरीर का विकास होता जाता है; परंतु जैसे ही छिलका हटता है वैसे ही चावल रूपी आत्मा संसार को त्याग कर परमसत्ता में विलीन हो जाती है; यथा –

जब लग **चावल धान** में, तब लग उपजै आय।

जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्ति रूप है जाय।।[86]

---

[84] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या. 209
[85] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 13
[86] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 19

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि समीक्ष्य सृजनकारों ने काव्य प्रतीकों को काव्य रूढ़ियों के साथ–साथ ग्रामीण अंचल से भी उठाया है; यह उनकी दूरदर्शिता और काव्य कला का प्रमाण है। यह काव्य कौशल बहुत अधिक तो नहीं, किंतु संतुष्टि दायक अवश्य है।

शब्द शक्ति

वाक्य में प्रयुक्त सार्थक शब्दों का अर्थबोध कराने वाली शक्तियों को शब्द शक्ति कहते हैं। इसके तीन भेद बताए गए हैं –अभिधा शब्द शक्ति, लक्षणा शब्द शक्ति और व्यंजना शब्द शक्ति। इनके तीन शब्द (वाचक शब्द, लक्षक शब्द, व्यंजक शब्द) और तीन अर्थ (वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ) भी बताए गए हैं। हिंदी साहित्य की कवयित्रियों के काव्य में उक्त तीनों शक्तियों का सहज प्रयोग मिलता है, जिसका विश्लेषण निम्नलिखित है –

अभिधा शब्द शक्ति

किसी शब्द में निहित संकेतित अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति को अभिधा शक्ति कहते हैं। संकेतित अर्थ से तात्पर्य दैनिक जीवन व्यापार में शामिल होने वाले अर्थों से है जिनका प्रचलित स्वरूप हम सीधे–सीधे ग्रहण कर लेते हैं। आलोच्य काल की लगभग सभी कवयित्रियों ने इस शक्ति का सहजता से प्रयोग किया है। कविरानी चौबे और शेख रंगरेजिन के काव्य में यह सहजता से देखी जा सकती हैं। कवयित्री चौबे द्वारा अभिधा शक्ति से अनुप्राणित यह काव्यांश देखिए –

मै तो यह जानी ही कि **लोकनाथ** पाय पति
संगही रहौगी अरधंग जैसे गिरिजा।।[87]

यहाँ कवयित्री को 'लोकनाथ' शब्द के दोनो अर्थ अभीष्ट हैं – 'लोकनाथ चौबे' (कवयित्री के पति) और भगवान 'शिव'। यह दोनो अर्थ वाच्यार्थ हैं जो अभिधा शक्ति द्वारा ज्ञात हो रहे हैं; अतः यहाँ अभिधा शक्ति है।

शेख रंगरेजिन कृत अभिधा शब्द शक्ति का एक और उदाहरण देखिए जिसमें नायक को उलाहना दिया जा रहा है कि वह कहीं से यह सीखकर आया है कि घर में केवल झाँकी दिया करे और शेष समय किसी और नायिका के साथ बिताया करे; यथा –

खरी अनखात ह्वै है बीरियो न खात ह्वै है,

[87] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 01

झाँकि झाँकि जात ह्वै है नेक भये न्यारे हो।

सेख कहै उनकी सिखाइ पठये हो पिय

झाँकि दैन आये तुम हिये झुकि हारे हो।।[88]

आलोच्य पद्यांश में 'सिखाई' शब्द के दोनो अर्थ – सीखना और चालाकी करना स्पष्ट हैं। अतः यहाँ भी अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग सिद्ध है।

व्यंजना शब्द शक्ति

व्यंजना का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है – प्रकाशित करना। जहाँ अभिधा और लक्षणा अपना–अपना अर्थ ज्ञात कराके शांत हो जाएँ और अन्यार्थ की प्राप्ति हेतु किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता हो तब अन्य अर्थ की प्रतीति कराने वाली शक्ति को व्यंजना शक्ति कहते हैं। समीक्ष्य समय में इस शक्ति का प्रयोग संत कवयित्री सहजोबाई और दयाबाई के काव्य में विशेष रूप से किया गया है। सहजोबाई कृत व्यंजना का यह पद्यांश देखिए –

ज्ञान जोग को सूरज प्रगठ्यो, बानी किरण पसारी।

चार दिसा में भयो उजारो, चौंक उठे नर नारी।।[89]

व्याख्येय पद्यांश में सर्वप्रथम अभिध्यार्थ बाधित होता है क्योंकि सूरज ज्ञान योग का नहीं प्रकाशित करने वाला होता है। फिर यहाँ लक्ष्यार्थ प्राप्त होता है कि 'ज्ञान योग को सूरज प्रगट्यो' का अर्थ 'ज्ञान और योग की शिक्षा के विस्तार से है' जिससे चारों दिशाओं में उजियारा हो गया है; परंतु उससे नर नारी क्यों चौंक रहे हैं उन्हें तो प्रसन्न होना चाहिए! ऐसी स्थिति में अभिध्यार्थ और लक्ष्यार्थ के बाधित होने पर व्यंजना शक्ति से यह अर्थ व्यंजित होता है कि ज्ञान और योग के सूरज ने जनमानस की उन रूढ़ियों, अंधविश्वासों, आडंबरों और कुवृत्तियों को नष्ट कर दिया है जो जन्म से चली आ रहीं हैं और जिन पर आज तक नर–नारी की नज़र नहीं गई है; इसलिए वे ज्ञान योग के सूरज के निकलने से चौंक उठे हैं।

व्यंजना शब्द शक्ति से परिपूरित दयाबाई का भी एक दोहा देखिए जिसमें दयाबाई ने साधू, सन्यासी की अद्‌भुत कल्पना की है; यथा –

साधु सिंह समान है, गरजत अनुभव ज्ञान।

---

[88] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 83

[89] सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 53

करम भरम सब भजि गये, 'दया' दुर्यो अज्ञान।।[90]

आलोच्य दोहे में सर्वप्रथम अभिध्यार्थ बाधित होता है क्योंकि साधु, सिंह समान नहीं हो सकते; लेकिन लक्षणा शक्ति से लक्ष्यार्थ प्राप्त होता है कि जिस प्रकार सिंह अपने शारीरिक बल के आधार पर समस्त जंगल का राजा होता है उसी प्रकार साधु अपने भिन्न–भिन्न अनुभव ज्ञान के आधार पर मनुष्य जगत में सर्वोत्तम होता है। परंतु आगे चलकर लक्ष्यार्थ भी बाधित होता है क्योंकि साधु, सिंह की भांति गरजता नहीं है तब व्यंजना शक्ति से यह अर्थ व्यंजित होता है कि 'गरजत अनुभव ज्ञान' का अर्थ 'साधु के पास ज्ञान के अपार भंडार से है'; अतः यहाँ भी व्यंजना शब्द शक्ति सिद्ध होती है।

मिथक

मिथ शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द *'Mythos'* से हुई है जिसका अर्थ है – मुँह से निकला हुआ। इसलिए इसका संबंध कथानक, आख्यान तथा मनगढ़ंत रचनाओं से जोड़ा जाता है। हिंदी साहित्य में इसका संबंध सुनी सुनाई पौराणिक कथाओं से है जिनमें 'कृष्ण लीला', 'कंस वध', 'पूतना वध', 'कालिया नाग प्रसंग', 'जयद्रथ वध', 'चीर हरण', 'समुद्र मंथन' जैसे प्रसंग सम्मिलित हैं। ये कथाएँ सामान्य मनुष्य के जीवन का अभिन्न हिस्सा हो गई हैं। इन्हें वे परंपरा में देखते और सीखते हैं। इनके लिए उन्हें पौराणिक ग्रंथ पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती।

मध्यकालीन लेखिकाओं ने मिथकीय संबंध में 'चौक पूजन प्रसंग', 'भक्त प्रहलाद प्रसंग', 'अहल्या उद्धार', 'हिरण्यकश्यप प्रसंग', 'राजा हरिशचंद्र', 'नरसिंह अवतार प्रसंग', 'रावण प्रसंग', 'अर्धनारीश्वर प्रसंग', 'नारद भक्ति', 'रामलीला प्रसंग', 'कुबरी–सबरी प्रसंग', 'अहल्या उद्धार', 'उद्धव संवाद प्रसंग' आदि को अपनी लेखनी प्रदान की है। ये सब वे पौराणिक कथाएँ है जो भारतीय जनमानस की नसों में रूधिर की तरह दौड़ती हैं। कवयित्री प्रवीणराय पातुरी कृत निम्नांकित पद्यांश देखिए जिसमें वे विष्णुपुराण में उद्धृत विष्णु के नरसिंह अवतार द्वारा हिरण्यकश्यप वध की कथा को लेखनी का आधार बना रही हैं; यथा –

वह गयो प्रभु परलोक कीन्हौं हिरणकश्यप नाथ जू।
तेहि भांति भांतिन भोगियो भ्रमि पल न छांड्यो साथ जू।।
वह असुर श्रीनरसिंह मार्‌यो लई प्रबल छड़ाइ के।
लै दई हरि हरिचन्द राजहिं बहुत गोसुख पाइ के।।[91]

[90] दयाबाई, दयाबाई की बानी, पृष्ठ संख्या, 10
[91] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 97

मिथकीय चेतना से पूरित कवयित्री साँईं की यह कुंडली देखिए जिसमें उन्होंने रामायण की उस कथा को अपने काव्य का आधार बनाया है जिसमें लंकेश के अत्याचारों से त्रस्त होकर विभीषण, राम से जा मिले थे और इस कारण लंका व लंकापति का विनाश हो गया था; यथा –

साईं अपने भ्रात को कबहु न दीजे त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए सदा राखिए पास।।
सदा राखिए पास त्रास कबहूँ ना दीजे।
त्रास दियो लंकेश ताहि की गति सुनि लीजे।।
कह गिरिधर कविराय राम सों मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज्य लंकपति बाज्यो साईं।।[92]

समीक्ष्य लेखिकाओं ने पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त पौराणिक चरित्रों को भी अपनी कलम से सृजनशीलता प्रदान की है। उन्होंने पुराणों में अभिव्यक्त 'सती सावित्री', 'सती अनसुईया', 'सती सुलोचना', 'सती अहल्या' आदि स्त्रियों को पतिव्रतास्वरूप प्रकट किया है। कवयित्री प्रताकुँवरिबाई द्वारा उद्धृत सती 'अनसुईया' का नाम उनके समस्त जीवन की कथा को हमारी आँखों के आगे बिम्बित कर देता है; यथा –

धरम अनेक कहे जग माँही। तिय कै पतिव्रत सम कोऊ नाहीं।।
देवहुती अनसूया नारी। पतिब्रत तैं हरिसुत अवतारी।।[93]

उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि पुरूष कवियों की भांति स्त्री रचनाकारों ने भी समाज में प्रचलित उन पौराणिक कथाओं को अपने काव्य का हिस्सा बनाया है जो तद्युगीन जनमन के हृदय में घुली मिली थी। उल्लेख्य है कि 'पतिव्रता स्त्रियों' को स्त्री होकर अपनी लेखनी का हिस्सा बनाना सामंती समाज में परतंत्रता का आह्वान करना ही था; लेकिन ऐसा दीख नहीं पड़ता कि तत्कालीन रानी कवयित्रियों के मन में परतंत्रता जैसा कोई भाव हो, इससे उलट उनके लिए पतिव्रता होना एक बहुत बड़ा मूल्य या जीवन का आधार था।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

साहित्य में मुहावरेदार या लोकोक्तिपूर्ण भाषा, भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है। यदि सीधी व वर्णनात्मक शैली में कही गई बात अपना प्रभाव ज़माने में जमाना लेती है तो मुहावरेयुक्त या लोकजनित बात अपना प्रभाव ज़माने में बूँद भर का समय नहीं लेती; इसलिए मुहावरा या लोकोक्ति कला

[92] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या. 05
[93] वही, पृष्ठ संख्या. 47

को न केवल लेखन के लिए उपयुक्त माना जाता है वरन् पाठक या श्रोता के समक्ष अपने मनोभावों की प्रबल अभिव्यक्ति के लिए भी यह कला महत्त्वपूर्ण है। फलस्वरूप हिंदी साहित्य की लेखिकाएँ भी इस कला कौशल से अछूती नहीं हैं; फिर इस संबंध में स्त्रियों को मुहावरों और लोकोक्तियों की जननी समझना चाहिए क्योंकि ये तत्व उनके संस्कारों, त्यौहारों, रीति–रिवाज़ों में सहजता से रचे बसे हैं।

समीक्ष्य काल की लगभग सभी कवयित्रियों ने अपने काव्य में भिन्न–भिन्न मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। उन्होंने 'लगन लगना', 'बदन बदना', 'चित्त चंचल होना', 'दिन–दिन बढ़ना', 'मन में रखना', 'पाँय पड़ना', 'नैनों के तारे', 'पाँव की धूरी' जैसे मुहावरों का उल्लेख किया है तो 'सीख सीखना', 'मंगल गाना', 'कुँजर के पग बेड़िया', 'चींटी फिरै निसंक', 'करतूती कहि देत', 'मोतिन चौक पूजना' जैसी लोकोक्तियों को भी अपने काव्य में बड़ी सहजता से स्थान दिया हैं। बाज़बहादुर की प्रेयसी कवयित्री रूपमति का यह मुहावरा देखिए जिसमें वे अपने प्रेमी की प्रियता को अन्य स्त्री से बचाकर उसकी कुंजी अपने पास रखना चाहती हैं; यथा –

और धन जोड़ता है री मेरे, तो धन प्यारे की प्रीत पूँजी।
कहू त्रिया की न लागे दृष्टि, **अपने कर राखूँगी कूँजी**।।[94]

एक अन्य स्थान पर कवयित्री साँईं ने विदाई बेला का इतना सुन्दर और मुहावरेदार वर्णन किया है कि रोती हुई दुल्हन के मन की बात साक्षात चित्रित होने लगती है। कुँडली देखिए –

साईं जग में योग करि **युक्ति न जानै कोय**।
जब नारी गवने चली **चढ़ी पालकी रोय**।।
चढ़ी पालकी रोय **जाने नहिं कोई जिय की**।
रही **सुरत तन छाय** सु छतियाँ अपने हिय की।।[95]

मुहावरेदार भाषा को अपने काव्य का वैभव बनाने मे कवयित्री शेख रंगरेजिन भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहतीं। उन्होंने 'बुद्धि बिसरना', 'पायन की धूरी', 'जोग जुगति भूलना', 'बतिया बनाना' जैसे मुहावरों का स्वाभाविक प्रयोग किया है जो उनकी भावाभिव्यक्ति को जीवटता प्रदान करते हैं। उनका यह कवितांश देखिए जिसमें उन्होंने नैंनों की गरिमा के साथ–साथ अपने अस्तित्व की भी रक्षा की है। यथा –

नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,
पायन की धूरि हमैं दूरि कै न जानिये।।[96]

[94] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 248
[95] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या. 07

जैसा कि उपरिलिखित है कि मध्यकालीन कवयित्रियों ने अपने काव्य में लोक प्रचलित कहावतों या लोकोक्तियों का उल्लेख भी किया है। इससे उनके काव्य कौशल में चार चाँद लग गए हैं। कवयित्री खगनियाँ कृत यह कहावत देखिए जिसमें वे दो प्रेमी युगलों की समीपता का चित्रण हाथी और हथनियाँ की उक्ति से करती हैं; उदाहरणार्थ –

हाथी हाथ हथनियाँ कांधे।

चले जात हैं बकुचा बांधे।।[97]

(गज, गजी)

लोकोक्तियों को अपने काव्य का मुख्याधार बनाने वाली रचनाकारों में कवयित्री सुन्दरिकुँवरिबाई का एक विशेष स्थान है। उन्होंने जिस प्रकार लोक प्रचलित इन कहावतों का जितना सारगर्भित और यथा स्थान प्रयोग किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी उक्तियाँ काव्य सौंदर्य को बढ़ाने में सार्थक हैं। उनकी एक उक्ति देखिए जिसमें वे अपने पूज्य के संबंध में संसार से सीधी–सीधी बात करना चाहती हैं। यथा –

औगुनहि एही जग मेरे स्वामी गुनग्राही

तेरे आसरे तें गनिकाहू गति पात है।

गरीब नेवाज तैं गरीब मैं निवाजे क्यों न

लाख लाख बातन ही सुधी एक बात है।।[98]

मुहावरों और लोकोक्तियों के उपरोक्त उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि लेखिकाएं लेखन के ढंग का पूरा कायदा जानती थीं। कायदे में यदि वे किसी पुरूष रचनाकार से आगे नहीं कही जा सकतीं तो उन्हें किसी से पीछे भी नहीं कहा जा सकता। ऐसा कहना उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ अन्याय करना होगा।

राग विधान

स्वर विशेष के समूह को 'राग' कहते हैं। यह मूलतः संगीत का विषय है। इसकी उत्पत्ति सात स्वरों और बाईस श्रुतियों से मिलकर होती है, लेकिन ये आवश्यक नहीं कि प्रत्येक राग में सभी स्वर और श्रुतियाँ लग ही जाएँ; फिर प्रत्येक राग में आरोह–अवरोह के अनुरूप अलग–अलग स्वर लगते हैं और उनको लगाने का चलन भी अलग–अलग होता है। आरोह में यदि सात स्वर हैं और अवरोह में भी सात स्वर हैं तो वह 'राग भैरवी' की तरह संपूर्ण जाति का राग कहलाता है।

---

[96] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 84

[97] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी , पृष्ठ संख्या. 04

[98] ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, पृष्ठ संख्या, 146

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का समय से बहुत गहरा संबंध है। इनका वर्गीकरण ऋतुओं और कालखंडो के आधार पर होता है। कुछ राग सुबह के हैं तो कुछ शाम के और कुछ रात को गाए जाने वाले राग हैं। यहाँ तक कि शास्त्रीय संगीत में प्रत्येक पहर का राग सुनिश्चित है; जैसे, 'राग यमन' संझा कालीन राग है तो 'राग पूरिया धनाश्री' संध्याकालीन राग है। 'राग दरबारी' रात्रि के दूसरे पहर का राग है तो 'राग ललित' रात्रि के चौथे पहर का राग है।

चूँकि रागों का संबंध मूलतः संगीत से है इसलिए हिंदी साहित्य में कुछ कवयित्रियाँ ऐसी हुई हैं जिन्होंने न केवल राग लिखे हैं; अपितु गाए भी हैं। इनमें मीराँबाई और रसिकबिहारी बनीठनी का नाम सर्वोपरि है। जहाँ मीराँबाई ने 'राग ललित', 'राग कान्हरा', 'राग गूजरी', 'राग मुल्तानी', 'राग मालकोस', 'राग धानी', 'राग पीलू', 'राग पहाड़ी', 'राग बिहाग', 'राग सोरठ', 'राग मलार', 'राग पूरिया धनाश्री' आदि की रचना की है, वहीं रसिकबिहारी बनीठनी जी ने 'राग तिताल', 'राग काफी', 'राग गौरी', 'राग नायकी', 'राग इकताल', 'राग खंभायची' आदि को उद्धृत किया है।

मीराँबाई के प्रिय रागों में 'राग मल्हार' और राग विहाग का विशेष स्थान है। वर्षा ऋतु के समय रात्रि के दूसरे पहर में गाया जाने वाला यह राग मल्हार, 'मियाँ मल्हार' भी कहलाता है। यह पूर्वांग प्रधान राग है और विशेषतः मंद्र सप्तक में तथा मध्य सप्तक के पूर्वांग में विशेष खिलता है। इसकी प्रकृति गंभीर है इसलिए इसमें करूण व वियोग श्रृंगार की अनुभूति होती है। मीराँबाई कृत 'राग मल्हार' का एक सुन्दर उदाहरण देखिए –

डारि गयो मनमोहन पासी।।
आँबाँ की डालि कोइल इक बोले, मेरी मरण अरू जग केरी हाँसी।
बिरह की मारी मैं बन डोलूँ, प्राण तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।।[99]

मीराँबाई के प्रिय रागों में सम्मिलित 'राग विहाग' एक मधुर प्रकृति का राग है। 'प', 'म्', 'ग', 'म' स्वर समुदाय, राग वाचक है। आरोह में मध्यम स्वर से उठाते हुए, मध्यम तीव्र का प्रयोग होता है जैसे, 'म्', 'प'; 'म्', 'प', 'ध', 'ग', 'ग', 'म', 'ग'; 'म्', 'प', 'नि', 'सा', 'नि', 'ध', 'प'; और अवरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग, मध्यम शुद्ध के साथ किया जाता है; जैसे, 'म्', 'ग', 'म', 'ग'। इस राग में निषाद शुद्ध खुला हुआ लगता है, इसलिए इसमें उलाहने जैसे प्रबंध बहुत आकर्षक लगते हैं। मीराँबाई कृत 'राग विहाग' का एक उदाहरण देखिए –

[99] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 115

माई म्हारी हरिहूँ णा बूझ्याँ बात।।

पिंड माँसू प्राण पापी, निकसि क्यूँ णा जात।

पटा णा खोल्या मुखाँ णा बोल्या, साँझ भयाँ परभात।

अबोलणाँ जुग बीतण लागाँ, कायाँरी कुसलात।[100]

मीराँबाई के समान ही 'राग तिताल' कवयित्री रसिकबिहारी बनीठनी जी का प्रिय राग है। उन्होंने अपने मन की बात कहने के लिए इसका सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसकी प्रकृति वात्सल्य और हर्षोल्लास पूर्ण होती है। कवयित्री द्वारा अधिकांश बधाई पद इसी राग में निर्मित हुए हैं। रसिकबिहारी कृत 'राग तिताल' का एक हर्षमय उदाहरण देखिए जिसमें कवयित्री कृष्ण जन्म पर बधाई देने नंद जी के घर जाने को कह रही हैं –

नन्द जी रै चालौ नैं घरां।।

महा मनोहर पुत्र हुवो लखि, लोयण सुफल करां।

दही ख्याल सों भरां भरांवा, हसि–हसि फेरि भरां।

'रसिक बिहारी' नांव कुँवर जी रो आगम जांणि धरां।।[101]

आलोच्य राग के अतिरिक्त राधा–कृष्ण की विभिन्न छवियों को आधार बना रसिकबिहारी जी ने 'राग लूर', 'राग परज', 'राग रामकली', 'राग विभास' जैसे कई रागों की रचना की है। उनके अधिकांश रागों में 'कृष्ण के प्रति माधुर्य की प्रधानता है; परंतु राधा के बालरूप तथा जन्म के अवसर पर जो पद मिलते हैं उनमें वात्सल्य प्रधान है।[102] इससे उनके साहित्य चिंतन और संगीत प्रियता की गहरी पैठ का ज्ञान होता है। बहरहाल, उपरोक्त दोनों कवयित्रियों की राग कला से यह प्रमाणित होता है कि राग जनित संगीत की सुर लहरियाँ न केवल साहित्य के विकास में सहायक है प्रत्युत् कवयित्रियों की साहित्य साधना की गहराई भी बतलाती हैं।

काव्य शैली

काव्य शैली से तात्पर्य है, काव्य लेखन का ढंग। काव्य के उपरोक्त विश्लेषित प्रकारों के अतिरिक्त मध्यकालीन लेखिकाओं ने काव्य में कुछ और शैलियों का प्रयोग किया है; जैसे, 'वार्तालाप शैली', 'प्रार्थना शैली', 'पहेली कला', 'उपदेशात्मक शैली', 'प्रश्न शैली', 'नाटकीय शैली', 'ग्रामीण कथा शैली', 'स्वप्न कल्पना

[100] परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या, 115
[101] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 117, पद संख्या, 07
[102] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृष्ठ संख्या, 165

शैली' आदि। ये काव्य लेखन की वे छोटी–छोटी शैलियाँ हैं, जिनसे काव्यानुभूति में न केवल तीव्रता आती है; प्रत्युत अनुभूति की गहराई का भी बोध होता है।

काव्य की 'प्रश्न', 'नाटकीय', 'स्वप्न कल्पना' और 'पहेली शैली' का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रश्न शैली अपने प्रिय को उलाहना देने हेतु, अपने मन की दुविधा प्रकट करने हेतु, अपने पूज्य से शिकायत आदि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मध्यकालीन समाज में एक कुलवधु को पानी लाने में किन किन समस्याओं का सामना करना पड़ता था इसकी एक झलक देखिए –

कैसे जल लाऊं मैं पनघट जाऊं।
होरी खेलत नंद लाडिलो री, क्योंकर निबहन पाऊँ।
वे तो निलज फाग मदमाते, हौं कुलवधु कहाऊँ।
जो छुवै अंचर 'रसिक बिहारी', तो हूँ धरती फार समाऊँ।।[103]

कवयित्री कृष्णावती जी ने अपने काव्य में नाटकीय शैली का रमणीय प्रयोग किया है। कृष्ण के ब्याह की बात करने के लिए कृष्ण पक्ष के लोग वृषभानु के घर गए हैं; लेकिन राधा के घर से कहा जाता है कि कृष्ण काले हैं और मेरी राधा फूल सी कोमल है इसलिए यह विवाह नहीं हो सकता। दोनो पक्षों के मध्य ब्याह की बात सुचारू रूप से कराने हेतु कवयित्री को इस शैली का उपयोग करना पड़ा है जो हृदयग्राही बन पड़ी है; यथा –

जसुमति सों पठई ब्रज नारि चली वुषभान तिया पै आई।
तिहारी सुता भई ब्याहन जोग करी विनती और बात जनाई।।
धरै वर दोउ नंद के हैं करौ बलि होई सलोनी सगाई।
नहीं री नहीं बलि हौं न करौं मेरी फूल सी राधे वे कारे कन्हाई।।[104]

मध्यकालीन कवयित्रियों ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति हेतु 'स्वप्न कल्पना शैली' का प्रयोग भी किया है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल में बहुत कम रचनाकारों ने इसका प्रयोग किया है। कवयित्रियों में इसका उपयोग केवल प्रताकुँवरि बाई के काव्य में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने स्वप्न में भगवान राम को उनके मूल रूप में देखा है। उनके स्वप्न कल्पित राम की एक झलक देखिए –

एक समै सपनौ निस आयौ। रघुवर दरसन मोहि दिखायौ।।
मेघ वरन तन स्याम विराजै। धनुष बाण प्रभु कर मैं छाजै।।

[103] नागरीदास, नागरीदास ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या, 200, पद संख्या, 83
[104] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रिया, पृष्ठ संख्या, 212

कट भाथाँण कस्यौ सुखदाई। बनमाला गल मैं पधराई।।

सीस मुकट कुण्डल छबि सोभै। पीतांबर ओढ़न मन लोभै।।

बायें अंग जानकी माता। दरसन करत हरष भयौ गाता।।

दोनूँ हाथ सीस मम दीनें। बोले बचन कृपा रस भीनै।।[105]

शिल्प विधान के उपरोक्त मूल्यांकन के पश्चात् कहा जा सकता है कि ईस्वी सन् 1200 से 1857 के मध्य उपस्थित लेखिकाओं के पास काव्य कला की संतुलित समझ थी। उनका शिल्पविधान न केवल भावानुकूल है, अपितु विषयानुकुल भी है। उन्होंने स्त्रीमन के अनुरूप श्रृंगार, करूण और वात्सल्य रस में रमणीयता का परिचय दिया है तथा स्त्री विरोधी भयानक और वीभत्स रस में विशेष रूचि नहीं दिखाई है। फिर यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका लेखन किसी दरबार के लिए नहीं अपितु नितांत वैयक्तिक अनुभूतियों को जीने के लिए था।

ध्यातव्य है कि आलोच्य कवयित्रियों ने बिम्ब कला की चित्रण शैली में कुशलता प्राप्त कर ली है और उनकी अंलकार क्षमता किसी पुरूष रचनाकार से जरा भी कम नहीं है तथा छंद की लय उनके भावों के अनुकूल बन पड़ी है। उनका काव्य प्रसाद गुण और माधुर्य गुण से ओत–प्रोत है, परंतु ओज गुण की अनुगूँज बहुत अधिक सुनाई नहीं पड़ती। उल्लेख्य है कि स्त्रियों के काव्य में जहाँ ओजगुण का परिपाक हुआ है वहाँ उन्होंने सुहावनी शब्द व्यंजना का चुनाव किया है, न कि हृदय को झकझोर देने वाली शब्दावली का चयन। इसका एक महत्वपूर्ण कारण युद्धों में उनकी सीधी भागीदारी न होना है।

यदि कवयित्रियों की प्रतीक प्रस्तुति को देखें तो उसमें बहुत कुछ नवीन नहीं दीख पड़ता। हाँ! कवयित्रियों ने तीनों शब्द शक्तियों का निर्वाह कुशलता से किया है तथा मिथकों का प्रयोग मध्यकालीन समय और समाज के अनुकूल है। उनकी मुहावरेदार भाषा और लोक प्रचलित उक्तियों में उनके जीवन की छाप है। उन्होंने रागों का लयात्मक और ग्राह्य वर्णन किया है और छुट–पुट जीवन संबंधी शैलियों का प्रयोग भी किया है।

निचोड़ यह कि समीक्ष्य काल की लेखिकाएँ अपने समय और समकालीनों जैसा तो लिख ही रहीं थी लेकिन उनका स्त्री होना उन्हें अपने समकालीनों से अलग खड़ा कर देता है; क्योंकि उनकी वैयक्तिक अनुभूति उनके साहित्य के अन्दर समाई हुई है। आवश्यकता सावित्री सिन्हा की भांति उन्हें बार–बार पुरूष कवियो से अलगाने की नहीं वरन् उनके साहित्य का स्वतंत्र अध्ययन करने की है।

[105] मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुबाणी, पृष्ठ संख्या, 48

उपसंहार

जीवन क्या है ? क्या दृष्टि और दृश्य के बीच का अंतराल है ? तब दशों दिशाओं का क्या! दिशा बदलने से दृश्य नहीं बदल जाता। फिर प्रत्येक दिशा की अपनी दश दिशाएँ होती हैं अर्थात् महीन से महीन अंतराल पर दृश्य बदल जाता है। ऐसे में यह बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठता है कि हमें दिखाया क्या जा रहा है? क्या हमारी दृष्टि हमारे पास है ? यदि नहीं! तब वह कहाँ गई! क्या वह दृश्य दिखाने वाले के पास चली गई ? क्या वह ही हमारी दृष्टि का निर्माता है ? यदि हाँ! तो यह कौन है ? क्या कोई पुरूष है ? यदि है तो क्या उसकी कोई व्यवस्था है ? यदि है, तो उसने हमें अबतक क्या दिखाया है ? यह सोचते ही स्त्री इतिहास के सभी दृश्य एक–एक कर हमारे सामने आने लगते हैं और वह अपने को एक जटिल पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पाती है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय 'ईस्वी सन् 1200–1857 के मध्य स्त्री–लेखन का परिदृश्य' वर्चस्ववादी समाज की स्त्री दृष्टि को ही हमारे सामने रखता है। उल्लेखनीय है कि वैदिक युग तक स्त्री का उपनयन संस्कार होता था, उसे विद्याध्ययन का अधिकार था, उसे पुत्रों के समान संपत्ति में अधिकार था, वह घर की आर्थिक व्यवस्था में सक्रिय भागीदार थी और विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार था; परंतु तेरहवीं शती तक आते–आते उसके उपरोक्त सभी अधिकार क्षय कर दिये गए। उसे घर की चारदीवारी में नज़रबंद कर दिया गया जैसे वह मनुष्य न होकर कोई बहुमूल्य वस्तु या नीलमणि हो। महल की ऊँची–ऊँची दीवारें और मध्यम वर्गीय पुरूष की नकारात्मक दृष्टि उसके व्यक्तित्व हनन का कारण बनी। उसके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाने लगा और उसकी उपयोगिता को केवल पुत्र प्राप्ति तक सीमित कर दिया गया। उसकी स्वतंत्रता का गला रेतते हुए मनुस्मृति में स्थापना दी गई कि –

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रोंरक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

(अर्थात् बचपन में स्त्री की रक्षा की जिम्मेदारी उसके पिता की होती है और विवाह के पश्चात् उसके पति की तथा वृद्धावस्था में उसकी संतान उसकी रक्षा करती हैं।) यहाँ एक गंभीर और हास्यास्पद प्रश्न यह उठता है कि बाहरी समाज में स्त्री को किससे असुरक्षा का भय है ? क्या स्वयं उन व्यवस्थापकों से जिन्होंने उपर्युक्त व्यवस्था दी है! यदि हाँ! तो इसे पुरूष समाज की कूटनीति ही कहना चाहिए जिसमें सर्वप्रथम स्त्री को भयाक्रांत कर उसमें असुरक्षा बोध पैदा किया जाता है और बाद में वही पुरूष समाज अपने ही द्वारा निर्मित समाज से उसे सुरक्षा देने का आश्वासन दे, उसका घनिष्ठ बन बैठता है! बहरहाल, इसके बाद स्त्री कई शताब्दियों तक एक ऐसी व्यवस्था द्वारा नज़रबंद कर दी गई जिसमें उसे केवल नाममात्र के अधिकार दिए गए जबकि वास्तविक अधिकारों का नियंता पुरूष ही रहा। उसने उसे वे ही अधिकार दिए जिनसे उसके अधिकार और अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न न लगे।

पितृसत्ता ने धीरे–धीरे स्त्री समाज का स्वर्णिम इतिहास मिटाना प्रारम्भ कर दिया। उनके ऐतिहासिक पृष्ठों से गार्गी, मैत्री जैसे नाम क्षय होने लगे। समाज के कुटीर उद्योगों में उनकी सक्रिय भागीदारी समाप्त कर दी गई और समाज के धर्म, संस्कारों में उसकी भूमिका न केवल नगण्य कर दी गई बल्कि उसके उलट उन्हें बाल–विवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, घूँघट प्रथा, पर्दा प्रथा और देवदासी प्रथा जैसे संस्कारों में उलझा दिया गया। उसके मन की अनुगूँज को कभी गंभीरता से सुनने का प्रयास ही नहीं किया गया। इतने अत्याचार सहते हुए भी स्त्री समाज विचलित नहीं हुआ और पुरूष समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता रहा। सर्वविदित होते हुए भी वे सभी संस्कार निभाती रहीं और अपने परिवार तथा पति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करती रहीं।

सामाजिक व्यवस्था में स्वयं को उच्च पायदान पर स्थापित करने के साथ ही पितृसत्तात्मक मानसिकता ने स्त्रियों को राजनैतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के अयोग्य ठहराया। नतीजतन उन्हें इसकी छानबीन ही नहीं करने दी गई कि भारत के राजनीतिक इतिहास में 'नूरजहाँ', 'जहाँआरा बेगम', 'बादशाह बेगम', 'चाँदबीबी', 'जीजाबाई', 'ताराबाई', 'अहिल्याबाई' जैसी कुशल राजनीतिज्ञ भी हो चुकी हैं और दुर्गावती महोबा व रजिया सुल्तान जैसी वीरांगनाएँ भारतीय गौरव का हिस्सा रही हैं। जहाँ तक आर्थिक दखल का सवाल है तो कई बड़े–बड़े उद्योगपतियों के समान, रानियों और शहज़ादियों के भी अपने जलयान थे। शहजादी जहाँआरा के पास भी अपने जलयान थे जो कच्चे–पक्के माल की आवाजाही में सहायक थे। इसके अतिरिक्त शहजादी अंग्रेजों व हालैंडवासियों के जहाजों में भी अपना माल किराये पर भेजती थी।

उपरोक्त निर्णायक बिंदुओं के अतिरिक्त प्रथम अध्याय में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु साहित्य का भी है। आदि और मध्ययुगीन सामंतवादी समाज में कभी स्त्री रचनाकारों की भागीदारी को मुखर रूप से स्वीकार नहीं किया गया; जबकि हिंदीत्तर कवयित्रियों में कश्मीर की लल्लेश्वरी से लेकर महाराष्ट्र की कान्होपात्रा तक तथा हिंदी कवयित्रियों में उमांबा, मुक्ताबाई और पार्वतीबाई से लेकर जोधपुर की प्रतापकुँवरिबाई तक महिला लेखन की एक विस्तृत परंपरा रही है; लेकिन वर्चस्ववादी साहित्य का समस्त ध्यान स्त्रियों को कनक, कामिनी, माया, महाठगनी के रूप में स्थापित करने में लगा रहा। उन्होंने स्त्रियों को केवल पतिव्रता रूप में ही स्वीकार किया जैसे पतिव्रता स्त्रियों से इतर सभी स्त्रियाँ दूषित और अछूत हों। मध्यकालीन संतो के युगप्रवर्तक कबीरदास ने यह उद्घोषणा करते हुए कहा था कि

पतिव्रता सोई भली काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के नाम पर, वारूं कोटि सरूप।।

उपरोक्त दोहे की भांति अनेक स्त्री–विरोधी छंद मध्यकालीन निर्गुण–सगुण साहित्य में भरे पड़े है जिनसे ज्ञात होता है कि मध्यकालीन वर्चस्वादी समाज की स्त्री विषयक दृष्टि क्या थी! उल्लेख्य है कि सत्ताधारी

समाज और सामान्य स्त्री समाज में अनुभूति का बहुत गहरा अंतर था। यदि ऐसा न होता तो वे संत कवयित्री बहिणाबाई की इस व्यावहारिक बात को समझ जाते कि –

दो दिन की दुनीया ऐ बाबा,
दो दिन की दुनीया।
ले अल्लाह का नाम कूल धरो ध्यान।[1]

शोध प्रबंध का द्वितीय अध्याय 'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : जाँच–पड़ताल' है। इसके अंतर्गत आदि और मध्यकालीन कवयित्रियों के हस्तलिखित काव्य संग्रहों, प्रकाशित पुस्तकों और अबतक लिखित साहित्येतिहासों में उनकी उपस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। दरअसल, हिंदी साहित्य जगत में अबतक लिखित साहित्येतिहासों के अनुरूप यह धारणा आम है कि मध्यकालीन साहित्य में मीराँबाई के अतिरिक्त कोई और कवयित्री नहीं हुई है। प्रस्तुत अध्याय में दिल्ली, राजस्थान और उत्तरप्रदेश के कई पुस्तकालयों में जाकर उन छायाप्रतियों और प्राप्त पुस्तकों का परिचय दिया गया है, जिनसे मध्यकालीन ही नहीं वरन् आदिकालीन हिंदी कवयित्रियों के होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं; साथ ही आलोच्य अध्याय में गार्सां–द–तासी से लेकर सुमन राजे के आधा इतिहास तक में कवयित्रियों की उपस्थिति की जाँच–पड़ताल की गई है और एक तालिका जारी कर दी गई है जिससे साहित्येतिहासकारों की स्त्री विषयक दृष्टि को समझा जा सके। प्रस्तुत तालिका के साथ एक तालिका उन कवयित्रीवृत्त संग्रहों की भी बनाई गई है जिनमें आदि और मध्यकालीन स्त्री रचनाकारों के होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

कई कविवृत्त संग्रहों की छानबीन करने के पश्चात् यह भी ज्ञात हुआ कि कवयित्रियों द्वारा लिखित समान पदों में साम्यता नहीं है। ऐसे में सभी पुस्तकों और छायाप्रतियों में उपलब्ध कवयित्रियों के समान पदों का पाठालोचन कर सही 'पाठ निर्धारण' भी करना पड़ा है। उल्लेखनीय है कि पांडुलिपियों की भाषा पुस्तकों में प्राप्त भाषा से कुछ भिन्न है। प्रस्तुत अध्याय में हमने उनकी भिन्नता का विवरण देते हुए जयपुर, जोधपुर, उदयपुर और बीकानेर की भाषा की एक विवरणिका भी दी है जिससे भिन्न–भिन्न शहरों में प्राप्त पांडुलिपियों की भाषा को समझा जा सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय 'हिंदी साहित्य का स्त्री लेखन : जीवन व साहित्य' है जिसमें स्त्री रचनाकारों के व्यक्तित्व और साहित्य में उद्धृत उनके संघर्षों पर प्रकाश डाला गया है। यह सही है कि अधिकांश लेखिकाएँ रानी–महारानी रही हैं और संभवतः सुख सुविधाओं से संपन्न रही हैं, लेकिन कुछ लेखिकाएँ ऐसी भी हुई हैं जिन्होंने रानी होते हुए भी कई कष्ट उठाए हैं। इनमें मीराँबाई का नाम सर्वोपरि है, परंतु यहाँ मीराँबाई ही एकमात्र ऐसी कवयित्री नहीं है जिसने अपने जीवन में आए झंझावातों का सामना किया है; वरन् इसमें बीबी ताज, गंगाबाई, झीमाचारिणी, रत्नावली, प्रतापकुँवरिबाई, कविरानी चौबे, प्रवीणराय

[1] विनयमोहन शर्मा, हिंदी को मुसलमान संतो की देन, पृष्ठ संख्या, 356, 57

पातुरि आदि का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। फिर स्त्री की अपनी अनुभूति बहुत गहरी होती है जिसके आधार पर उल्लिखित लेखिकाओं के जीवन में आनेवाली विपदाओं का आंकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध का चतुर्थ अध्याय 'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखनः अंतर्वस्तु का मूल्यांकन' है जिसके अंतर्गत स्त्री–लेखन के उन बिंदुओं को उठाया गया है जिनपर समस्त वर्चस्ववादी साहित्य अबतक मौन रहा है। सर्वप्रथम उन्होंने निर्गुण ईश्वर की भक्ति कर वर्चस्ववादी साहित्यकारों की उस स्थापना का खंडन किया है जिसमें उन्हें कनक, कामिनी, माया, भ्रम या महाठगनी बतलाया जाता था और निर्गुण वंदना के अयोग्य माना जाता था। उमांबाई, मीराँबाई, मुक्ताबाई, सहजोबाई और दयाबाई इस संबंध में उच्चकोटि की कवयित्री हो गई हैं। वर्चस्ववादी साहित्य चेतना से अलग उमांबाई ने एक ऐसी कल्पना की है जो समस्त भारतीय साहित्य में दुर्लभ है। उन्होंने निर्गुण ईश्वर के साथ होली खेलने की अद्‌भुत कल्पना की है और इसके लिए उन्होंने पंचतत्वों से बना शरीर रूपी बाग तैयार किया है जिसमें, निर्गुण राम आकर कवयित्री के साथ ज्ञान रूपी गुलाल की होली खेलेंगे। इसी क्रम में सहजोबाई और दयाबाई ने काल की महत्ता प्रदर्शित की है और मीराँबाई ने समस्त संसार को 'चहर की बाज़ी' कहकर पुकारा है। निर्गुण भक्ति के प्रति स्त्री रचनाकारों की असीम श्रद्धा इस तथ्य से रंजित होती है कि पुरूष संतों की भांति उन्होंने कहीं भी पुरूष या स्त्री को उस अलौकिक पूज्य की प्राप्ति में बाधक नहीं माना।

उल्लेखनीय है कि अब तक रचित हिंदी साहित्य में राधा की वंदना प्रमुखता से नहीं की गई वरन् उन्हें सदैव कृष्ण की अनुगामी के रूप में ही याद किया जाता रहा है। स्त्री रचनाकारों ने अपने साहित्य में पुरूष साहित्य से नितांत भिन्न दो कार्य किये हैं। एक तो यह कि उन्होंने राधा की वंदना निर्गुण आराध्या के रूप में की है और दूसरे यह कि उन्होंने राधा को कृष्ण से पूर्व प्रधानता दी है तथा कई स्थानों पर कृष्ण को राधा का अनुगामी बताया है।

निर्गुण राधा के संबंध में कवयित्री सुंदरिकुँवरिबाई का कथ्य है कि मेरा जीवन रूपी जहाज संसार रूपी सागर के मध्य डोल रहा है। इसकी गहराई का कोई ओर–छोर दिख नहीं पड़ता। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी लहरें उठ–उठकर मुझे भिगो रही हैं। मेरी जीवन रूपी नैया अब पुरानी हो चुकी है, न जाने यह कब मेरा साथ छोड़ जाए इसलिए हे राधे! एक तेरा ही भरोसा है कि अब तू ही इस जीवन रूपी जहाज को इस भवसागर से पार उतारेगी।

जहाँ सगुण साकार रूप में राधा भक्ति और कृष्ण को उनका अनुगामी प्रदर्शित करने का प्रश्न है वहाँ रसिकबिहारी बनीठनी जी, सुंदरिकुँवरिबाई और शेख रंगरेजिन का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। कवयित्री रसिकबिहारी जी ने तद्‌युगीन परंपराओं को चुनौती देते हुए राधा की वर्षगाँठ मनवाई है तो सुंदरिकुँवरिबाई ने कृष्ण के मुख से न केवल 'मेरी प्राण सजीवन राधा' और 'प्राणहु है प्यारी प्रिया' कहलवाया है वरन् राधा की प्रतीक्षा में कृष्ण के अश्रुपात करते हुए भी चित्रित किया है। यहाँ सूरदास के

भ्रमरगीत सार की भांति केवल गोपियाँ ही कृष्ण वियोग में अश्रुपात नहीं कर रहीं प्रत्युत् कृष्ण भी कर रहे हैं।

हमने इस अध्याय में कृष्ण की वेशभूषा और सौंदर्यवर्णन के आधार पर यह स्थापना दी है कि मध्यकालीन कवियों ने कई स्थानों पर कृष्ण का सौंदर्य वर्णन स्त्रियों के प्रसाधनों के आधार पर किया है। ऐसे में यह क्यों न मान लिया जाए कि अबतक कृष्ण हेतु सौंदर्य के जो साहित्यिक उपादान उपयोग किये गए हैं वे स्त्री सौंदर्य से प्रेरित है; तब यह क्यों न कहा जाए कि लगभग सभी साहित्यकारों ने कृष्ण में किसी रूपवती स्त्री या राधा का आरोपण किया है; परंतु वर्चस्ववादी साहित्य से इस बात की आशा करना अपनी आशा को निराशा प्रदान करना है।

एक अन्य स्थान पर कवयित्री प्रतापबाला के काव्य में कृष्ण का नाम, राम का पर्याय होकर आया है। इससे कवयित्री की अदम्य और अगाध हरि भक्ति प्रदर्शित होती है। अबतक पठित हिंदी साहित्य में निर्गुण राम और सगुण राम का भेद तो जाना था, किंतु ऐसा पहली बार देखा गया है कि किसी कवयित्री ने अपनी भक्ति के आवेग में कृष्ण में राम का विलय कर दिया हो।

स्त्री रचनाकारों में ताज और इन्द्रामतिबाई नाम की दो साहसी कवयित्रियाँ भी हो गई हैं। ताज इसलिए साहसी हैं क्योंकि उन्होंने एक मुस्लिम महिला होते हुए भी समस्त साहित्य जगत और मुगलिया सल्तनत के सामने कृष्ण को अपना 'दिलजानी' और 'साहेब' स्वीकार किया है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि तद्युगीन समाज में धर्मांतरण की प्रक्रिया हिंदुओं के लिए बहुत नुक़सानदेह साबित हो रही थी। उन्हें मजबूर कर अथवा मनसबदारी का लोभ देकर उनका धर्मांतरण करवाया जा रहा था। ऐसे में किसी मुस्लिम महिला द्वारा स्वेच्छा से किसी हिंदू देवता को अपना 'प्रियतम' और 'दिलजानी' कहना तथा उसके लिए अपना धर्म त्यागकर सदा 'हिन्दुवानी' बने रहना खतरे से खाली मार्ग नहीं है। इसी क्रम में इंद्रामतिबाई इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे एक 'हिंदू' महिला होते हुए भी 'धामी पंथ' की पालक हैं, जिसमें सभी धर्मों के अनुयायियों को आने की स्वतंत्रता है क्योंकि 'धामी पंथ' की विचारधारा सर्वधर्म समन्वय की है।

एक लंबे समय से हिंदी साहित्य जगत में चारण काव्य की बहस चलती रही है लेकिन किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया कि चारणों की भांति चारणियाँ भी हो सकती हैं और वे भी साहित्य सृजन कर सकती हैं। इसमें दोष पुरूष साहित्यकारों का नहीं वरन् उनकी पुरूष दृष्टि का है जो वर्चस्ववादी दीवार के उस पार जा ही नहीं सकती थी; लेकिन महिला रचनाकारों ने स्वयं की एक दृष्टि विकसित की और हमारे समक्ष झीमाचारिणी तथा पद्माचारिणी जैसी कवयित्रियाँ प्रकट हो गईं, जिन्होंने केवल श्रृंगार परक काव्य ही नहीं रचा प्रत्युत् युद्ध की विभीषिका का काव्यमयी चित्रण भी किया है।

हिंदी साहित्य में अबतक ऐसा कोई महाकाव्य या खंडकाव्य लक्षित नहीं होता जो किसी अरबी घोड़े को समर्पित करके लिखा गया हो। हाँ! घोड़ों का छुटपुट वर्णन या एकआधा छंद अवश्य दिखाई देता है

लेकिन कोई पूरी कविता वहाँ भी दृष्टिगत नहीं होती; परंतु हिंदी साहित्य के इस अभाव की पूर्ति करते हुए बिरजूबाई ने एक पूरी कविता अरबी घोड़े के रूप, सौंदर्य, चाल, ढाल, नस्ल आदि को समर्पित कर दी है। हिंदी साहित्य में इस प्रकार के साहित्य लेखन का नितांत अभाव है।

विदित है कि समस्त मध्यकालीन साहित्य में स्त्री पर भांति–भांति के आरोप लगाए गए हैं और उसकी सुचरित्रता व कुचरित्रता की परिभाषा सत्ताधारी समाज ने अपने अनुरूप तय की है; लेकिल प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत, स्त्री साहित्य में हम इससे उलट रत्नकुँवरिबीबी, कविरानी चौबे, रत्नावली, चंपादे रानी, प्रवीणराय, ठकुरानी काकरेचीजी, छत्रकुँवरिबाई, प्रेमसखी और प्रतापकुँवरिबाई जैसी पतिव्रता स्त्री रचनाकार पाते हैं जो न केवल उच्चकोटि की पतिभक्त है वरन् अपने साहित्य में भी पतिभक्ति को एक विशेष स्थान देती हैं; साथ ही यह कामना करती हैं कि उनके पति सदा उनके साथ रमण करते रहें।

स्त्री की अनुभूति एकांगी नहीं होती। वह किसी न किसी माध्यम से अपनी अनुभूति को भाषा प्रदान करती है। इस संबंध में उनके गहने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसलिए हमने शोध प्रबंध के इस अध्याय में गहनों के माध्यम से नायिकाओं, पतिव्रता स्त्रियों और प्रेमिकाओं की अनुभूतिपरक भाषा को समझने का प्रयास किया है। कवयित्री शेखरंगरेजिन के काव्य में इस प्रकार की भाषा के सर्वाधिक दर्शन होते हैं। जब उनकी नायिका अपने प्रिय से रूठ जाती है तो वह अपने गहनों को उतार–उतार कर फेंकने लगती है। इससे वह प्रियतम के प्रति अपना क्रोध प्रकट करती है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पंचम अध्याय 'हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : शिल्पगत मूल्यांकन' है जो पूर्णतः कवयित्रियों की काव्य भाषा और भाषिक उपादानों पर केन्द्रित है। इसके अंतर्गत काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों (रस, बिम्ब, भाषा, अलंकार, छंद, रूप, गुण, प्रतीक, शब्दशक्ति, मिथक, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, राग) के आधार पर कवयित्रियों के काव्य की समीक्षा की गई है। इस अध्याय में 'स्त्री भाषा और पुरूष भाषा की भिन्नता' पर भी विचार किया गया है। हिंदी साहित्य में अधिकांशतः यह प्रश्न उठाया जाता है कि 'क्या स्त्री भाषा और पुरूष भाषा में कोई अन्तर है ?' इसका उत्तर हाँ! में होना चाहिए। हम समझते हैं कि स्त्रियाँ 'संकेतो' में जितनी बातें करती हैं उतनी पुरूष नहीं करते, फिर ये उनकी भावानुभूति के अनुकूल भी है, क्योंकि स्त्रियों की भावनाएँ जितनी कोमल, हृदयस्पर्शी, गहरी और मार्मिक होती हैं 'सांकेतिक भाषा' भी उस कोमलता और मार्मिकता को साधने वाली होती है। इसलिए हम मध्यकालीन स्त्री साहित्य में 'मैया', 'हठी', 'बाजूबंद', 'साहेब', 'पनघट', 'कुलवधु', 'अंचर', 'गागरी', 'उघरना', 'मटकी', 'जिठानी', 'देवरानी', 'आँगन', 'घूँघट', 'लाज', 'सास', 'दुपट्टा' जैसी शब्दावली पाते हैं। इस प्रकार की शब्दावली पुरूष साहित्य में कहीं–कहीं दिख पड़ती है क्योंकि, पुरूष समाज भारतीय संस्कारों में इतना घुला मिला नहीं होता जितनी स्त्रियाँ उन संस्कारों का हिस्सा होती हैं; इसलिए 'देवरानी', 'जिठानी', जैसी शब्दावली से पुरूषों का बहुत सरोकार नहीं होता।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को उक्त भाषागत मूल्यांकन के पश्चात् समाप्त कर दिया गया है लेकिन जहाँ तक विषय के विस्तार का प्रश्न है तो व्याख्येय कालखंड से इतर हिंदी में लेखन करने वाली लेखिकाओं की संख्या बीसवीं शताब्दी तक जाती है और 21वीं. शती को यदि भारतीय संदर्भ में महिला रचनाकारों की शती कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। ईस्वी सन् 1857 के बाद रचना करने वाली लेखिकाओं में 'गिरिराज कुँवरि', 'जुगल प्रिया', 'रघुवंश कुमारी', 'बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि', 'राम प्रिया', 'रत्नकुँवरिबाई', 'चन्द्रकलाबाई', 'राजरानी देवी' 'विरंजी कुँवरि', 'रामेश्वरी देवी गोयल' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मध्यकालीन लेखिकाओं से अलग ब्रज और खड़ी बोली हिंदी में वैयक्तिक प्रेम, देश प्रेम, प्रतिरोध, मुक्ति, नारी इतिहास जैसे विषय रखने का प्रयास किया है। उदाहरणस्वरूप रामेश्वरी देवी गोयल की एक कविता 'नायिका की उक्ति' देखिए –

किया था जिसे हृदय से प्यार,
अनुपम था मेरा अनुराग।
छिपा डर के पट में चुपचाप,
लिया–अपना जब उसको!
निकालूं कैसे घर से द्वार ?
आज निज भावों का श्रृंगार।
वही थी एक निराली साध,
भावनाओं का सुफलागार।[2]

आलोच्य विषय के उपरोक्त विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि हिंदी साहित्य में महिला लेखन की एक विस्तृत परंपरा रही है जिसे आजतक नज़र अंदाज किया जाता रहा है। यदि ईमानदारी से आदिकालीन और मध्यकालीन महिला लेखन की खोजबीन और विश्लेषण किया जाए तो बहुत संभव है कि हिंदी साहित्येतिहास के प्रतिमानों को फिर से बदलने की आवश्यकता पड़ जाए और हिंदी साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी महिला लेखन के द्वारा पूर्ण हो जाए।

[2] गिरिजादत्त शक्ल/ब्रजभूषण शुक्ल, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, पृष्ठ संख्या, 262

परिशिष्ट– 1

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1201–1300)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु / रचनाकाल	पिता / पति / भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	ग्रंथ क्रमांक
01	उमांबाई	रचनाकाल ईस्वी सन् 1272	चक्रधर शिष्य नागदेवाचार्य की भगिनी	स्पुट पद	मिश्रबंधु विनोद, भारतीय नारी संत परंपरा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री काव्यधारा	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली	भारतीय नारी संत परंपरा H-19559
02	मुक्ताबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1245	ज्ञानेश्वर महाराज की भगिनी	अभंग पदों ग्राम गीतों और उलटबासियों की रचना	मिश्रबंधु विनोद, हिंदुई साहित्य का इतिहास, भारतीय नारी संत परंपरा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री काव्यधारा	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली	भारतीय नारी संत परंपरा H-19559
03	पार्वतीबाई	अनिश्चित	अज्ञात	सेवादास की वाणी (पार्वती जी की शब्दी)	मिश्रबंधु विनोद, भारतीय नारी संत परंपरा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री काव्यधारा	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109 भारतीय नारी संत परंपरा H-19559

परिशिष्ट– 2

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1501–1600)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु / रचनाकाल	पिता / पति / भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	ग्रंथ क्रमांक
01	मीराँबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1498	कुमार भोजराज की पत्नी	'गीत गोविंद की टीका, नरसी जी रो माहेरौ, राग गोविंद, राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविंद, मीराँ नी गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुंडी, मीराँ का काव्य	हिंदुई साहित्य का इतिहास, शिवसिंह सरोज, द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान, मिश्रबंधु विनोद, हिंदी साहित्य का इतिहास, हिदी भाषा और साहित्य का इतिहास, महिला मृदुवाणी, स्त्री–कवि–कौमुदी, राजस्थान का पिंगल साहित्य, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, कृष्णकाव्य परंपरा में हिंदी की कवयित्रियों का योगदान	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जयपुर) भारत के लगभग सभी पुस्तकालयों में पद उपलब्ध इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली;	नरसी जी रो माहेरो (हस्तलिखित प्रति) ग्रंथांक संख्या 12107 पत्र संख्या 28 मीराँ का काव्य (ISBN-978-93-5072-804-8)
02	मिनाबाई	रचनाकाल ईस्वी सन् 1443	नरसी मेहता जी की समकालीन	स्फुट कविताएँ	मिश्रबंधु विनोद, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट्स	केन्द्रिय पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109

परिशिष्ट– 3

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1501–1600)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु/रचनाकाल	पिता/पति/भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	ग्रंथ क्रमांक
01	झीमाचारिणी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1503	बीकानेर राज्य के बीठू चारण की बहन	फुटकल दोहे और गीत	महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, मिश्रबंधु विनोद	लाला हरदयाल पुस्तकालय इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नागरी प्रचारिणी संभा	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
02	सोनकुँवरि	जन्म ईस्वी सन् 1544	अज्ञात	सुवर्ण बेली की कविता	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट्स	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
03	तीन तरंग	जन्म ईस्वी सन् 1555	अज्ञात	कोकशास्त्र	मिश्रबंधु विनोद मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
04	रत्नावली	रचनाकाल ईस्वी सन् 1556	तुलसीदास की पत्नी	रत्नावली लघु दोहा संग्रह दोहा रत्नावली	मिश्रबंधु विनोद, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
05	मधुर अली	जन्म ईस्वी सन् 1558	राजा मधुरकरशाह के आश्रित	राम चरित्र गणेसदेव लीला	मिश्रबंधु विनोद, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109

06	गंगाबाई	रचनाकाल ईस्वी सन् 1571	गोस्वामी विट्ठलनाथ की शिष्या	गंगाबाई के पद	मिश्रबंधु विनोद मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ स्त्री काव्यधारा	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
07	केशवपुत्र वधु	जन्मकाल ईस्वी सन् 1583	एक कुशल वैद्य की पत्नी	फुटकल पद रचना	मिश्रबंधु विनोद बुंदेल वैभव मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केंद्र	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
08	चंपादे रानी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1593	चंपादे जैसलमेर के राव लहरराज जी की बेटी और बीकानेर के राजा राजसिंह जी के भाई पृथ्वीराज जी की रानी थीं।	फुटकल दोहे	मिश्रबंधु–विनोद महिला मृदुवाणी मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	लाला हरदयाल लाइब्रेरी, चांदनी चौक इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
09	रानी राड़धड़ी जी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1593	राड़जी जी रानी मारवाड़ के राड़धड़ा प्रांत के राणा की पुत्री थीं और सिरोही के राव जी को ब्याही गईं थीं।	फुटकल मुक्तक काव्य	मिश्रबंधु विनोद महिला मृदुवाणी मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
10	प्रवीणराय पातुरि	रचनाकाल ईस्वी सन् 1593	ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह की प्रेमिका और महाकवि केशवदास की शिष्या	कवित्त संग्रह और फुटकल पद रचना	हिंदुई साहित्य का इतिहास, शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु विनोद, महिला मृदुवाणी, स्त्री–कवि–कौमुदी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, स्त्री–कवि संग्रह,	चंद्रमहल पोथीख़ाना सिटी पैलेस (जयपुर) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र,	कवित्त संग्रह 1242 (1) मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ

					मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना		891.43109
11	पद्मा चारिणी	जन्म लगभग ईस्वी सन् 1597	बारहट शंकर की पत्नी	फुटकल पद रचना	मिश्रबंधु विनोद महिला मृदुवाणी मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	नागरी प्रचारिणी सभा, बी.एच.यू. का केन्द्रिय पुस्तकाल, दिल्ली विश्वविद्यालय का केन्द्रिय पुस्तकाल, इंदिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केंद्र, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म

परिशिष्ट– 4

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1601–1700)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु/रचनाकाल	पिता/पति/भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	ग्रंथ क्रमांक
01	खगनियाँ	रचनाकाल ईस्वी सन् 1603	रणजीत पुरवा ग्राम के बासु तेली की बेटी	पहेलियों की रचना	महिला मृदुवाणी मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ स्त्री–कवि–कौमुदी हिंदी काव्य की कोकिलाएँ स्त्री–कवि संग्रह	लाला हरदयाल पुस्तकालय इंदिरा गांधी राष्ट्रिय कला केंद्र, दिल्ली पब्लिक पुस्तकालय	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
02	कल्यानी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1609	अज्ञात	स्फुट भजन	मिश्रबंधु विनोद ध्रुवभक्त नामावली में नाम	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मिश्रबंधु विनोद 891.43108
03	नवल	रचनाकाल ईस्वी सन् 1609	अज्ञात	स्फुट भजन	मिश्रबंधु विनोद ध्रुवभक्त नामावली में नाम	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मिश्रबंधु विनोद 891.43108

04	साँईं	जन्मकाल ईस्वी सन् 1613	प्रसिद्ध कवि गिरिधर कविराय की पत्नी	गिरिधर कविराय की कुँडलियों में सम्मिलित साँईं की कुँडलियाँ	हिंदुई साहित्य का इतिहास, मिश्रबंधु विनोद, महिला मृदुवाणी, स्त्री–कवि संग्रह, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, शिवसिंह सरोज मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, स्त्री–कवि–कौमुदी	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर) लाला हरदयाल पुस्तकालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रिय कला केंद्र, दिल्ली पब्लिक पुस्तकालय	गिरिधर की कुण्डलियाँ (55) 1236 / 3763 / 39 42 (3)
05	अलिकृष्णावति	रचनाकाल ईस्वी सन् 1643	अज्ञात	स्फुट पद	मिश्रबंधु विनोद	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मिश्रबंधु विनोद 891.43108
06	इंद्रामती	पन्ना नरेश छत्रसाल के समकालीन (छत्रसाल का जीवनकाल, सन् 1649–1726 तक माना जाता है)	पत्नी, प्राणनाथ (धामी पंथ के संस्थापक)	प्राणनाथ–इंद्रामती में पद तथा **गद्यांश** की प्राप्ति।	महिला मृदुवाणी भारतीय नारी संत परंपरा मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ स्त्री–काव्यधारा मिश्रबंधु विनोद	लाला हरदयाल पुस्तकालय	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
07	शेख रंगरेजिन	जन्मकाल ईस्वी सन् 1655 मुगल सम्राट कुतुबद्दीन मुअज्जम के समकालीन	कवि आलम की पत्नी जो सम्राट मुअज्जम के आश्रित थे।	कवित्त संग्रह, बीबी शेख की गोष्ठी आलम ग्रंथावली में लगभग 82 कवित्त–सवैया संकलित	हिंदुई साहित्य का इतिहास, शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु विनोद, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, स्त्री–कवि संग्रह, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, स्त्री–कवि–कौमुदी महिला मृदुवाणी,	चंद्रमहल पोथीख़ाना सिटी पैलेस (जयपुर) लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली पब्लिक पुस्तकालय	कवित्त संग्रह, 3399 (2) 1242 (1) बीबी शेख की गोष्ठी 2440 (29)
08	ठकुरानी काकरेची जी	जन्मकाल ईस्वी सन्	बल्लू जी के पुत्र नरहरिदास की	फुटकल पद रचना	महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, मध्यकालीन	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1

		1658	पत्नी		कवयित्रियों की काव्य साधना, स्त्री–कवि–संग्रह, मिश्रबंधु विनोद,	पब्लिक पुस्तकालय, मारवाड़ी पुस्तकालय दिल्ली	2 दे 67.3 म
09	रानी बख्तकुँवरि (प्रियासखी)	रचनाकाल ईस्वी सन् 1677	अज्ञात	प्रियासखी की बानी	महिला मृदुवाणी मिश्रबंधु विनोद मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली पब्लिक पुस्तकालय, दिल्ली, केंन्द्रिय पुस्तकालय दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
10	कृष्णदासी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1683	अज्ञात	विवाह विलास (वृन्दावन विवाह)	हस्तलिखित	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर)	विवाह विलास (वृन्दावन विलास) 3697 (6) 3765
11	बीबी ताज	रचनाकाज ईस्वी सन् 1695	अज्ञात	कवित्त संग्रह	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, हिंदुई साहित्य का इतिहास, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु विनोद, महिला मृदुवाणी, स्त्री–कवि–कौमुदी, स्त्री–कवि संग्रह,	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर)	कवित्त संग्रह 1242 (1)

परिशिष्ट– 5

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1701–1800)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु / रचनाकाल	पिता / पति / भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	ग्रंथ क्रमांक
01	ब्रजदासी रानी बाँकावती	जन्मकाल ईस्वी सन् 1703	सुपुत्री, लिवाण के कछवाह राजा श्री आनंदराम, पति किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह	भागवत पुराण भाषा विवाह विलास ख्याल संग्रह	मिश्रबंधु विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, महिला मृदुवाणी, स्त्री–कवि कौमुदी, राजस्थान का पिंगल साहित्य, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, कृष्णकाव्य परंपरा में हिंदी की कवयित्रियों का योगदान, स्त्री–काव्यधारा,	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, (जयपुर)	भागवत पुराण भाषा 3802 विवाह विलास 3765 / 3379 ख्याल संग्रह 1832 / 1834 / 3504
02	दयाबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1718	शिष्या, चरणदास	दयाबोध, विनयमालिका	मिश्रबंधु विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कविता–कौमुदी, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, स्त्री–कवि कौमुदी, राजस्थान का पिंगल साहित्य,	वेलवेडियर प्रेस (इलाहाबाद)	दयाबाई की बाणी 113076 (wbVB)

					मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, भारतीय नारी संत परंपरा, स्त्री–काव्यधारा		
03	सहजोबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1725	शिष्या चरणदास, पिता, हरिप्रसाद	रासमंगल सहजप्रकाश	मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कविता–कौमुदी, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, स्त्री–कवि कौमुदी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, महिला मृदुवाणी, राजस्थान का पिंगल साहित्य, भारतीय नारी संत परंपरा, स्त्री–काव्यधारा	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर) वेलवेडियर प्रेस (इलाहाबाद)	रासमंगल 3048 (6) सहजोबाई की बाणी 113078(wbVB)
04	सुंदरिकुँवरि बाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1734 मृत्युकाल ईस्वी सन् 1796	सुपुत्री, किशनगढ़ के राजा राजसिंह, रानी ब्रजदासी बाँकावती, पति राघोगढ़ के राजकुमार बलवंत सिंह।	नेह निधि (1760), वृन्दावन गोपी महात्म्य (1766), संकेत सुगल (1773), रंगझर (1788), गोपी महात्म्य (1789), रस–पुंज (1777) प्रेम–संपुट (1788) सार संग्रह (1788) भावना–प्रकाश (1792),	हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, कृष्णकाव्य परंपरा में हिंदी की कवयित्रियों का योगदान, स्त्री–कवि कौमुदी, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, हिंदी भाषा और साहित्य का	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर)	नेहनिधि 3837 (1) रंगझर, भावनाप्रकाश 3837 (4)

				राम–रहस्य (1796) पद तथा स्फुट कवित्त	इतिहास, स्त्री–काव्यधारा		
05	श्रंगार सखी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1739	अज्ञात	कवित्त पदादि संग्रह सूरजजी की कथा सूरजजी को वृत	अज्ञात	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर)	कवित्त पदादि संग्रह 1793 सूरजजी की कथा 2464 (3) सूरजजी को वृत 3302 (25)
06	प्रेमसखी	जन्मकाल ईस्वी सन् 1743 (लगभग)	अज्ञात	फुटकर पद	हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, स्त्री–काव्यधारा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ,	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
07	गंवरीबाई (गौरीबाई)	जन्मकाल ईस्वी सन् 1758 डूंगरपुर (राजस्थान) मृत्युकाल ईस्वी सन् 1808 काशी (उ. प्र.)	अज्ञात	फुटकर पद (610 फुटकर पद)	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थान का पिंगल साहित्य, डूंगरपुर साहित्य का इतिहास	साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
08	स्वरूपाबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1760	स्वरूपाबाई स्वामी रामचरणजी के प्रसिद्ध शिष्य मंत्री नवलरामजी की पुत्री थीं।	स्फुट पद	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना	साहित्य अकादमी, दिल्ली शाहपुरे के रामद्वारे में हस्तलिखित, 'वाणी' में स्वरूपाबाई के पद संकलित हैं।	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT

09	आंभाबाई	जन्मकाल ईस्वी सन् 1771 नागौर जिले के डाब गाँव	पिता, सगतसिंह (ओसवाल कोठारी)	गुरू महिमा, कका बत्तीसी, शिष्य संप्रदाय	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना	साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
10	छत्रकुँवरिबाई	विवाह ईस्वी सन् 1674	सुपुत्री, रूपनगर के राजा सरदार सिंह, पत्नी, कोटड़े के गोपालसिंह खींची	प्रेमविनोद (सन् 1788 ई.)	मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, महिला–मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री–कवि कौमुदी, कृष्णकाव्य परंपरा में हिंदी की कवयित्रियों का योगदान, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, स्त्री–काव्यधारा	लाला हरदयाल पुस्कालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
11	रसिक बिहारी बनी ठनी जी	मृत्यु ईस्वी सन् 1765	उपपत्नी, नागरीदास (किशनगढ़ के महाराज सावंतसिंह)	नागर ग्रंथावली (नागरीदास के रचना संग्रह, नागर ग्रंथावली में 61 पद रसिक बिहारी बनी ठनी जी के हैं)	शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, कविता कौमुदी, भाग–1, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, महिला मृदुवाणी, राजस्थान का पिंगल साहित्य, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, स्त्री–कवि	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (उ.प्र.)	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म

					कौमुदी, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, कृष्णकाव्य परंपरा में हिंदी की कवयित्रियों का योगदान, स्त्री–काव्यधारा		
12	बिरजूबाई	रचनाकाल ईस्वी सन् 1743 (लगभग)	बहन, चारण कवि करणदीन (जोधपुर के महाराज अभयसिंह के आश्रित)	फुटकर पद	महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री–काव्यधारा	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
13	हरकूबाई	रचनाकाल ईस्वी सन् 1763 (लगभग)	गुरू, चतरूजी	महासती श्री अमरूजी का चरित्र, चतरूजी सज्झाय,	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना	साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
14	जना बेगम	रचनाकाल ईस्वी सन् 1778	शिष्या, छौना गुरू	सुदामा चरित्र	भारतीय नारी संत परंपरा	साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
15	बीराँ	जोधपुर निवासी महाराजा अभय सिंह के समकालीन (शासनकाल राजा अभयसिंह, सन् 1724 ई. –1749 ई.)	अज्ञात	फुटकर पद	महिला मृदुवाणी, राजस्थान का पिंगल साहित्य, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, स्त्री–काव्यधारा	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
16	रानाबाई	जोधपुर निवासी महाराजा	मारवाड़ के हरनावां	स्फुट पद	मध्यकालीन कवयित्रियों	साहित्य अकादमी,	मध्यकालीन

		अभय सिंह के समकालीन (शासनकाल राजा अभयसिंह, सन् 1724 ई. –1749 ई.)	ग्राम के जालम जाट की पुत्री। गुरू–बोजी जी		की काव्य साधना	दिल्ली	कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
17	सूरज कंवर बाई	जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन (राजा मानसिंह का शासनकाल, सन् 1783 से 1843 ई.)	अज्ञात	कृष्ण कीर्तन, कृष्ण–निद्रालीला	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, पृष्ठ संख्या–137	साहित्य अकादमी दिल्ली महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
18	कविरानी चौबे	बूँदी के राव राजा बुद्धसिंह के समकालीन (बुद्धसिंह के शासनकाल, सन् 1795 ई. से 1748 ई. के लगभग)	पत्नी, लोकनाथ चौबे	फुटकर कवित्त	कविरत्नमाला, मिश्रबंधु–विनोद, महिला–मृदुवाणी, स्त्री–कवि कौमुदी, स्त्री–काव्यधारा	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
19	कृष्णावती	रचनाकाल 18वीं शताब्दी के लगभग ('मिश्रबंधु विनोद' में उद्धृत)	अज्ञात	विवाह–विलास	मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री–काव्यधारा	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
20	बीबी रत्नकुँवरि	दादी, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' (जीवनकाल राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, सन् 1823–1895 ई.)	सुपुत्री, जगतसेठ मुर्शिदाबाद निवासी	प्रेमरत्न	द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान, शिवसिंह सरोज, मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, महिला–मृदुवाणी, स्त्री–कवि कौमुदी, मध्यकालीन हिंदी	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म

					कवयित्रियाँ, स्त्री–काव्यधारा		
	कृष्णावती	रचनाकाल ईस्वी सन् 1793	अज्ञात	विरह विलास	नागरी प्रचारिणी सभा, मिश्रबंधु विनोद	नागरी प्रचारिणी सभा की तृतीय त्रैमासिक खोज रिपोर्ट, काशी	नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट्स
21	महारानी सोनकुँवरि उपनाम सुवर्ण बेलि	अज्ञात	अज्ञात	'सुवर्ण बेलि की कविता' (इनकी इस हस्तलिखित प्रति का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में है। इस प्रति का हस्तलेखन सन् 1777 ई. में हुआ।	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	साहित्य अकादमी, दिल्ली	मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना (सन् 1500–1900 ई.) H 891.40109 RAT
22	प्रतापकुँवरि बाई	अज्ञात	पत्नी, राजा मानसिंह की तीसरी भाटी रानी	रामचंद्र महिमा, रामगुण सागर, रघुवर स्नेह लीला, राम सुजस पचीसी, राम प्रेम सुखसागर पत्रिका, रघुनाथ जी के कवित्त, भजन पद हरजस, प्रताप विनय, श्री राजचंद्र विनय, हरिजस गायन	महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री–काव्यधारा	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
23	तुलछराय	अज्ञात	सपत्नी, प्रतापकुँवरिबाई	फुटकर पद	महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, स्त्री–काव्यधारा	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109

24	नैना योगिनी	अज्ञात	अज्ञात	साँवरतंत्र (ग्रंथ का रचनाकाल अनिश्चित है किंतु इसका लिपिकाल सन् 1836 ई. है।)	मध्कयकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
25	भागबाई	रचनाकाल 18वीं. शती	अज्ञात	साखी संग्रह	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जयपुर)	साखी संग्रह 12730

परिशिष्ट– 6

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(ईस्वी सन् 1200 से 1857 तक)

(1801–1900)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु/रचनाकाल	पिता/पति/भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	संदर्भ क्रमांक
01	हरिजी रानी चावड़ी	जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन (राजा मानसिंह का शासनकाल, सन् 1783 से 1843 ई.)	महाराजा मानसिंह की दूसरी पत्नी	फुटकर ख्याल और टप्पे	महिला मृदुवाणी, मिश्रबंधु विनोद, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, राजस्थान के राजघरानों की हिंदी सेवा,	लाला हरदयाल पुस्तकालय, दिल्ली	महिला मृदुवाणी 821.1 2 दे 67.3 म
02	राड़जी रानी (मारवाड़)	रचनाकाल ईस्वी सन् 1803	राड़धड़ा के राणा की सुपुत्री	स्फुट छंद	मिश्रबंधु विनोद, महिला मृदुवाणी, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
03	जामसुता जाड़ेचीजी	जन्मकाल ईस्वी सन् 1834	जामनगर के रिड़मल की सुपुत्री	स्फुट छंद	मिश्रबंधु–विनोद, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, कविता–कौमुदी, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, स्त्री–कवि कौमुदी, महिला मृदुवाणी, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, हिंदी के मुसलमान कवि, स्त्री–काव्यधारा	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली प्रतापकुँवरि और रत्नावली की कृति में अन्य कवियों के साथ पद संकलित	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109
04	सुंन्दरकली	रचनाकाल ईस्वी सन् 1843 (लगभग)	अज्ञात	सुन्दरकली की कहानी सुन्दरकली का बारहमासा	हिंदी के मुसलमान कवि, सभा की खोज रिपोर्ट्स, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ 891.43109

05	ठंढी सखी	रचनाकाल ईस्वी सन् 1843 से पूर्व	अज्ञात	स्फुट पद	राग सागरोद्भव में पद संकलित, मिश्रबंधु विनोद	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मिश्रबंधु विनोद 891.43108
06	चंद्रसखी	रचनाकाल 19वीं. शती	अज्ञात	भजन चंद्रसखी	नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट्स	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस (जयपुर)	भजन चंद्रसखी 1434 (2)
07	रतनियाँ	रचनाकाल 19वीं. शती	अज्ञात	नरसी जी की हुड़ी	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जयपुर)	नरसी जी की हुड़ी 12670
08	श्यामबाई	रचनाकाल ईस्वी सन 1850	अज्ञात	जिनिलाभ सूरि–भास	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जयपुर)	जिनिलाभ सूरि–भास 6041

परिशिष्ट– 7

हिंदी साहित्य का स्त्री–लेखन : एक अध्ययन

(अज्ञात कवयित्रियाँ)

क्र. स.	नाम	जन्म–मृत्यु/रचनाकाल	पिता/पति/भ्रात	रचनाएँ	जिस पुस्तक में उल्लेख है।	रचना प्राप्ति का स्थान	संदर्भ क्रमांक
01	अलबेली अली	अज्ञात	अज्ञात	अलबेली अली ग्रंथावली गुसांई जी का मंगल विनय कुंडलिया वंशीअली की रसमंजरी में कवित्त	मिश्रबंधु विनोद	इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली	मिश्रबंधु विनोद 891.43108
02	कर्माबाई	अज्ञात	अज्ञात	धार्मिक पद	शंभू ग्रंथ में पद संकलित	अज्ञात	अज्ञात
03	सुजान	अज्ञात	अज्ञात	पद संग्रह	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, काशी	ग्रंथांक 9480 (10)
04	सुभगसखी	अज्ञात	रूपमंजरी शिष्या	चौपाईयाँ	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, काशी	ग्रंथांक 09
05	मानसखी	अज्ञात	अज्ञात	स्फुट कवित्त	हस्तलिखित ग्रंथ	प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, काशी	ग्रंथांक 22
06	उमादे भटियाणी	अज्ञात	अज्ञात	स्फुट कवित्त	मिश्रबंधु विनोद, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर	ग्रंथांक 4328
07	किशोरी अली	अज्ञात	अज्ञात	कर्म का कवित्त नाम विरूदावली भ्रमरगीत भाषा राधिकानामावली रासपंचाध्यायी भाषा	हस्तलिखित ग्रंथ	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर	कर्म का कवित्त (3607) नाम विरूदावली (2393) भ्रमरगीत भाषा (763)

							राधिकानामावली (902 (4)) रासपंचाध्यायी भाषा (1477)
08	प्रेमकुँअरि	अज्ञात	अज्ञात	करूणाबिवाई	हस्तलिखित ग्रंथ	चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर	करूणाबिवाई (1847 (3))

ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

(क) हस्तलिखित आधार ग्रंथ

1. ब्रजदासी रानी बाँकावती, भागवत पुराण भाषा, चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 3802, वि. सं, 1850
2. ब्रजदासी रानी बाँकावती, ख्याल संग्रह, चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 3504
3. ब्रजदासी रानी बाँकावती, ब्याह विहार, (विवाह विलास), चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 3765, वि.सं. 1827
4. मीरांबाई, नरसी जी रो माहेरौ, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 12107
5. रतनिया, नरसी जी की हुड़ी, , प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 12670
6. सुन्दरिकुँवरिबाई, नेहनिधि, चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान) ग्रंथांक संख्या, 3837 (1)
7. सुन्दरिकुँवरिबाई, रंगझर, चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 3837 (4)
8. सुन्दरिकुँवरिबाई, भावना प्रकाश, चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), ग्रंथांक संख्या, 3837 (4)

(ख) प्रकाशित आधार ग्रंथ

1. उषा कंवर राठौर, मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, प्रकाशक – महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंन्द्र, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2002
2. किशोरीलाल गुप्त, नागरीदास ग्रंथावली (प्रथम खंड), प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण, वि. सं. 2022
3. गिरिजादत्त/ब्रजभूषण शुक्ल, हिंदी काव्य की कोकिलाएँ, प्रकाशक–साहित्य मंदिर, दारागंज, प्रयाग (इलाहबाद), 1933
4. ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–कौमुदी, गाँधी हिंदी पुस्तक भंडार, प्रयाग (इलाहबाद), प्रथम संस्करण, 1931

5. ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि–संग्रह, गाँधी हिंदी पुस्तक भंडार, प्रयाग (इलाहबाद), प्रथम संस्करण, 1987
6. दयाबाई, दयाबाई की बानी, वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहबाद, संस्करण, 2005
7. परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई की पदावली, प्रकाशक – हिंन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (इलाहबाद), इलाहबाद, प्रथम संस्करण, ईस्वी सन् 1976, वर्तमान संस्करण, 2008
8. बलदेव वंशी, भारतीय नारी संत परंपरा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011
9. मुंशी देवी प्रसाद, महिला मृदुवाणी, प्रकाशक–नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, 1905
10. रामप्रसाद मिश्र, हिंदी की कवयित्रियाँ, प्रेम प्रकाशन मंदिर 3012, बल्ली मारान दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990
11. लाला भगवानदीन (संपादक), आलमकेलि (रचयिता आलम और शेख), प्रकाशक उमाशंकर मेहता, प्रथम संस्करण, 1922
12. विद्यानिवास मिश्र (संपादक), आलम ग्रंथावली (शेख के कवित्त), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991
13. व्यथित हृदय, हिंदी काव्य की कलामयी तारिकाएँ, प्रकाशक – प्रमोद पुस्तक माला कटरा, प्रयाग (इलाहबाद), प्रथम संस्करण, 1941
14. सहजोबाई, सहजप्रकाश, वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहबाद, संस्करण, 2005
15. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, प्रकाशक – आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1953

सहायक ग्रंथ

1. अगरचंद नाहटा/भवरचंद नाहटा, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, शकरदान शुभैराज नाहटा, कलकत्ता, वि.सं, 1994
2. अरविंद सिहं तेजावत, मीरा का जीवन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2015
3. अर्चना भटनागर, चौदहवीं पंद्रहवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में भारतीय स्त्रियों की दशा, शोध प्रबंध, इलाहबाद विश्वविद्यालय, 2001
4. अवधेश कुमार सिंह (सं.) वोइस ऑफ विमिन, डी. के. प्रिंट वर्ल्ड प्रा. लि. न. दि. 2008
5. आचार्य नंद किशोर (सं.), मीरा माधव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (राजस्थान), 2003
6. आर. सी. मजूमदार, द ग्रेट विमिन ऑफ इंडिया, प्रकाशक–अद्वैत आश्रम, मायावती अलमोड़ा आश्रम हिमालय, प्रथम संस्करण, 1953
7. इरफान हबीब (संपादक), मध्यकालीन भारत, भाग (1–11), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015
8. उजागर सिंह सेहगल (संपादक), गोरखबानी, प्रकाशक–पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, 1989
9. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2002
10. उषा बाला, भारत की प्राचीन विदुषियाँ, आरूषी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986
11. उषा पाण्डेय, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी भावना, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, 1959
12. उषा लाल, सहजोबाई, प्रकाशक – साहित्य अकादेमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
13. ए. एस. अल्टेकर, पोजीशन ऑफ विमिन इन हिंदू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन दिल्ली, 1999
14. एस. एस. गौतम, भारतीय साहित्य में महिलाओं पर अभद्र कहावतें, प्रकाशक – गौतम बुक सेंटर दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007
15. कल्याण सिंह शेखावत, मीराँ ग्रन्थावली (भाग, 1–2), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
16. कमलधारी सिंह 'कमलेश', मुसलमानों की हिंदी सेवा, साहित्य भवन, प्रयाग (इलाहाबाद), 1941
17. किशोरी लाल गुप्त (सं), शिवसिंह सरोज, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (इलाहाबाद), वि. सं. 1934
18. किशोरी लाल गुप्त (सं), सरोज सर्वेक्षण, हिंदुस्तानी एकेडेमी, (इलाहाबाद), वि. सं. 2023
19. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि. न. दि. 1982
20. कुतुबन, मृगावती, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (इलाहाबाद), प्रथम संस्करण, 1928
21. कृष्णा गोस्वामी, संत काव्य में नारी, चिंता प्रकाशन, दिल्ली, 1989

22. गजानन शर्मा, भक्तिकालीन काव्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
23. गंगा प्रसाद सिंह विशारद (संपादक), हिंदी के मुसलमान कवि, प्रोपाइटर लहरी बुक डिपो, काशी, संस्करण, 1926
24. गार्सां–द–तासी, हिंदुई साहित्य का इतिहास, हिंदुस्तानी अकादमी (इलाहाबाद), (अनु.) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, 1953
25. गोरखनाथ, गोरखनाथ की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण, 2004
26. गोस्वामी नाभादास, भक्तमाल, तेजपुर बुक डिपो प्रा. लि. लखनऊ, 2009
27. गोसांई गोकुलनाथ (संपादक), चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अंतर्राष्ट्रीय पुष्टीमार्गीय वैष्णव परिषद, इंदौर, वि. सं. 2052
28. गोसांई गोकुलनाथ (संपादक), दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (प्रथम भाग) गोस्वामी ब्रजभूषणलाल जी, वैष्णव मित्र मंडली सार्वजनिक न्यास, इंदौर, वि. सं. 2057
29. चरणदास, चरणदास जी की बाणी, भाग (1–2), वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 1908
30. जगदीश्वर चतुर्वेदी/सुधा सिंह, (संपादक), स्त्री काव्यधारा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रा. लि. न. दि. 2006
31. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, 2011
32. जॉर्ज ग्रियर्सन, द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान, ओमप्रकाष बेरी हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1957
33. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्री और पराधीनता, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण, 2008
34. ताराबाई शिंदे, स्त्री–पुरूष तुलना, प्रकाशक – सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015
35. तेजपाल सिंह धामा, बेगमों की ऐतिहासिक प्रेम कथाएँ, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014
36. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण, वि. सं. 2070
37. देवेन्दनाथ शर्मा, काव्य के तत्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2003
38. दरियादास, दरियासागर, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 2004
39. दिनेशचंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1992
40. दूलनदास, दूलनदास जी की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 2001
41. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक, नौएडा, 2004

42. नगेंद्र झा, भक्तमालः पाठानुशीलन एवं विवेचन, अनुपम प्रकाशन, 1970
43. नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलिखित ग्रंथों के विवरण, वाराणसी, काशी, 1955
44. नाभादास, भक्तमाल, प्रकाशक – ठाकुर प्रसाद एण्ड संस बुकसेलर, वाराणसी, संस्करण, 1965
45. नरेश पांड्या, प्राणनाथ संप्रदाय एवं साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1973
46. परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (4), ना. प्र. स. काशी. वि.सं. 2025
47. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारती भंडार प्रकाशन, प्रयाग (इलाहाबाद), प्रथम संस्करण, 1951, वर्तमान संस्करण, 2008
48. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण, 1966
49. परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्यधारा, किताब महल प्रकाशन, दिल्ली, 1961
50. परमानंद पांचाल, हिंदी के मुस्लिम साहित्यकार, भारत भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1971
51. प्रभुदयाल मीतल, ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968
52. प्रमथनाथ भट्टाचार्य, भारत की महान साधिकाएँ (भाग–1), नवभारत प्रकाशन, दरभंगा, बिहार, 1985
53. पृथ्वीराज चौहान, आल्हाखंड असलीः 52 गढ़ की मारका, गोवर्धन पुस्तकालय, मथुरा, 1913
54. भगवानदास तिवारी, मीरा का काव्य, साहित्य भवन प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990
55. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2004
56. बेनी प्रसाद, हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, हिंदुस्तानी अकादमी, इलाहबाद, 1950
57. भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, विश्विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 2001
58. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, न्यू भारतीय बुक कोर्पोरेशन, दिल्ली, 2006
59. भुवनेश्वर कुमार मिश्र माधव, मीरा की प्रेम साधना, राजकमल प्रकाशन, न. दि. 1937
60. मदनगोपाल, इब्नबतूता की भारत यात्रा या चौदहवीं शताब्दी का भारत, प्रकाशक–राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, प्रथम संस्करण, 1997, वर्तमान संस्करण, 2014
61. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, अनीता प्रकाशन, दिल्ली, 1986
62. माता प्रसाद गुप्त, कबीर ग्रंथावली, साहित्य भवन इलाहाबाद, संस्करण, 1985
63. मुंशी देवी प्रसाद, रूपमती और बाज़बहादुर की कविता, ना. प्र. सभा. काशी
64. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, गंगा ग्रंथागाार, हैदराबाद, 1972
65. राधेश्याम प्रगल्भ, हिंदी के मुसलमान कवि, शकुन प्रकाशन, न. दि. 1978
66. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1982

67. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, भाग, 1–2, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999
68. रामवृक्ष बेनीपुरी (संपादक), विद्यापति की पदावली, प्रकाशक – पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, बिहार, प्रथम संस्करण, 1929, वर्तमान संस्करण, 2015
69. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2009
70. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, 2009
71. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1938, वर्तमान संस्करण, 2010
72. रामप्रसाद दाधीच, राजस्थानी भाषा–साहित्य–संस्कृति, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1986
73. रामस्वरूप चतुर्वेदी, मध्यकालीन हिंदी काव्यभाषा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
74. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
75. विद्यानिवास मिश्र/गोविंद रजनीश, रहीम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
76. विनयमोहन शर्मा, हिंदी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1957
77. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भूषण ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
78. सतीश चंद्र, मध्यकालीन भारत, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 2007, वर्तमान संस्करण, 2015
79. सुधा सिंह, मध्यकालीन साहित्य विमर्श, आनंद प्रकाशन, कलकत्ता, 2004
80. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003
81. सुमन राजे, इतिहास में स्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
82. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1967
83. सुषमा शुक्ला, वैदिक वांङ्मय में नारी, विद्यानिधी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
84. सूरदास, सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण, 1965
85. श्याम सुन्दरदास (संपादक), कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2008, वर्तमान संस्करण, 2012
86. शकुंतला सिरोठिया, हिंदी काव्य में नारी की देन, युवक प्रकाशन, आगरा, 1961
87. शहनाज़बानो, भक्तिकाव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श, प्रकाशक – अनिरूद्ध बुक्स, दिल्ली, 2010
88. शाहिद अहमद, अलबरूनी इंडिया भाग दो, ग्रंथ विकास प्रकाशन, 2011
89. शैलेश जैदी, बिलग्राम के मुसलमान हिंदी कवि, ना. प्र. स, वाराणसी, 1970

90. शिवकुमार गुप्ता, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पंचशील प्रकाशन, 1999
91. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1952, वर्तमान संस्करण, 2007
92. हेरम्ब चतुर्वेदी, दास्तान मुग़ल महिलाओं की, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2014, वर्तमान संस्करण, 2016

पुस्तकालय (Libraries)

1. इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, दिल्ली, 110011
2. केन्द्रिय पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, उत्तरी परिसर, नई दिल्ली, दिल्ली, 110007
3. साहित्य अकादेमी, 35, रबीन्द्र भवन, फिरोज़शाह रोड, रबीन्द्र नगर, नई दिल्ली, दिल्ली, 110001.
4. लाला हरदयाल पुस्तकालय, चाँदनी चौक, नई दिल्ली, दिल्ली, 110006.
5. मारवाड़ी पुस्तकालय, चाँदनी चौक, नई दिल्ली, दिल्ली, 110006.
6. चंद्रमहल पोथीख़ाना, सिटी पैलेस, जयपुर (राजस्थान), 302002.
7. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (हवामहल के सामने) जयपुर, (राजस्थान), 302002
8. जवाहरकला केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, झालना दूँगरी, जयपुर (राजस्थान), 302004
9. संजय शोध संस्थान, जयपुर. राजस्थान.
10. राजस्थानी ग्रंथागार, गणेश मंदिर के पास, जोधपुर (राजस्थान), 342001
11. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, (उत्तरप्रदेश), 221001
12. कारमाइकेल लाइब्रेरी, काशी, (उत्तरप्रदेश), 221001

वेबसाइट्स

1. डबल्यू डबल्यू डबल्यू . डी एल आई. अरनेट. इन
2. साहित्य–अकादेमी . गव . इन

.....